इकाई-1 अधिगम का स्वरूप एवम प्रकार, वाचिक अधिगम की विधियाँ
(Nature and Types of Learning, Methods of Verbal Learning)

इकाई संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 अधिगम का स्वरूप
1.4 अधिगम का मापन
1.5 अधिगम के प्रकार
1.6 वाचिक अधिगम एवं उसके पक्ष
1.7 वाचिक अधिगम की विधियाँ
1.8 सारांश
1.9 शब्दावली
1.10 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

अधिगम एक व्यापक एवं महत्वपूर्ण शब्द है। मनोवैज्ञानिकों ने अधिगम की परिभाषा वैज्ञानिक ढंग से देने का प्रयास किया है। वैसे तो मनोवैज्ञानिक ने इसकी परिभाषा अलग-अलग ढंग से दिया है, लेकिन उनके विचारों में इस पद के मूल अर्थ के बारे में काफी सहमति है। अधिगम मूलतः अभ्यास या प्रयास पर निर्भर करता है, किसी भी कार्य में कौशल या दक्षता प्राप्त करने से पहले हमें उसे पहले सीखने का प्रयास करना पड़ता है। अधिगम व्यवहार या व्यवहारात्मक अन्तःशक्ति में अपेक्षाकृत अस्थाई परिवर्तन है और व्यवहार में यह परिवर्तन अभ्यास या अनुभूति के फलस्वरूप होता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि अधिगम एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा अनुभूत या अभ्यास के फलस्वरूप अपेक्षाकृत या स्थाई परिवर्तन होता है।

अधिगम का मापन गुणात्मक या मात्रात्मक रूप में किया जा सकता है। अनुक्रिया की शुद्धता ता, अनुक्रिया की गति, अनुक्रिया की शक्ति एवं अनुक्रिया क्रम में कमी के आधार पर यह पता लगाया जा सकता है कि अभ्यास या अनुभूति के आधार पर अधिगम में वृद्धि हुई या कमी। अधिगम कई प्रकार का होता है। इसे

सामान्यतः पांच वर्गों में विभक्त किया जाता है। वाचिक अधिगम के तीन प्रमुख पक्ष हैं। इन्हें क्रमशः प्रयोज्य, अधिगम सामग्री एवं अधिगम विधियों का नाम दिया जाता है। वाचिक अधिगम की अनेक विधियाँ हैं जिसमें प्रमुख हैं - क्रमिक अधिगम विधि, युगल साहचर्य विधि, उद्बोधन एवं पूर्वानुमान विधि तथा समय विधि।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान सकेंगे:

- अधिगम से क्या तात्पर्य है?
- अधिगम का मापन कैसे किया जाता है?
- अधिगम के प्रमुख प्रकार कौन-कौन से हैं?
- वाचिक अधिगम के विभिन्न पक्ष?
- वाचिक अधिगम की विधियाँ कौन-कौन सी हैं?

1.3 अधिगम का स्वरूप

मानव जीवन में अधिगम का महत्व सर्वविदित है। अधिगम जीवन भर चलता रहता है। इसीलिए कहा जाता है कि मानव जीवन में इसकी बहुत ही व्यापक भूमिका है। इसका योगदान केवल कुछ कार्य, कौशल या शिक्षा अर्जन में ही नहीं है, अपितु समायोजन स्थापित करने एवं व्यक्तित्व के विकास आदि में भी है। किसी भी व्यक्ति द्वारा किये जाने वाले व्यवहारों में अधिकांश व्यवहार अर्जित या सीखे हुए होते हैं। हम जानते हैं कि जन्म के समय बच्चे में कुछ सीमित जैविक विशेषताओं का ही प्रदर्शन होता है। परन्तु उसकी आयु (परिपक्वता) एवं अनुभव में वृद्धि के साथ-साथ उसका व्यवहार भी निरन्तर परिमार्जित होता रहता है। वह अनेकानेक योग्यताएँ अर्जित करके विभिन्न पर्यावरणीय परिस्थतियों में समायोजन स्थापित करने में सफलता प्राप्त करता है। इससे संकेत मिल रहा है कि मानव जीवन में अधिगम प्रक्रिया का विशेष महत्व है तथा इसका काफी व्यापक प्रभाव होता है।

अधिगम का अर्थ (Meaning of learning) -

अधिगम (सीखना) मूलतः अभ्यास या प्रयास पर निर्भर करता है। किसी भी कार्य में कौशल या दक्षता प्राप्त करने के लिए हमें उसे पहले सीखने का प्रयास करना पड़ता है। प्रारम्भ में किसी नवीन कार्य को करने में कठिनाई अधिक अनुभव की जाती है तथा त्रुटियाँ भी अधिक होती हैं। परन्तु अभ्यास करने से कठिनाई एवं त्रुटियों में कमी आती है। ऐसा होना स्पष्ट करता है कि अधिगम हो रहा है। इसी कारण अधिगम को ऐसी प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जाता है जिससे अनुभवों से प्राणी की क्रियाओं में सुधार होता है (Osgood, 1953)। अधिगम के परिणामस्वरूप प्राणी का व्यवहार क्रमशः जटिल एवं परिमार्जित होता रहता है। इससे स्पष्ट है कि अधिगम के

लिए अभ्यास करना आवश्यक है। अभ्यास द्वारा अर्जित व्यावहारिक परिवर्तन व्यक्ति के व्यवहार का अपेक्षाकृत स्थाई अंग बन जाते हैं और समायोजन में सहायता पहुँचाते हैं (King and Riggs, 1971)।

कून (Coon, 2003) ने कहा है, "अनुभव के परिणामस्वरूप व्यवहार में अपेक्षाकृत स्थाई परिवर्तन अधिगम है। थकान, कुपोषण, चोट या अन्य कारणों से उत्पन्न परिवर्तन इसमें सम्मिलित नहीं है।"

मैक्यू (McGeoch, 1942) के अनुसार, "अधिगम, जैसा कि इसे हम जानते हैं, अभ्यास के परिणामस्वरूप व्यवहार में होने वाला परिवर्तन है। प्रायः इस परिवर्ततन की एक दिशा होती है जो प्राणी की वर्तमान प्रेरणात्मक अवस्था की संतुष्टि करती है।"

इस प्रकार स्पष्ट हो रहा है कि व्यवहार सम्बन्धी केवल उन्हीं परिवर्तनों को ही अधिगम कहा जाता है जो निश्चित रूप से पूर्व अभ्यास, क्रिया या व्यवहार के परिणामस्वरूप उत्पन्न होते हैं। अर्थात् प्रेरणा, थकान, विकास (वृद्धि) या अन्य कारणों से उत्पन्न परिवर्तन अधिगम नहीं है (Hilgard and Bower, 1975)। अभ्यास से उत्पन्न परिवर्तनों से कार्य में उन्नति या व्यवहार में परिमार्जन होता है।

उपर्युक्त विवेचनों के आधार पर अधिगम के बारे में कुछ निष्कर्ष प्रस्तुत किए जा सकते हैं –

1. अभ्यास द्वारा व्यवहार में उत्पन्न परिवर्तन ही अधिगम कहा जाता है।
2. अभ्यास से कार्य में उन्नति होनी चाहिए।
3. उत्पन्न परिवर्तन व्यवहार के अंग बन जाते हैं।
4. उत्तरोत्तर प्रयास करने से कार्य में सुधार होता रहता है।
5. अधिगम से नवीन क्रिया का अर्जन तथा पुरानी क्रिया में परिमार्जन होता है।
6. अधिगम का मापन निष्पादन (Performance) के आधार पर होता है।
7. अधिगम उद्देश्यपूर्ण होता है।
8. व्यवहार सम्बन्धी अन्य निर्धारकों (जैसे- थकान, प्रेरणा, परिपक्वता आदि) से उत्पन्न परिवर्तनों को अधिगम नहीं कहा जा सकता है।

1.4 अधिगम का मापन

व्यक्ति द्वारा किए जाने वाले कार्य का मापन किया जा सकता है। मापन गुणात्मक (Qualitative) या मात्रात्मक (Quantitative) रूप में किया जा सकता है। यदि यह देखा जा रहा है कि अभ्यास से सुधार हो रहा है तो यह गुणात्मक मापन होगा और यदि यह देखा जा रहा है कि अधिगम कितने प्रतिशत या मात्रा में हुआ है तो यह मात्रात्मक मापन होगा। अभ्यास के अवसर बढ़ाने से कार्य की मात्रा में वृद्धि या व्यवहार में परिमार्जन आता है। इसका अनुमान निम्नांकित मापों (Measure) के आधार पर लगा सकते हैं -

1. अनुक्रिया की शुद्धता (Accurancy of Response) - चूँकि अधिगम (सीखने) के लिए अभ्यास करना आवश्यक है। अतः अभ्यास के अवसरों में वृद्धि होने से अनुक्रिया प्रतिमानों में सुधार होना अपेक्षित है। व्यवहार में ऐसा होता भी है। जैसे-जैसे सीखने के लिए प्रयासों को संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती है वैसे-वैसे अशुद्धता अनुक्रियाओं की संख्या में कमी आती है और शुद्धता अनुक्रियाओं के उत्पन्न होने की सम्भावना प्रबल होती जाती है। इससे सीखने की क्रिया की सुचारु रूप से पुष्टि होती है।
2. अनुक्रिया की गति (Speed of Response) - प्रयासों में उत्तरोत्तर वृद्धि होने से अनुक्रियाओं के उत्पन्न होने में लगने वाला समय घटता जाता है। यह सीखने की प्रक्रिया में उन्नति का लक्षण है। ऐसा न होने पर ह्रास की दशा मानी जाती है।
3. अनुक्रिया की शक्ति - प्रयासों में संख्या में वृद्धि होने से अनुक्रियाओं के उत्पन्न होने की सम्भावना प्रबलतर हो जाती है। यह सीखने का अच्छा लक्षण है।
4. अनुक्रिया-श्रम में कमी - सीखने की प्रारम्भिक अवस्था में अनुक्रिया करने में शारीरिक एवं मानसिक श्रम अधिक करना पड़ता है, परन्तु अभ्यास में वृद्धि होने से इस श्रम में कमी आती है। इससे भी सीखने की प्रक्रिया का आभास मिलता है।

1.5 अधिगम के प्रकार

अधिगम कई प्रकार का होता है। सामान्यतः इसे पांच वर्गों में विभक्त किया जाता है। कुछ अधिगम प्रक्रियाओं में आन्तरिक अनुक्रियाओं की प्रमुखता होती है तो कुछ में बाह्य अनुक्रियाओं का उपयोग अपेक्षाकृत अधिक होता है, परन्तु कुछ में दोनों प्रकार की अनुक्रियाओं का (Covert and Overt) सम्मिश्रण पाया जाता है। अतः अधिगम प्रतिक्रियाओं को बाह्य-आन्तरिक व्यवहार आयाम (Overt-Covert behaviour dimension) पर क्रमशः दर्शाया जा सकता है।

1. पेशीय कौशल अधिगम (**Motor Skills Learning**) - पेशीय अधिगम से तात्पर्य ऐसे कार्यों को सीखने से है जिसमें बाह्य व्यवहार या शारीरिक प्रक्रियाएँ प्रमुख रूप में प्रदर्शित होती हैं। इससे व्यवहारों का बाह्य प्रेक्षण किया जा सकता है। यथा-तैरना, साइकिल चलाना, नृत्य इत्यादि इसके विशेष उदाहरण हैं। ऐसे कार्यों पर प्रेरणा, अभ्यास, परिवेश एवं प्रतिस्पर्धा आदि का अधिक प्रभाव पड़ता है।
2. अनुबन्धन (Conditioning) - अधिगम की ऐसी परिस्थितियाँ जिनमें नवीन प्रकार के उद्दीपक अनुक्रिया सम्बन्ध (साहचर्य) सीखे जाते हैं, उन्हें अनुबन्धन का नाम दिया जाता है (Marx, 1976)। अनुबन्धन को प्राचीन एवं नैमित्तिक प्रक्रियाओं में वर्गीकृत किया जाता है। अनुबन्धन पर प्रबलन (Reinforcement) का विशेष प्रभाव पड़ता है।

3. वाचिक अधिगम (Verbal Learning) - अधिगम के विभिन्न प्रकारों में वाचिक अधिगम या शाब्दिक अधिगम का मनुष्य के जीवन में अत्यधिक महत्व है। क्योंकि यह योग्यता मनुष्यों में ही पाई जाती है और बातों, विचारों एवं भावनाओं के पारस्परिक अदान-प्रदान में इसी क्षमता का उपयोग होता है।

यहाँ पर वाचिक अधिगम का आशय भाषा या वाचिक सामग्री की मौलिक इकाइयों के अधिगम से है। उदाहरणार्थ, दी गई सूची, संख्याएँ, कविता के अंश तथा अक्षरों को निर्देशानुसार याद करना वाचिक अधिगम का उदाहरण है।

1.6 वाचिक अधिगम के पक्ष

अधिगम के अन्य क्षेत्रों की भाँति वाचिक अधिगम के तीन प्रमुख पक्ष हैं। इन्हें क्रमशः प्रयोज्य, अधिगम सामग्री एवं अधिगम-विधियों का नाम दिया जाता है।

1. वाचिक अधिगम में प्रयोज्य (Subjects) - वाचिक अधिगम के लिए मानव प्रयोज्यों की आवश्यकता पड़ती है क्योंकि अन्य प्राणियों में वाचिक का अभाव होता है। इस कार्य हेतु विभिन्न आयु, बुद्धि तथा अन्य विशेषता वाले व्यक्तियों, बच्चों या छात्रों को प्रयोज्य के रूप में चुना जा सकता है।
2. वाचिक अधिगम की सामग्री (Material) - वाचिक अधिगम के अध्ययनों में प्रायः दो प्रकार की वाचिक सामग्रियों का उपयोग होता है। इन्हें सार्थक एवं निरर्थक सामग्री का नाम दिया जाता है।

सार्थक सामग्री का आशय ऐसी वाचिक सामग्री से है जो अर्थपूर्ण होती है या जिसका शब्दकोशीय अर्थ उपलब्ध है। यथा, वस्तुओं के नाम, कविताएँ तथा कहानी आदि सार्थक सामग्री के उदाहरण हैं। अर्थात् अक्षरों या शब्दों से निर्मित ऐसे शब्द या वाक्य जिनका शब्दकोशीय अर्थ उपलब्ध होता है, सार्थक सामग्री कहे जाते हैं। प्रारम्भ में ऐसी ही सामग्रियों का उपयोग अधिक होता था।

निरर्थक सामग्री भी भाषा के अक्षरों से निर्मित की जाती है। परन्तु उसका कोई शब्दकोशीय अर्थ उपलब्ध नहीं होता है। इनके भी निर्माण में स्वर एवं व्यंजन ही सम्मिलित होते हैं। ऐसे शब्दों या पदों को निरर्थक पद (Nonsense syllables) भी कहते हैं। ऐसे शब्दों के निर्माण का कार्य पहले एबिंगहास (1885) द्वारा प्रारम्भ किया गया। इसमें साहचर्य मूल्य (Association value) कम पाया जाता है तथा उच्चारण भी कठिनाई से हो पाता है जैसे -

हिन्दी में - ख आ क, छ आ न, स ई त, त य क

अंग्रेजी में - NEK, SIW, MAZ

वाचिक अधिगम के क्षेत्रा में एबिंगहास (1885) ने सराहनीय कार्य किया है। उन्होंने इस तरह के 2300 निरर्थक पदों की रचना की जो वाचिक अधिगम के प्रयोगों में सामग्री के रूप मे प्रयुक्त होते रहे हैं। निरर्थक पद अपरिचित होते हैं, अतः इनके अधिगम पर पूर्वानुभव का प्रभाव नहीं पड़ता है तथा यदि दो समूहों पर प्रयोग करना है तो

उनके लिए समतुल्य सामग्री की व्यवस्था सरलता से की जा सकती है। इनका निर्माण प्रायः स्वर-व्यंजन-स्वर (CWC) द्वारा किया जाता है।

1.7 वाचिक अधिगम की विधियाँ

वाचिक सामग्रियों को सीखने के लिए क्रमिक अधिगम, युगल साहचर्य, उद्बोधन एवं पूर्वानुभव तथा अधिगम समय नामक विधियों का प्रयोग किया जाता है।

(i) क्रमिक अधिगम विधि (Serial Learning Methods) - क्रमिक अधिगम विधि से वाचिक सामग्री को एक निश्चित क्रम में प्रस्तुत किया जाता है और प्रयोज्य उसका उसी क्रम में पुनरोत्पादन करता है या उसे क्रम में दुहराता है। यथा, बच्चों द्वारा A-B-C-D या क-ख-ग सीखना क्रमिक अधिगम का उदाहरण है, क्योंकि अक्षरों को एक निश्चित क्रम में दिया जाता है तथा बच्चे उन्हें उसी क्रम में दुहराते हैं। इनमें एक पद उत्तेजक तो दूसरा अनुक्रिया और पुनः दूसरा उत्तेजक का और तीसरा पद अनुक्रिया का कार्य करता है, क्योंकि कोई भी एक पद दूसरे के बोले जाने का संकेत होता है। क्रमिक अधिगम में कभी-कभी ऐसा भी देखने को मिलता है कि प्रयोज्य आगे या पीछे से पद बोल जाते हैं। इससे क्रम भंग हो जाता है। इसे त्रुटि माना जाता है। ऐसा तभी होता है जबकि प्रयोज्य को सामग्री क्रमानुसार ठीक से याद नहीं हो पाती है। प्रारम्भिक प्रयासों में अशुद्धता साहचर्यो की संख्या अधिक मिलती है, परन्तु प्रयासों में उत्तरोत्तर वृद्धि होने से अशुद्धता साहचर्यो की संख्या घटती है।

(ii) युगल साहचर्य विधि (Paired Associate Learning) - इस विधि में पदों या शब्दों को जोड़ों में प्रस्तुत किया जाता है। यह बहुत ही प्रचलित विधि है (काकिन्स, 1894, 1896; जॉस्ट, 1897; म्यूलर एवं पिल्जेकर, 1900; ऐण्ड्रियाज 1960)। इस विधि में शब्दों के युग्म (जोड़े) बनाकर सूची तैयार की जाती है और पहले प्रयास में पूरी सूची दिखा दी जाती है। युग्मों को प्रस्तुत करने के लिए स्मृति ढोल (Memory drum) का प्रयोग किया जा सकता है। इसके द्वारा पहले-पहल दो से. के लिए युग्म का उत्तेजक शब्द (प्रथम शब्द) खिड़की पर आता है और तत्पश्चात् अनुक्रिया एवं उत्तेजक दो से. के लिए साथ-साथ प्रस्तुत किए जाते हैं। इस तरह पूरी सूची एक बार दिखा दी जाती है। इसके उपरान्त सूची के प्रथम युग्म की पहली इकाई प्रस्तुत की जाती है और प्रयोज्य उससे सम्बन्धित द्वितीय इकाई का प्रत्याह्वान करता है। इसी प्रकार अन्य युग्मों के भी प्रति पुनर्स्मरण कराया जाता है। इसमें प्रथम शब्द उत्तेजक का और द्वितीय शब्द अनुक्रिया का कार्य करता है।

इन युग्मित साहचर्य विधि में यदि प्रयोज्य गलत अनुक्रिया देता है तो उसे सही अनुक्रिया की जानकारी दे दी जाती है ताकि वह आवश्यक सुधार कर ले। इस प्रकार स्पष्ट हो रहा है कि क्रमिक अधिगम की अपेक्षा युग्मित अधिगम कठिन होता है। इस विधि में प्रयोज्य को प्रत्येक युग्म के सम्बन्ध में तीन बातें सीखनी पड़ती हैं।

- युग्म में उत्तेजक शब्द की पहचान करना।
- उत्तेजक से सम्बद्ध अनुक्रिया को याद करना।
- उत्तेजक एवं अनुक्रिया में साहचर्य स्थापित करना।

उत्तेजक एवं अनुक्रिया के बीच प्रारम्भ में साहचर्य की स्थापना करने में कठिनाई होती है और त्रुटियाँ अधिक प्राप्त होती हैं। परन्तु अभ्यास के अवसर बढ़ाने से साहचर्य स्थापना का कार्य सहज होता जाता है।

(iii) उद्बोधन एवं पूर्वानुमान विधि (Prompting and Anticipation Method) - इस विधि से अधिगम कराते समय पहले प्रयोज्य को पूर्वनिर्मित सूची के शब्द एक-एक करके दिखाते जाते हैं। सूची के प्रथम शब्द के ठीक ऊपर कोई एक चिह्न बना दिया जाता है। स्मृति ढोल से सूची दिखाने के बाद उसकी खिड़की पर चिन्ह लाया जाता है। यह चिह्न उद्बोधन का कार्य करता है तथा प्रयोज्य सम्बन्धित शब्द बोलता है। यदि प्रयोज्य का उत्तर गलत है तो सही शब्द उसे पुनः दिखा जाता है ताकि अगले प्रयास में उसे सहायता मिल सके। पूर्वानुमान विधि में उससे पूछा जाता है कि ''आगे क्या शब्द है?'' प्रयोज्य से पूर्वानुमान प्राप्त कर लेने के बाद वास्तविक शब्द दिखाया भी जाता है। यह उसके लिए प्रबलन का कार्य करता है। यदि अनुक्रिया गलत हैं तो उसे शुद्धता करने का अवसर मिल जायेगा और यदि सही है तो दिखाने से शुद्धता अनुक्रिया के स्थिरीकरण में सहायता मिल जाती है। दोनों विधियों को संयुक्त रूप में उद्बोधन एवं पूर्वानुमान विधि कहा जाता है।

(iv) अधिगम समय विधि (Learning Time Method) - इस विधि में प्रयोज्य को पूरी सामग्री याद करने के लिए दे दी जाती है तथा उसे पूर्णतः याद करने में वह जो समय लेता है उसे अंकित कर लिया जाता है। चूँकि इसमें समय ही अंकित किया जाता है, इसी कारण इसे अधिगम समय विधि कहा जाता है। वैसे, यह विधि कम उपयोगी है क्योंकि इससे अधिगम की गति का अनुमान नहीं लग पाता है। इसमें यह भी कमी है कि यदि प्रयोज्य वाचाल स्वभाव का है तो उसी में काफी समय तक उलझा रह जायेगा।

1.8 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान चुके हैं कि अधिगम क्या है? अधिगम नई परिस्थितियों के प्रतिक्रियाओं को प्राप्त करना या मुहाने प्रतिक्रियाओं की क्रियाशीलता को बढ़ाना है। इसी प्रकार अधिगम का मापन दो रूपों में गुणात्मक एवं मात्रात्मक में किया जा सकता है।

अधिगम के कई प्रकार होते हैं, पेशीय कौशल, अधिगम, अनुबन्ध एवं वाचिक अधिगम यहाँ वाचिक अधिगम से तात्पर्य भाषा या वाचिक सामग्री को मौलिक इकाईयों के अधिगम से है। इस इकाई में वाचिक अधिगम के तीन प्रमुख पक्षों का भी वर्णन किया गया है, जिसमें प्रमुख हैं - प्रयोज्य एवं सामग्री वाचिक। अधिगम

की कई विधियाँ हैं, जिसमें प्रमुख हैं - क्रमिक अधिगम विधि, युगल साहचर्य विधि, उद्बोधन एवं पूर्वानुमान विधि तथा अधिगम समय विधि।

1.9 शब्दावली

- **अधिगम:** अधिगम एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी अनुक्रिया वर्ग की मापनीय विशेषताओं में तात्कालिक या विलम्बित रीति से स्थायी परिवर्तन होता है और यह परिवर्तन प्रबलित अभ्यास के प्रकार्य या परिणाम स्वरूप होता है।
- **पेशीय कौशल अधिगम:** इससे तात्पर्य ऐसे कार्यों को सीखने से है जिसमें बाह्य व्यवहार या शारीरिक प्रक्रियायें प्रमुख रूप से प्रदर्शित होती हैं।
- **अनुबंधन:** अधिगम की ऐसी परिस्थितियाँ जिनमें नवीन प्रकार के उद्दीपक अनुक्रिया सम्बन्ध सीखे जाते हैं।
- **वाचिक अधिगम:** इससे तात्पर्य भाषा या वाचिक सामग्री की मौलिक इकाईयों के अधिगम से है।

1.10 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1- अधिगम मूलतः .... पर निर्भर करता है।

2- अभ्यास से कार्य में .... होनी चाहिए।

3- अधिगम सामान्यतः कई वर्गों में विभक्त होता है ....

(1) 4 (2) 3 (3) 6 (4) 5

4- वाचिक अधिगम के कई पक्ष हैं ....

(1) 2 (2) 3 (3) 5 (4) 4

5- पूर्वानुमान विधि में प्रयोज्य से पूछा जाता है कि ....

(1) आगे क्या शब्द है (2) पीछे क्या शब्द है (3) पूर्वानुमान करो

(4) प्रबलन का कार्य क्या है

उत्तर: (1) अभ्यास या प्रयास (2) उन्नति (3) पाँच (4) तीन

(5) (1) आगे क्या शब्द है

1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- सिंह, अरुण कुमार (2011): संज्ञानात्मक मनोविज्ञान
- श्रीवास्तव, रामजी (सम्पादक) (2003): संज्ञानात्मक मनोविज्ञान
- सिंह, आर.एन. एवं भारद्वाज, एस.एस. (2010): उच्च प्रायोगिक मनोविज्ञान

- Colin Martindale (1981) : Cognition and Consciousness.
- Geryd' YDewalle (1985) : Cognition, Information Processing and Motivation.
- Kathleen M. Galotti (1999) : Cognitive Psychology in and Out of the Laboratory.
- Margaret Matlin (1982) : Cognition.

1.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1) अधिगम के स्वरूप को स्पष्ट कीजिये। अधिगम का मापन कैसे करते हैं वर्णन कीजिए।
2) वाचिक अधिगम के विभिन्न पक्षों का वर्णन कीजिए।
3) वाचिक अधिगम की विधियों का वर्णन कीजिए।
4) अधिगम का अर्थ स्पष्ट करते हुये इसके प्रमुख प्रकारों का वर्णन कीजिए।

इकाई-2 प्राचीन एवं नैमित्तिक अनुबंधन,सीखने सम्बन्धी सिद्धान्त(हल, टालमैन एवं गथरी) (Classical and Instrumental Conditioning, Theory of Learning:- Hull, Tollman and Guthrie)

इकाई संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 अनुबंधन सिद्धान्त

2.4 प्राचीन या पैवलावियन अनुबंधन

2.5 नैमित्तिक अनुबंधन

2.6 प्राचीन एवं नैमित्तिक अनुबंधन में अन्तर

2.7 अनुबंधन के निर्धारक

2.8 हल का प्रबलन सिद्धान्त

2.9 टालमैन का संकेत अधिगम सिद्धान्त

2.10 गथरी का सानिध्य सिद्धान्त

2.11 सारांश

2.12 शब्दावली

2.13 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

2.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.15 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

अधिगम की व्याख्या करने वाले उपागमों में अनुबंधन एक बहुचर्चित उपागम है। रैथस के अनुसार, अनुबंधन अधिगम का एक ऐसा सरल रूप है जिसमें उद्दीपकों एवं अनुक्रियाओं के बीच साहचर्य स्थापित किये जाते हैं। इसके दो प्रारूप हैं- जिन्हें प्राचीन एवं नैमित्तिक अनुबंधन कहते हैं। प्राचीन अनुबंधन की आधारशिला पैवलाव ने रखी थी तथा नैमित्तिक अनुबंधन का श्रेय स्किनर, थार्नडाइक तथा वेख्टरेव को है।

प्राचीन अनुबंधन अधिगम का सरलतम रूप है जिसमें प्राणी दो उद्दीपकों में साहचर्य सीखता है। नैमित्तिक अनुबंधन के द्वारा जटिल व्यवहारों का अर्जन किया जा सकता है। इसकी उपयोगिता प्राचीन अनुबंधन की तुलना में अधिक है। इस तकनीक का अभिग्रह है कि प्राणी की अनुक्रिया का कोई न कोई निमित्त होता है।

इसी आधार पर इसका नाम नैमित्तिक पड़ा है। इसे संक्रियात्मक अनुबंधन भी कहते हैं। क्योंकि इसमें प्राणी अधिगम परिस्थिति का अन्वेषण करके लक्ष्य प्राप्ति के लिए व्यवहार करता है। रैथस के अनुसार नैमित्तिक अनुबंधन संक्रियात्मक अधिगम का एक रूप है, क्योंकि इसमें प्राणी का संक्रियात्मक व्यवहार किसी निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति में नैमित्तिक कार्य करता है।

प्राचीन अनुबंधन के कई प्रकार हैं, जिनमें प्रभुख हैं - अग्रमुखी अनुबंधन, पृष्ठमुखी अनुबंधन, कालिक अनुबंधन, सहसामयिक अनुबंधन। इसी प्रकार नैमित्तिक अनुबंधन के प्रकारों को कई वर्गों में विभक्त करते हैं, जिनमें प्रमुख हैं - पुरस्कार प्रशिक्षण, परिहार प्रशिक्षण, अकर्म प्रशिक्षण, दण्ड प्रशिक्षण। नैमित्तिक अनुबंधन में प्रबलनों की विशेष भूमिका होती है। प्राचीन एवं नैमित्तिक अनुबंधन की प्रक्रियाओं में कुछ विशेष प्रकार की घटनायें प्राप्त होती हैं जिन्हें अनुबंधन के गोचर कहा जाता है। ये गोचर हैं - विलोप, स्वतः पुनरावर्तन, अवरोध, विलम्ब का अवरोध, अनुबंधित अवरोध, संकलन प्रभाव, सामन्यीकरण, विभेदन एवं उच्चक्रम अनुबंधन।

अनुबंधन के कई प्रमुख निर्धारक हैं - अभ्यास, समय अन्तराल, प्रबलन, अभिप्रेरणा, प्रबलन की विधि आदि। प्रबलन के कई सिद्धान्त हैं - जिसमें हल का क्रम व्यवहार सिद्धान्त टालमैन का संकेत अधिगम सिद्धान्त एवं गथरी का सानिध्य सिद्धान्त प्रमुख हैं। इनका विशद् वर्णन इस इकाई में किया जायेगा।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान सकेंगे:

- प्राचीन या पैवलावियन अनुबंधन क्या है?
- नैमित्तिक अनुबंधन एवं उसके प्रमुख प्रकार?
- अनुबंधन के कौन-कौन से निर्धारक हैं?
- हल का प्रबलन सिद्धान्त।
- टालमैन का संकेत अधिगम सिद्धान्त।
- गथरी कार सानिध्य सिद्धान्त।

2.3 अनुबन्धन सिद्धान्त

अधिगम के विभिन्न सिद्धान्तों की तुलना में अनुबंधन पर अत्यधिक प्रायोगिक कार्य हुए हैं। अनुबंधन को ऐसे साहचर्यात्मक या अधिगम प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जाता है जिसमें नवीन प्रकार के उद्दीपक-अनुक्रिया साहचर्यों का निर्माण करना सीखा जाता है। (Conditioning is the process by which

conditioned response are learned-Hilgard et.al. 1975)। अनुबन्धन को प्राचीन एवं नैमित्तिक अनुबंधन में वर्गीकृत किया गया है।

2.4 प्राचीन या पैवलावियन

प्राचीन अनुबंधन प्रक्रिया को प्रतिष्ठित करने का श्रेय नोबेल पुरस्कार विजेता रूसी दैहिकशास्त्री पैवलाव (Pavlov, 1927) को दिया जाता है। वैसे कुछ अन्य मनोवैज्ञानिकों के भी कार्यों से इस अवधारणा का प्रचार तथा प्रसार हुआ है। यह वह अधिगम प्रक्रिया है जिसमें एक स्वाभाविक (Natural) या अनुबंधित उद्दीपक एवं एक तटस्थ (Neutral) या अनुबंधित उद्दीपक के बीच साहचर्य सीखकर अनुबंधित उद्दीपक (CS) के प्रति वह अनुक्रिया प्राणी करने लगता है जो पहले केवल अनानुबंधित उद्दीपक (UCS) के प्रति करता था (Ruch, 1967; D' Amato, 1970; Marx, 1976)। इस दशा में उत्पन्न व्यवहार को अनुबंधित अनुक्रिया (Conditioned Response : CR) कहा जाता है। प्राचीन अनुबंधन को और अधिक स्पष्ट करने के लिए पैवलाव के प्रायोग का उल्लेख किया जा सकता है।

पैवलाव का प्रयोग - पैवलाव ने एक प्रयोग में यह ज्ञात करने का प्रयास किया कि क्या प्रयोज्य (कुत्ता) भोजन के अतिरिक्त किसी अन्य तटस्थ या अस्वाभाविक अनुबंधित उद्दीपक (CS) के भी प्रति लार स्राव का प्रदर्शन कर सकता है। इसके लिए पैवलाव ने एक कुत्ते की लार ग्रन्थि का आपरेशन करके उससे एक नली को जोड़ दिया तथा उसका सम्बन्ध एक परखनली (Test tube) से कर दिया ताकि लार-स्राव को उसमें एकत्रित किया जा सके (देखिए चित्रा-1)। आपरेशन के बाद कुत्ते को प्रयोगशाला की परिस्थिति से अवगत कराया गया ताकि वह प्रयोग की अवधि में कोई असंगत व्यवहार न करे। तत्पश्चात् उसे उपकरण मे बाँध दिया गया ताकि हिल न सके। प्रयोज्य पहले से ही भूखा रखा गया था। भोजन प्रस्तुत करने से पहले ध्वनि प्रस्तुत की गई। ध्वनि सुनने पर उसने चौंकने एवं कान खड़ा करने का व्यवहार किया। इस प्रक्रिया की पुनरावृत्ति से ध्वनि को भोजन प्रस्तुत किये जाने का संकेत समझ लिया और भोजन के प्रति की जाने वाली लार स्राव की अनुक्रिया ध्वनि के भी प्रति करने लगा। यह प्रक्रिया चित्रा में दर्शायी गयी है। ध्वनि एवं भोजन को उत्तरोत्तर प्रयासों से युग्मित करके प्रस्तुत करने से लार स्राव की मात्रा बढ़ती गयी एवं अनुक्रिया प्रदर्शित करने में लगने वाला समय घटता गया। तीसरे प्रयास में स्राव 60 बूँद हो गया एवं समय केवल 2 से लिया गया।

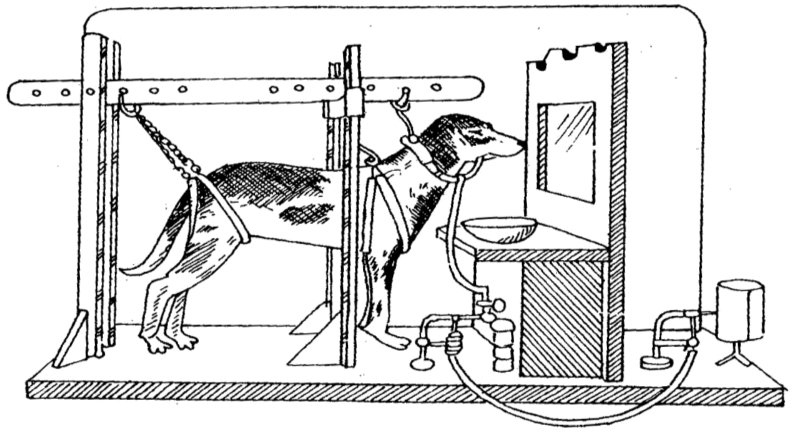

चित्र —प्राचीन या पैवलावियन अनुबंधन का प्रायोगिक प्रारूप : पैवलाव (1927) पर आधारित

अर्थात् उसने घण्टी की ध्वनि एवं भोजन में साहचर्य सीख लिया। चूँकि प्रशिक्षण के पूर्व ध्वनि में अनुक्रिया उत्पन्न कराने की क्षमता नहीं थी, अतः ध्वनि का अनुबंधित उद्दीपक (CS) और उसके प्रति लार स्राव को अनुबंधित अनुक्रिया (CR) का नाम दिया गया। इसके विपरीत भोजन को अनानुबंधित उद्दीपक (UCS) एवं उसके प्रति प्रत्याशित अनुक्रिया लार स्राव को अनानुबंधित (UCR) कहा जायेगा।

प्राचीन अनुबंधन के प्रकार (Types of Classical Conditioning) -

प्राचीन अनुबंधन के निम्नांकित भेद हैं। इन्हें चित्रा 03 में दर्शाया गया है।

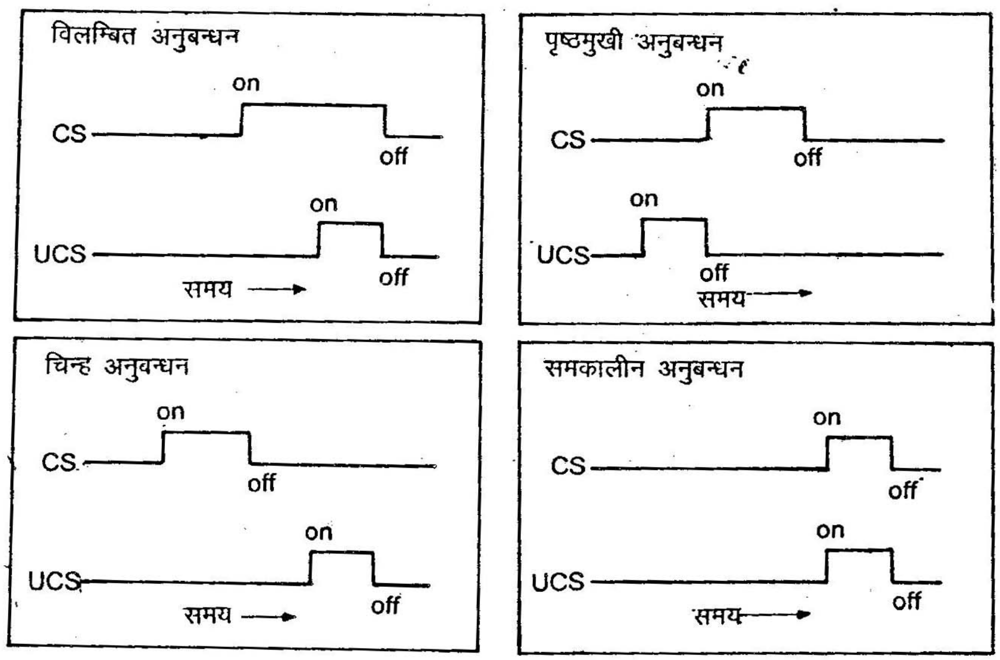

चित्र —प्राचीन या पैवलावियन अनुबंधन के प्रकार : चित्र से CS एवं UCS में समय सम्बन्ध भी इंगित हो रहा है।

1. अग्रमुखी अनुबंधन (Forward Conditioning) - इस विधि में अनुबंधित उद्दीपक (CS) पहले और अनानुबंधित उद्दीपक (UCS) बाद में प्रस्तुत किया जाता है। यह सर्वाधिक सफल विधि है। इसके दो प्रकार हैं। प्रथम-विलम्बित अनुबंधन -इसमें अनुबंधित उद्दीपक के कुछ समय बाद अनानुबंधित उद्दीपक दिया जाता है। द्वितीय-चिद्द अनुबंधन - इसमें अनुबंधित उद्दीपक के काफी समय बाद अनानुबंधित उद्दीपक प्रस्तुत किया जाता है। अर्थात् प्रयोज्य को स्मृति के आधार पर अनुक्रिया करनी होती है। यह अपेक्षाकृत कम सफल विधि है (मारक्विस, 1961)।

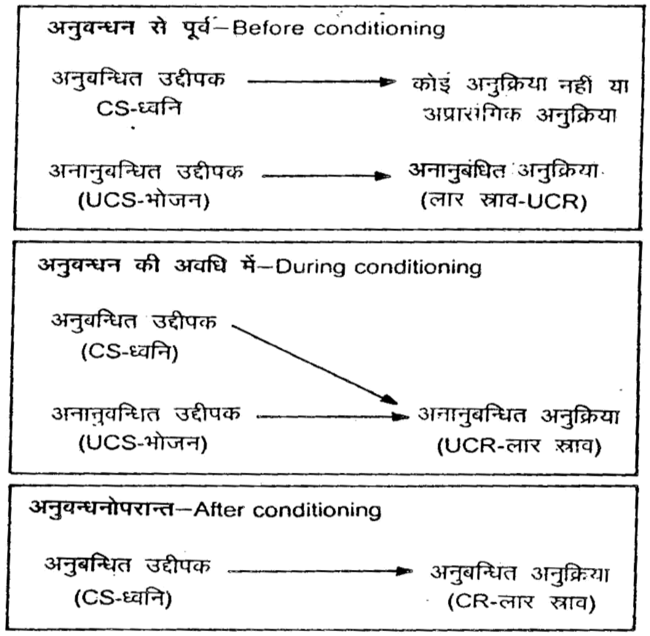

चित्र —प्राचीन अनुबंधन का चित्रण। CS एवं UCS में साहचर्य स्थापित हो जाने पर प्रयोज्य CS के प्रति भी लार स्राव करने लगता है। CS के प्रति लार-स्राव को UCR कहा जाता है।

2. पृष्ठमुखी अनुबंधन (Backward Conditioning)- इस विधि में अनानुबंधित उद्दीपक (UCS) पहले और अनुबंधित उद्दीपक (CS) बाद में प्रस्तुत किया जाता है। अनेक लोगों ने असफल विधि कहा है (जैसे-कैसन, 1935य पोर्टर, 1938य हिलगार्ड एवं मारक्विस, 1961)। परन्तु स्वीजर (1930) ने इसके आधार पर साहचर्य स्थापित होने का प्रमाण प्राप्त किया है।
3. कालिक अनुबन्धन (TemporalConditioning)- इसमें कोई अनुबंधित उद्दीपक (CS) प्रयुक्त नहीं होता है बल्कि अनानुबंधित उद्दीपक ही निश्चित अन्तरालों पर प्रस्तुत करके प्रयोज्य को उसी निश्चित अन्तराल पर व्यवहार करने का प्रशिक्षण दिया जाता है। जैसे, प्रत्येक दो मिनट पर भोजन देकर लार स्राव 2-2 मिनट पर करने का प्रशिक्षण देना। इससे स्पष्ट है कि इसमें समय अन्तराल ही अनुबंधित उद्दीपक का कार्य करता है।
4. सहसामायिक अनुबन्धन (Stimultaneous Conditioning)- इस विधि में अनुबंधित (CS) एवं अनानुबंधित (UCS) दोनों उद्दीपक एक ही साथ प्रस्तुत तथा अदृश्य होते हैं।

2.5 नैमित्तिक अनुबंधन

स्किनर (1938) द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त नैमित्तिक अनुबंधन कहा जाता है। यह प्राचीन अनुबंधन की अपेक्षा अधिक उपयोगी तथा व्यावहारिक है। प्राचीन अनुबंधन में वांछित व्यवहार उत्पन्न करने के लिए सम्बन्धित उद्दीपक पहले प्रदर्शित किया जाता है। इसके विपरीत नैमित्तिक अनुबंधन की अवधारणा यह है कि प्राणी को

वांछित उद्दीपक या परिणाम प्राप्त करने या कष्टादायक उद्दीपक से बचने के लिए प्रत्याशित, उचित या सही अनुक्रिया (व्यवहार) पहले स्वयं प्रदर्शित करना होता है। अर्थात् उद्दीपक या परिस्थिति के निमित्त प्राणी द्वारा किया जाने वाला व्यवहार ही परिणाम का स्वरूप निर्धारित करता है। इसी कारण इसे नैमित्तिक अनुबंधन कहते हैं (Hulse et. al. 1975)। इसी आधार पर इसे संक्रियात्मक या क्रियाप्रसूत अधिगम (Operant learning) भी कहा जाता है (Hilgard and Bower, 1981)। पोस्टमैन एवं इगन (1967) ने भी लिखा है कि नैमित्तिक अनुबंधन में धनात्मक प्रबलन (S+) का प्राप्त होना या नकारात्मक प्रबलन (S-) से बचना इस बात पर निर्भर (Contigent) करता है कि किसी अधिगम परिस्थिति में प्रयोज्य कैसा व्यवहार (उचित/अनुचित) करता है।

नैमित्तिक अनुबंधन के प्रकार (T**ypes of Instrumental conditioning**) - नैमित्तिक अनुबंधन को मुख्यतया चार वर्गों में विभक्त किया जाता है -

1. पुरस्कार प्रशिक्षण (Reward Training) - पुरस्कार प्रशिक्षण से तात्पर्य है उचित या शुद्धता अनुक्रिया करके पुरस्कार या धनात्मक प्रबलन प्राप्त करना। इसके लिए प्रायः स्कीनर बॉक्स का उपयोग किया जाता है। इसमें प्रयोज्य (चूहे) को भोजन से काफी समय तक वंचित करके रखा जाता है। प्रारम्भ में प्रयोज्य अनेकानेक प्रकार के असंगत व्यवहार (जैसे-उछलना, कूदना, काटना आदि) प्रदर्शित करते हैं। ये व्यवहार उपयुक्त नहीं है। अतः उसे भोजन नहीं मिलेगा। यदि उसे भोजन प्राप्त करना है तो बॉक्स में लगे लीवर को दबाना होगा। इस परिस्थिति में यही शुद्धता अनुक्रिया (Correct Response: CR) है। यदि लीवर अचानक दब जाता है तो तश्तरी में स्वतः भोजन आ जाता है जिसे प्रयोग्य ग्रहण (UCR) कर सकता है। इस प्रक्रिया की पुनरावृत्ति करने से प्रयोज्य अन्ततः लीवर दबाकर (RC) भोजन प्राप्त करना सीख जाता है। इससे स्पष्ट है कि सही अनुक्रिया करने पर (लीवर दबाना) ही पुरस्कार प्राप्त होगा। इससे यह भी स्पष्ट है कि नैमित्तिक अधिगम में प्राचीन अनुबन्धन के विपरीत प्रयोज्य को पर्यावरण की सक्रिय छानबीन करनी पड़ती है और शुद्धता अनुक्रिया (RC) का चयन करना पड़ता है। प्रस्तुत परिस्थिति में लीवर का उद्दीपक के रूप में कोई महत्व नहीं है। वह सही अनुक्रिया के घटित होने का माध्यम मात्रा है (चित्रा 7.13)। वास्तव में वह उद्दीपक नहीं है।

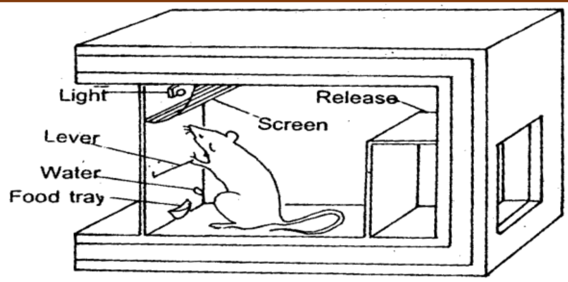

चित्र —स्कीनर बॉक्स में लीवर दबाकर भोजन (UCS) प्राप्त करने का प्रशिक्षण।

2. परिहार प्रशिक्षण (Avoidance Training) - परिहार प्रशिक्षण विधि में प्रयोज्य को किसी संकेत के प्रदर्शित होने पर वांछित व्यवहार करके कष्टदायक उद्दीपक से बचने का प्रशिक्षण दिया जाता है। इसका उपयोग मावरर (1940) और सिडमैन (1953) ने अधिक किया है। जैसे स्किनर बाक्स में प्रयोज्य को रखकर प्रकाश उत्पन्न करना। यदि वह लीवर नहीं दबाता है तो उसे विद्युत आघात से कष्टित किया जाता है। उदाहरणार्थ - एक दो कक्षीय बाक्स, जिसके बीच में फाटक होता है, बनाकर उसके फर्श में विद्युत आघात की व्यवस्था की जाती है। सर्वप्रथम प्रयोज्य को प्रथम कक्ष में रखा जाता है तथा कुछ समय बाद प्रकाश उत्पन्न करते हैं। प्रयोज्य पावदान दबाकर दरवाजा खोल सकता है और दूसरे कक्ष में जा सकता है। बल्व जलाने के कुछ समय बाद विद्युत आघात चालू किया जाता है तथा तब तक जारी रहता है, जब कि वह पावदान खोलकर दूसरे कक्ष में नहीं चला जाता है। प्रयोज्य प्रारम्भ में असंगत व्यवहार करता है और यदि ऐसा करने की अवधि में पावदान दब जाता है, तो दरवाजा खुला रहता है और वह उसमें जाकर कष्ट से बच जाता है। इस प्रक्रिया की पुनरावृत्ति करते रहने से प्रयोज्य अन्ततोगत्वा दरवाजा खोलकर दूसरे कक्ष में जाना सीख जाता है। इससे स्पष्ट है कि इसमें प्रकाश एक संकेत के रूप में प्रयुक्त होता है और कष्ट से बचने के लिए पावदान दबाकर दरवाजा खोलना तथा दूसरे कक्ष में चला जाना शुद्धता अनुक्रिया (RR) है।
3. अकर्म प्रशिक्षण (Omission Training) - जैसा कि इसके नाम से ही संकेत मिल रहा है इसमें किसी सीखे गये व्यवहार को त्यागकर पुरस्कार या प्रबलन प्राप्त करने का प्रशिक्षण दिया जाता है। जैसे स्किनर बॉक्स में पुरस्कार प्रशिक्षण देने के बाद प्रयोज्य को उसी में पुनः रखकर यह प्रशिक्षण दिया जा सकता है कि लीवर दबाने पर पुरस्कार प्राप्त नहीं होगा और लीवर न दबने पर (अकर्म) पुरस्कार प्राप्त होगा। ऐसा करने से प्रयोज्य लीवर दबाना बन्द कर देगा। इससे स्पष्ट है कि अर्जित व्यवहार को समाप्त करना अकर्म है या किसी बच्चे से कहना कि, 'टॉफी लेना है तो रोना बन्द करो' अकर्म व्यवहार है।

4. दण्ड प्रशिक्षण (Punishment Training) - अवांछित व्यवहारों या कार्यों को समाप्त करने में इस विधि का प्रायः उपयोग होता है। इस विधि में प्रयोज्य को सम्बन्धित व्यवहार का परित्याग न करने पर दण्डित करने की व्यवस्था की जाती है। जैसे- स्किनर बॉक्स में प्रयोज्य को लीवर दबाने का प्रशिक्षण देने के बाद पुनः उसी में रखें तो पूर्वानुभव के आधार पर वह लीवर दबाएगा। परन्तु इस अवधि में उसे पुरस्कृत करने के स्थान पर दण्डित किया जाय तो इस प्रक्रिया की पुनरावृत्ति करने से प्रयोज्य सीखी गई अनुक्रिया का परित्याग कर देगा।

नैमित्तिक अनुबंधन में प्रबलन (Training Reinforcement in Instrumental conditioning) -

नैमित्तिक अनुबंधन या संक्रियात्मक अनुबंधन में प्रबलनों की विशेष भूमिका होती है। जैसे-उचित या सही व्यवहार (अनुक्रिया) किये जाने पर धनात्मक प्रबलन (Positive Reinforcement) की आपूर्ति की जाती है या अनुचित व्यवहार किये जाने पर नकारात्मक उद्दीपक (दण्ड) का उपयोग किया जाता है ताकि उसकी पुनरावृत्ति न हो सके। प्रबलनों को चार वर्गों में विभक्त कर सकते हैं -

1. धनात्मक प्रबलन (Positive Reinforcement) - कोई भी सुखद वस्तु या उद्दीपक जो उचित व्यवहार होने पर प्रयोज्य को प्राप्त होता है। जैसे-अच्छे अंक प्राप्त करना। यह सम्बन्धित व्यवहार के प्रदर्शन की संभावना में वृद्धि करता है।

2. नकारात्मक प्रबलन (Negative Reinforcement) - किसी उचित व्यवहार के प्रदर्शित होने पर कष्टप्रद वस्तु की आपूर्ति रोक देना। इससे उचित व्यवहार के घटित होने की संभावना बढ़ती है। जैसे-शरारत कर रहे किसी बच्चे को तब जाने देना जब वह नोक-झोंक बन्द कर दे।

3. धनात्मक दण्ड (Positive Punishment) - किसी अनुचित व्यवहार के घटित होने पर किसी कष्टप्रद वस्तु या उद्दीपक को प्रस्तुत करना। जैसे-परीक्षा में कम अंक प्राप्त करने पर छात्रा की प्रशंसा न करना या निन्दा करना। इससे अनुचित व्यवहार की पुनरावृत्ति की संभावना घटती है।

4. नकारात्मक दण्ड (NegativePunishment) - किसी अनुचित व्यवहार के घटित होने पर सुखद वस्तु की आपूर्ति रोक देना। इससे अनुचित व्यवहार की संभावना घटती है। जैसे-उदण्ड व्यवहार कर रहे बालक को टीवी देखने से रोक देना।

प्रबलन अनुसूची (Schedules of Reinforcement)

प्रबलन की आपूर्ति कई रूपों में की जा सकती है।

1. स्थिर अनुपात सूची (Fixed Ratio Schedule) - निश्चित संख्या में अनुक्रिया करने पर पुरस्कार देना।
2. परिवर्तनीय अनुपात अनुसूची (Variable Ratio Schedule) - भिन्न-भिन्न संख्या में अनुक्रियाएँ करने पर पुरस्कार देना।

3. स्थिर अन्तराल अनुसूची (Fixed Interval Schedule) - एक निश्चित अन्तराल पर पुरस्कार की आपूर्ति करना।
4. परिवर्तनीय अन्तराल अनुसूची (Variable Interval Schedule) - भिन्न-भिन्न अन्तरालों पर प्रबलन या पुरस्कार की आपूर्ति करना।

प्राचीन एवं नैमित्तिक अनुबंधन की प्रक्रियाओं में कुछ विशेष प्रकार की घटनाएँ प्राप्त होती हैं। इन्हें अनुबंधन के गोचर कहा जाता हैं।

1. विलोप (Extinction) - विलोप का आशय किसी सीखी हुई अनुक्रिया को समाप्त या बन्द करने से है। प्रयोगों में यह देखा गया है कि यदि प्रयोज्यों द्वारा अनुबंधित उद्दीपकों (CS) के प्रति अनुक्रिया (CR) करने पर प्रबलन (पुनर्बलन) न दिया जाय तो इससे अनुक्रिया की मात्रा में कमी आती है और यदि ऐसे प्रयास की पुनरावृत्ति की जाती रहे तो अनुक्रिया की मात्रा क्रमशः घटती जाती है और एक अवस्था ऐसी आती है जबकि प्रयोज्य अनुक्रिया प्रदर्शित करना बन्द कर देता है। इसी गोचर को विलोप का नाम दिया जाता है (Pavlov, 1927; Skinner, 1938)। इससे स्पष्ट है कि अनुबंधित अनुक्रिया करने पर प्रबलन या पुनर्बलन से वंचित करने पर इसका अनुक्रिया के प्रदर्शन की संभावना पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इस प्रसंग में कुछ निष्कर्ष भी प्राप्त हुए हैं।

1. यदि विलोप की प्रक्रिया न प्रयुक्त की जाय तो अनुबंधित का प्रदर्शन दीर्घ अन्तरालों पर भी होता है। अर्थात् मात्रा समय व्यतीत होने से अनुक्रिया में ह्रास कम होता है (Hilgard and Humphreys, 1938; Wundt, 1937; Razarn, 1939; Skinner, 1950)।
2. यदि अनुबंधित अनुक्रिया का अत्यधिक प्रशिक्षण किया गया है तो विलोप विलम्ब से होता (Elson, 1938; Osgood, 1953)।
3. यदि विलोप के समय प्रयासों के बीच मध्यान्तर (Interval) दीर्घ रहा है तो विलोप सरलता से नहीं होगा (रिनाल्ड्स, 1945; रोहट, 1947)।
4. प्रारम्भ में विलोप की गति अधिक और बाद में मन्द हो जाती है (Osgood, 1953)।
5. जिन अनुक्रियाओं को सीखने में परिश्रम अधिक लगता है उनका विलोप शीघ्र होता है (केपहार्ट आदि, 1958)।
6. सतत प्रबलन की अपेक्षा आंशिक प्रबलन की दशा में सीखी गई अनुक्रिया का विलोप विलम्ब से होता है (हम्फ्रीज, 1939)।
7. वितरित विधि से सीखी गई अनुक्रिया का विलोप विलम्ब से होता (रिनाल्ड्स, 1954)।

8. अवसादी (Depressive) - दवाओं के प्रयोगों में यह भी देखा गया है। उत्तेजक दवाओं के उपयोग से विलोप विलम्ब से होता है (स्कीनर, 1935)।

2. स्वतः पुनरावर्तन (Spontaneous Recovery) - अनुबंधन के प्रयोगों में यह भी देखा गया है कि यदि विलोप की प्रक्रिया पूरी होने के कुछ समय बाद अनुबंधित उद्दीपक पुनः प्रस्तुत किया जाय तो अनुबंधित अनुक्रिया (CR) की कुछ न कुछ मात्रा प्रदर्शित होती है। इससे स्पष्ट है कि अनुक्रिया के पुनः प्रदर्शित होने में केवल विश्राम कारक का महत्व है। इस गोचर को स्वतः पुनरावर्तन कहते है (देखिए चित्र 7.14)। पैवलाव (1927) एवं एलसन (1938) ने क्रमशः प्राचीन एवं नैमित्तिक अनुबंधनों में स्वतः पुनरावर्तन गोचर प्राप्त किया है। इस प्रसंग में भी कुछ निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं -

(i) स्वतः पुनरावर्तन से प्राप्त अनुक्रिया की मात्रा कभी भी शत प्रतिशत नहीं होती है।
(ii) यदि मध्यान्तर (विश्राम) दीर्घ रखा जाय तो अनुक्रिया की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक प्राप्त होती है।
(iii) स्वतः पुनरावर्तन विश्राम का परिणाम है।
(iv) स्वतः पुनरावर्तन का सम्बन्ध विलोप से है।

3. अवरोध (Inhibition) - जिन कारकों का अनुबंधन पर बाधक प्रभाव पड़ता है उन्हें अवरोध

का नाम दिया जाता है। अवरोध प्रभाव अनेक प्रकार के हो सकते हैं। यथा, बाह्य अवरोध (External Inhibition) - यदि अधिगम के समय अप्रासंगिक कारक सक्रिय होकर अधिगम को अवरोधित करते हैं तो उन्हें बाह्य अवरोध कहा जाता है (जैसे, शोर का बाधक प्रभाव)। पैवलाव ने यह निष्कर्ष भी दिया है कि लार स्राव के समय उनकी उपस्थिति का अनुक्रिया पर अवरोधक प्रभाव पड़ता था। इसके अतिरिक्त विलम्ब का अवरोध (Inhibition Of Delay) भी पाया जाता है। ऐसा पाया गया है कि अनुबंधित उद्दीपक के प्रदर्शन के समय पर अनुक्रिया की मात्रा पूरी नहीं प्राप्त होती है परन्तु जैसे-जैसे अनानुबंधित उद्दीपक के प्रस्तुत होने का समय समीप आता जाता है वैसे-वैसे अनुक्रिया की मात्रा बढ़ती है। इसे विलम्ब का अवरोध कहते हैं। अर्थात् अनानुबंधित उद्दीपक के प्रदर्शन का समय भी अनुक्रिया की मात्रा को प्रभावित करता है।

अनुबंधित अवरोध (Conditioned Inhibition) - यदि अनुबंधित उद्दीपक के साथ कोई नया उद्दीपक सम्बद्धकर दिया जाय परन्तु ऐसे प्रयासों में प्रबलन न दिया जाय तो प्रयोज्य ऐसी दशा मे अनुक्रिया बन्द कर देता है। जैसे, स्वर उद्दीपक के प्रति अनुबंधित अनुक्रिया का प्रशिक्षण देने के बाद यदि स्वर के साथ कोई नया उद्दीपक (जैसे-स्पर्श) भी दिया जाय परन्तु अनुक्रिया होने पर प्रबलन न दिया जाय तो आगे चलकर स्वरस्पर्श की दशा में अनुक्रिया अवरोधित होती है। अतः इसे अनुबंधित अवरोध कहते है।

अवरोध के प्रभाव को समाप्त भी किया जा सकता है। ऐसा करने से अवरोधित अनुक्रिया की मात्रा में वृद्धि होती है। ऐसे गोचर को अनावरोध (Disinhibition) कहते हैं। ऐसा करने के लिए एक नवीन तटस्थ

उद्दीपक प्रस्तुत किया जाता है और इस दशा में प्रबलन किया जाता है। इससे विलुप्त अनुक्रिया का पुनः प्रदर्शन होने लगता है तथा अनुक्रिया की मात्रा भी बढ़ती है। वुडवरी (1943) ने नैमित्तिक अनुबंधन में भी इसको प्राप्त किया है।

4. संकलन प्रभाव (Summation Effect) - यदि एक अनुक्रिया दो अनुबंधित उद्दीपकों के प्रति अनुबंधित की गई है तो दोनों उद्दीपकों को एक साथ प्रस्तुत करने पर प्राप्त होने वाली अनुक्रिया की मात्रा में वृद्धि होती है। अर्थात् अनुक्रिया की मात्रा अलग-अलग उद्दीपकों के प्रति प्राप्त होने वाली मात्रा के बराबर भी हो सकती है (Pavlov, 1927)। एनिन्जर (1952) ने नैमित्तिक अनुबंधन में भी यह प्रभाव प्राप्त किया है। इसे संकलन प्रभाव कहा जाता है।
5. सामान्यीकरण (Generalization) - उद्दीपकों के परिवर्तित होने पर अनुक्रियाओं का उत्पन्न होना या उद्दीपकों के स्थिर रहने पर अनुक्रिया प्रतिमान का परिवर्तित होना सामान्यीकरण कहा जाता है। प्राचीन एवं नैमित्तिक दोनों ही अनुबंधनों में यह गोचर पाया जाता है। सामान्यीकरण प्रमुख प्रकार निम्नांकित है -

(i) उद्दीपक सामान्यीकरण (Stimulus Generalization) - इससे तात्पर्य है कि यदि मूल अनुबंधित उद्दीपक (CS) से भिन्न परन्तु मिलता-जुलता नया उद्दीपक प्रस्तुत किया गया जाय तो उसके भी प्रति अनुबंधित अनुक्रिया प्राप्त होगी। जैसे, यदि एक निश्चित तीव्रता के प्रकाश (जैसे, **L5**) के प्रति अनुक्रिया अनुबंधित की जाय और बाद में कुछ नये प्रकाश उद्दीपक (जैसे, **L1,L2,L3,L4,L5,L6,L7,L8,L9**) प्रस्तुत किये जायें तो उनके भी प्रति अनुबंधित अनुक्रिया हो सकती है। जैसे-जैसे मूल एवं नवीन उद्दीपकों में समानता सम्बन्धी वृद्धि होगी, वैसे-वैसे अनुबंधित के उत्पन्न होने की संभावना भी बढ़ेगी (Hovland, 1937; Candland, 1968)। इससे स्पष्ट है कि उद्दीपक सामान्यीकरण की प्रवणता (Gradient) या मात्रा मूल एवं नवीन उद्दीपकों में समानता की मात्रा पर निर्भर करती है (इप्सटीन एवं वर्सटीन, 1966; वर्सटीन, 1967)। गटमैन एवं कैलिश (1956) ने कबूतरों पर प्रयोग करके नैमित्तिक अनुबंधन में भी यह गोचर प्राप्त किया है।

(ii) अनुक्रिया सामान्यीकरण (Response Generalization) - इस गोचर की दशा मे उद्दीपक पूर्ववत् रहता है, परन्तु अनुक्रिया प्रतिमान परिवर्तित होता है। जैसे- बेखटरेव (1932) ने कुत्ते को विद्युत आघात से बचने के लिए एक पैर उठाने का प्रशिक्षण दिया और उसके बाद वह पैर बाँध दिया गया। इस बार प्रयोज्य ने आघात से बचने के लिए दूसरा पैर उठाया जबकि वह पैर उठाने का प्रशिक्षण नहीं दिया गया था। यहाँ स्पष्ट है कि उद्दीपक पूर्ववत् था परन्तु अनुक्रिया का प्रतिमान परिवर्तित हो गया। अन्य लोगों ने भी यह गोचर प्राप्त किया है (जैसे-जैसे, 1924; हल 1943; बानू, 1958)।

(iii) विलोप का सामान्यीकरण (Generalization Of Extinction) - यदि एक दशा में दो या दो से अधिक अनुक्रियाओं का अनुबंधन कराया गया हो तो उसमें किसी एक का विलोप कर देने से अन्य अनुक्रियाओं का विलोप सरलता से हो जाता है (वास एवं हल, 1934)।

6. विभेदन (Discrimination) - दिए गए उद्दीपकों में अन्तर सीखकर उनके प्रति भिन्न-भिन्न व्यवहार करना विभेदन कहा जाता है। जैसे, यदि एक उद्दीपक के प्रति अनुक्रिया करने पर पुरस्कार और दूसरे के प्रति अनुक्रिया करने पर दण्ड दिया जाय तो प्रयोज्य प्रथम को धनात्मक उद्दीपक (S+) एवं द्वितीय को नकारात्मक उद्दीपक (S-) के रूप में मूल्यांकित करेगा और नकारात्मक उद्दीपक के प्रति व्यवहार करना बन्द कर देगा। अर्थात् वह दोनों उद्दीपकों में अन्तर स्थापित कर लेगा। लैश्ले (1930) ने चूहों पर प्रयोग करके निष्कर्ष दिया है कि विभेदन अधिगम में प्रबलन का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। यदि प्रशिक्षणोपरान्त कुछ नवीन उद्दीपक प्रस्तुत किये जायें तो प्रयोज्य उनमें से उस उद्दीपक के प्रति व्यवहार करेगा जो प्रशिक्षण अवधि के धनात्मक उद्दीपक (S+) से मिलता-जुलता होगा। अन्य उद्दीपकों के प्रति वह व्यवहार नहीं करेगा। इससे संकेत मिल रहा है कि विभेदन सीखना सामान्यीकरण की प्रक्रिया से सम्बन्धित है। इस गोचर पर अनेक लोगों ने कार्य किया है (जैसे-हल, 1952; स्पेन्स, 1942; हेनिंग, 1962; मैथ्यूज, 1966; मैकिन्टश, 1965)।
7. उच्चक्रम अनुबंधन (Higher Order of Conditioning) - यदि मूल अनुबंधित उद्दीपक (CS) के साथ कोई नया उद्दीपक युग्मित किया जाय तो प्रयोज्य उसके भी प्रति अनुबंधित अनुक्रिया (SR) करने लगता है। इस गोचर को उच्च क्रम अनुबंधन का नाम दिया गया है। पैवलाव (1927) एवं बेखटेरव (1932) ने इसका प्रायोगिक अध्ययन भी किया है।

2.6 प्राचीन एवं नैमित्तिक अनुबंधन में अन्तर

दोनों विधियों में पाये जाने वाले अन्तर इस प्रकार हैं –

प्राचीन अनुबंधन	नैमित्तिक अनुबंधन
1. इसके द्वारा सरल व्यवहारों का ही अधिगम होता है।	1. इसके द्वारा जटिल व्यवहारों का भी अधिगम किया जा सकता है।
2. इसमें प्राणी को दो उद्दीपकों के बीच साहर्च सीखना पड़ता है (जैसे, प्रका ा एवं भोजन में सम्बन्ध सीखना)। अतः इसे उद्दीपक प्रकार (S-type) का सीखना कहते हैं।	2. इसमें उद्दीपक तथा अनुक्रिया में साहचर्य सीखा जाता है। अतः इसे अनुक्रिया–प्रकार (R-type) का अधिगम कहा जाता है।
3. प्राचीन अनुबंधन में उद्दीपकों के बीच सान्निध्य (Contiguity) का प्रभाव साहचर्य पर पड़ता है। अर्थात्, समयकारक (UCS CS का अन्तराल) का इसमें वि ोश महत्व है।	3. नैमित्तिक अनुबंधन में प्रभाव का नियम कार्य करता है। जैसे, अनुक्रिया करने का पुरस्कार प्राप्त होने पर उद्दीपक अनुक्रिया सम्बन्ध दृढ़ होता है।
4. प्राचीन अनुबंधन में व्यवहार उत्पन्न होने के लिए उद्दीपक पहले दिया जाता है। इसे प्रतिकृत (Elicited) व्यवहार कहते हैं।	4. नैमित्तिक अनुबंधन में प्राणी को स्वयं उचित अनुक्रिया करके प्रबलन प्राप्त करना होता है। इसे घटित (Emitted) या संक्रियात्मक (Operant) व्यवहार कहते हैं।
5. प्राचीन अनुबंधन में अनैच्छिक क्रियाओं (Involuntary actions) का ही अधिगम किया जाता है। इस पर स्वायत तंत्रिका तंत्र का नियंत्रण रहता है (जैसे, लार स्राव)।	5. नैमित्तिक अनुबंधन में ऐच्छिक क्रियाओं का अधिगम होता है। इन पर केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र (CNS) का नियंत्रण रहता है।
6. यदि प्रत्येक प्रयास में पुरस्कार न दिया जाय तो अनुक्रिया का अनुबंधन कठिन हो जाता है।	6. नैमित्तिक अनुबंधन में सतत के स्थान पर आं ािक प्रबलन से भी सरलतापूर्वक अधिगम होता है।

2.7 अनुबन्धक के निर्धारक

अनुबन्धन के प्रमुख निर्धारक निम्नांकित हैं -

1. अभ्यास (Practice) - नवीन प्रकार के साहचर्य सीखने के लिए यथोचित स्तर तक अभ्यास कराना आवश्यक होता है अन्यथा प्रयोज्य समुचित रूप में अधिगम नहीं कर पाता है। क्लीटमैन एवं क्रिसलर (1927) ने निष्कर्ष प्राप्त किया है कि प्रयासों की संख्या बढ़ाने से अनुक्रियाओं के प्रदर्शित होने की संभावना में वृद्धि होती है।
2. समय अन्तराल (Time Interval) - यदि उद्दीपकों (CS एवं UCS) के बीच अन्तराल दीर्घ है तो साहचर्य सीखने में कठिनाई होती है। अतः इनके बीच अन्तराल समुचित रूप में रखना आवश्यक है (पैवलाव, 1938)। यही कारण है कि चिह्न अनुबंधन स्थापित करना कठिन हो जाता है। वोफिल (1932) के अनुसार-यदि दोनों उद्दीपकों के बीच का अन्तराल क्रमशः बढ़ाया जाय तो अनुक्रिया की संभावना घटती है। प्रायः 0.4 से का अन्तराल अधिक उपयुक्त पाया गया है। (फ्रिजवाटर तथा श्रस, 1957)

3. प्रबलन (Reinforcement) - प्रयोग की अवधि में अनुक्रिया प्रदर्शित होने पर पुरस्कार की व्यवस्था कर देने पर अधिगम पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। प्रबलन के अभाव में उद्दीपक अनुक्रिया में स्थापित होने वाला साहचर्य कमजोर पड़ता है। प्रबलन के कारण अनुक्रिया की मात्रा तथा शुद्धता ता में वृद्धि होती है (हट्ट, 1954; बेकन, 1962)।
4. अभिप्रेरणा (Motivation) - अनुबंधन के आधार पर सीखने के व्यवहार पर अभिप्रेरणा का भी प्रभाव पड़ता है। यही कारण था कि पैवलाव एवं स्कीनर आदि ने अपने प्रयोज्यों को पहले से ही भूखा रखा था। भूख आवश्यकता के कारण प्रयोज्यों के व्यवहार में सक्रियता बनी रहती है एवं वे लक्ष्य प्राप्त करने के प्रयासों में प्रयत्नशील रहते हैं।
5. प्रबलन की विधि (Method of Reinforcement) - किसी प्रयोग में व्यवहार किये जाने पर प्रबलन या तो सतत रूप में या आंशिक रूप में दिये जा सकते हैं। ऐसा पाया गया है कि यदि प्रत्येक प्रयास में प्रबलन दिया जाय तो आंशिक विधि की अपेक्षा अधिगम शीघ्र होता है। इस प्रसंग में यह भी पाया गया है कि सतत् विधि से स्थापित अनुबंधित अनुक्रिया का विलोप करना सरल एवं आंशिक विधि से अर्जित अनुक्रिया का विलोप करना कठिन होता है।
6. अन्य कारक (Other Factors) - उपर्युक्त कारकों के अतिरिक्त अनुबंधन पर कुछ अन्य कारकों का भी प्रभाव पड़ता है। पार्ले (1962) के अनुसार- यदि मानव प्रयोज्यों पर प्रयोग किया जाय तो अनुबंधन पर वैयक्तिक भिन्नताओं (Individual Differences) का स्पष्ट रूप में प्रभाव पाया जाता है। इसके अतिरिक्त अनुक्रियाओं की जटिलता भी अनुबंधन को प्रभावित करती है। कुछ लोगों ने आयु तथा अनुबंधन में नकारात्मक सम्बन्ध प्राप्त किया है (ब्रान एवं गीसेलहार्ट, 1959; मार्क्विस, 1931)।

2.8 हल का प्रबलन सिद्धान्त

प्रबलन सिद्धान्त का प्रतिपादन हल (Hull 1942) द्वारा किया गया है। इसे क्रमब) व्यवहार सिद्धान्त (Systematic behaviour theory) भी कहते है।

हल के अनुसार- जब प्राणी में कोई आवश्यकता (Need) उत्पन्न होती है (जैसे-भूख, प्यास या अन्य आवश्यकताएँ) तभी उस आवश्यकता की पूर्ति के लिए व्यवहार किया जाता है। आवश्यकता से उत्पन्न दशा की पूर्ति के लिए किया जाने वाला व्यवहार पूर्वानुभव या आदत पर निर्भर करता है। आवश्यकता से उत्पन्न स्थिति को अन्तर्नोद (Drive) कहा जाता है। यदि पूर्वानुभव या आदतशक्ति (Habit Strength) से समस्या का समाधान नहीं होता है तो प्राणी अन्य अनुक्रियाएँ करता है। अर्थात् सही अनुक्रिया अचानक उत्पन्न होगी और पुरस्कृत होने पर भविष्य में उसकी पुनरावृत्ति की संभावना बढ़ती है। इस प्रकार स्पष्ट हो रहा है कि आदत शक्ति (SHR) या उद्दीपक-अनुक्रिया सम्बन्ध का दृढ़ होना पुरस्कार या प्रबलन की प्रति पर निर्भर करता है SHR =f

(Reinforcement)। हल के अनुसार, उद्दीपक या समस्या (S) प्रस्तुत होने पर मस्तिष्क में उसके स्नायुविक चिन्ह (s) बनते हैं और इससे प्राणी में अव्यक्त अनुक्रिया प्रवृत्ति (r) सक्रिय होती है यदि में बाह्य अनुक्रिया (R) के रूप में व्यक्त होती है। अब यदि अनुक्रिया पुरस्कृत की जाती है तो उद्दीपक (S) एवं अनुक्रिया (R) में साहचर्य स्थापित होगा। हल द्वारा प्रस्तुत व्यवहार सम्बन्धी व्याख्या का चित्रण चित्रा 5 में किया गया है।

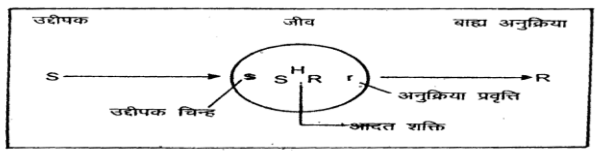

चित्र —हल के अनुसार व्यवहार प्रक्रम

हल के अनुसार, व्यवहार का प्रदर्शन होने के लिए अन्तर्नोद की अवस्था का उत्पन्न होना आवश्यक है क्योंकि यही आदत शक्ति (SHR) को सक्रिया करता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि अन्तर्नोद उद्दीपक का कार्य करता है। इसीलिए इसे अन्तर्नोद (Stimulus Drive : SD) कहा गया है। उदाहरणार्थ- भोजन से वंचित होने पर भूख अन्तर्नोद और पानी की आवश्यकता होने पर प्यास अन्तर्नोद उत्पन्न होगा। यही अन्तर्नोद प्राणी को लक्ष्योन्मुख बनाता है और प्राणी आदतानुसार उसकी पूर्ति का प्रयास करता है या नवीन अनुक्रियाओं का भी उपयोग कर सकता है। अतः किसी परिस्थिति में प्रदर्शित होने वाली प्रतिक्रिया की शक्ति (SDReaction potential) आदि शक्ति (SER) एवं अन्तर्नोद (D) की अन्तरक्रिया (Interaction) पर निर्भर करेगी एवं इन कारकों में से किसी एक के शून्य होने पर प्रतिक्रिया प्रदर्शित नहीं होगी। अर्थात् SER=f (SHR)x(D)

उपर्युक्त सूत्र से स्पष्ट है कि अनुक्रिया की तीव्रता आदत शक्ति एवं अन्तर्नोद की मात्रा पर निर्भर करती है और अनुक्रिया से प्राप्त होने वाला परिणाम (संतुष्टि या असंतुष्टि) ही भविष्य में उसकी पुनरावृत्ति निश्चित करेगा।

हल के सिद्धान्त का मूल्यांकन (Evaluation) - यद्यपि हल ने एक व्यापक सिद्धान्त प्रतिपादित करने का प्रयास किया है लेकिन इसमें भी कुछ कमियाँ हैं

1. हल का सिद्धान्त अत्यधिक जटिल है। इससे इसकी उपयोगिता सीमित रह गई है।
2. इस सम्बन्ध में यह प्रश्न किया जाता है कि यदि आदत निर्माण में संतुष्टि आवश्यक है तो प्राणी निषेधात्मक या कष्टदायक कार्य क्यों करता है।
3. इसमें वैयक्तिक भिन्नताओं में महत्व पर बल नहीं दिया गया है। इसी कारण इसका स्वरूप यांत्रिक हो गया है।

2.9 टालमैन का संकेत अधिगम सिद्धान्त

टालमैन (1886-1959) द्वारा प्रतिपादित संकेत अधिगम सिद्धान्त (1932), उद्देश्यपूर्ण व्यवहारवाद (Purposive behaviourism), प्रत्याशा (Expectancy) सिद्धान्त संकेत जेस्टाल्ट (Sign-Gestalt) सिद्धान्त या संकेत सार्थकता (Sign-significate) सिद्धान्त के भी नाम से जाना जाता है। इससे स्पष्ट है कि टालमैन का सिद्धान्त अनेक विचारों से प्रभावित सिद्धान्त है। इसकी प्रमुख विशेषताएँ निम्नांकित हैं -

1. यह सिद्धान्त व्यवहारवादी विचारधारा का समर्थन करता है।
2. यह व्यवहार की समग्रता एवं संज्ञानात्मकता पर बल देता है न आणविक विचारधारा पर।
3. यह सिद्धान्त व्यवहार को लक्ष्योन्मुख मानता है।
4. यह सिद्धान्त यह भी मानता है कि पर्यावरणीय संकेतों का अधिगम में महत्व है।
5. इस सिद्धान्त की मान्यता है कि अधिगम परिस्थिति में व्यवहार परिवर्तनशील हो जाता है और प्राणी लक्ष्य तक पहुँचने के लिए उस मार्ग का चयन करता है जिसमें शक्ति कम खर्च होती है। अर्थात् संज्ञानात्मक प्रक्रियाएँ मध्यवर्ती परिवर्त्यों की भूमिका निभाती हैं।

टालमैन ने अधिगम व्यवहार की व्याख्या करते हुए कहा है कि अधिगम की परिस्थिति में आने पर प्राणी उस परिस्थिति का मस्तिष्क में संज्ञानात्मक मानचित्रा निर्मित करता है। जैसे, भूल-भुलैया में बाएँ मुड़ना या दाएँ मुड़ना सीखना। अधिगम परिस्थिति के पक्षों (संकेतों) का मूल्यांकन करके प्राणी यह निश्चित करने का प्रयास करता है कि किस व्यवहार का परिणाम क्या होगा। अर्थात् उसका व्यवहार प्रत्याशा द्वारा निर्धारित होता है। प्रत्याशा एवं अनुक्रिया के अनुभव से संज्ञान का परिमार्जन होता रहता है और परिस्थिति के विभिन्न घटकों का लक्ष्य प्राप्त करने के दृष्टिकोण से मूल्यांकन किया जाता है। जिस वस्तु, उद्दीपक या संकेत के प्रति व्यवहार करने पर लक्ष्य या अर्थ प्राप्त है, उसमें तथा लक्ष्य में सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। जैसे- अनुबंधन के प्रयोग में ध्वनि (CS) को संकेत समझकर भोजन की प्रत्याशा में व्यवहार करना (CR)। इससे संकेत एवं अर्थ सम्बन्ध दृढ़ होते हैं, अन्यथा कमजोर पड़ते है। इसे शक्ति वर्धन सिद्धान्त कहा गया है (Osgood, 1953)।

1. यह सिद्धान्त विभिन्न अवधारणाओं के मिश्रण पर ही अधिक आधारित है।
2. इसमें अधिगम प्रेरणा के महत्व को सीमित कर दिया गया है।
3. जेस्टाल्टवादियों की भाँति टालमैन ने भी उच्च मानसिक प्रक्रियाओं को महत्वपूर्ण माना है। अतः इस सिद्धान्त के आधार पर निम्नस्तरीय प्राणियों के व्यवहार की समुचित व्याख्या करना कठिन है।
4. टालमैन के सिद्धान्त की प्रायोगिक उपलब्धि कम ही रही है।
5. टालमैन की व्याख्याओं में वैयक्तिक भिन्नताओं के महत्व का उल्लेख कम मिलता है।

2.10 सान्निध्य सिद्धान्त

मूलतः व्यवहारवादी यांत्रिक ढाँचे का प्रतिनिधित्व करने वाले सान्निध्य सिद्धान्त का प्रतिपादन गूथरी (Guthie, 1946) द्वारा किया गया है। गुथरी का निष्कर्ष है कि प्राणी अधिगम परिस्थिति में समस्या का समाधान करने के लिए विशिष्ट गतियों (Specific movements) को सीखता है न कि कार्य (Act) सीखता है। जिस गति से लक्ष्य (S) की प्राप्ति होती है भविष्य में भी पूर्ववत् परिस्थिति में उसी प्रकार की गति प्राणी द्वारा की जाती है। अर्थात् प्राणी के व्यवहार में रूढ़िवादिता (Stereotype) आ जाती है। गूथरी का यह भी कहना है उद्दीपक (लक्ष्य) एवं अनुक्रिया में समीपता बढ़ने से अधिगम की मात्रा बढ़ती है अन्यथा घटती है। समीपता से उद्दीपक (S) एवं अनुक्रिया (R) के साहचर्य दृढ़ होते है। इसके अतिरिक्त उद्दीपक एवं अनुक्रिया के बीच साहचर्य एक ही बार में स्थापित हो जाता है और बाद के प्रयासों में उसकी पुनरावृत्ति मात्रा होती है। यदि अनुक्रिया के साथ ही साथ उद्दीपक (लक्ष्य) का भी प्रदर्शन होता है तो दोनों में पूर्ण साहचर्य स्थापित हो जायेगा।

अपनी विचारधारा को प्रमाणित करने के लिए हार्टन के साथ गथरी (1946) ने विशेष प्रकार के समस्या बाक्सों में बिल्लियों को रखकर प्रयोग किया। इसमें एक खम्भा (Pole) था। प्रयोग में देखा गया कि प्रयास एवं त्रुटि व्यवहार करने की अवधि में जिस प्रकार शारीरिक गति से किसी बिल्ली को खम्भा दबाकर मुक्तिद्वार खोलने में सहायता मिली उसी गति का बिल्लियों ने अगले प्रयासों में भी उपयोग किया। जैसे-खम्भे को काटना, दबाना उस पर कूदना या धक्का मारना आदि। इससे स्पष्ट है कि प्रयोज्यों ने उद्दीपक संकेत (खम्भा) एवं अनुक्रिया में साहचर्य एक ही बार में सीख लिया।

गथरी के सिद्धान्त का मूल्यांकन (Evaluation) - यद्यपि गूथरी ने एक सरलित सिद्धान्त प्रतिपादित करने का प्रयास किया है, परन्तु इसकी वैधता विधिवत् प्रमाणित नहीं हो पाई है (सेवार्ड आदि, 1944; सेवार्ड, 1942; जीमैन एवं राइनर, 1953; वीकेन्स एवं प्लाट, 1954)। गूथरी की शिष्या वोक्स (Voeks, 1950) ने इस सिद्धान्त को उचित माना है। इस पर कुछ आक्षेप लगाये गये है -

1. अधिगम की विभिन्न प्रक्रियाओं की संतोषजनक व्याख्या इस सिद्धान्त से संभव नहीं है।
2. व्यवहार को रूढ़िवादी मानना उचित नहीं है। यह गत्यात्मक एवं परिवर्तनशील होता है।
3. यह कि साहचर्य एक ही बार में स्थापित हो जाता है, उचित नहीं है।
4. इस सिद्धान्त में वैयक्ति भिन्नताओं के महत्व को स्वीकार नहीं किया गया है। यह उचित नहीं है।

2.11 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान चुके हैं कि प्राचीन अनुबंधन क्या है? प्राचीन अनुबंधन अधिक की एक प्रक्रिया है, जिसमें एक स्वाभाविक एवं एक तटस्थ उद्दीपक के बीच साहचर्य सीखकर अनुबंधित उद्दीपक के

प्रति वह अनुक्रिया प्राणी करने लगता है जो पहले केवल अनानुबंधित उद्दीपक के प्रति करता था। प्राचीन अनुबंधन के कई प्रकार हैं - अग्रमुखी, पृष्ठमुखी, कालिक, सहसामयिक।

नैमित्तिक अनुबंधन की अवधारणा यह है कि प्राणी को वांछित उद्दीपक या परिणाम प्राप्त करने या कष्टदायक उद्दीपक से बचने के लिए प्रत्याशित, उचित या सही अनुक्रिया पहले स्वयं प्रदर्शित करना होता है। अर्थात् उद्दीपक या परिस्थिति के निमित्त प्राणी द्वारा किए जाने वाला व्यवहार ही परिणाम का स्वरूप निर्धारित करता है। नैमित्तिक अनुबंधन भी कई प्रकार हैं - पुरस्कार प्रशिक्षण, परिहार प्रशिक्षण, अकर्म प्रशिक्षण एवं दण्ड प्रशिक्षण।

नैमित्तिक अनुबंधन में प्रबलनों की विशेष भूमिका होती है। प्रबलनों को चार वर्गों में विभक्त करते हैं - धनात्मक प्रबलन, नकारातमक प्रबलन, धनात्मक दण्ड एवं नकारात्मक दण्ड। प्राचीन एवं नैमित्तिक दोनों ही अनुबंधनों में कुछ गोचर प्राप्त होते हैं - विलोप, स्वतः पुनरावर्तन, अवरोध, संकलन प्रभाव, सामान्यीकरण, विभेदन एवं उच्चक्रम अनुबंधन।

अनुबंधन के कुछ प्रमुख निर्धारक हैं - अभ्यास, समय अन्तराल, प्रबलन, अभिप्रेरणा, प्रबलन की विधि तथा इसके अलावा भी ऐसे तत्त्व हैं जो अनुबंधन को किसी न किसी रूप में प्रभावित करते हैं।

प्राचीन एवं नैमित्तिक अनुबंधन सिद्धान्तों के अतिरिक्त कुछ अन्य सिद्धान्त भी हैं, जिनमें हल का प्रबलन सिद्धान्त, टालमैन का संकेत अधिगम सिद्धान्त एवं गथरी का सान्निध्य सिद्धान्त। इन सिद्धान्तों का विशद् वर्णन इस इकाई में किया गया है।

2.12 शब्दावली

- **अधिगम:** यह वह प्रक्रिया है जिसमें एक उत्तेजना, वस्तु या परिस्थिति के द्वारा एक प्रत्युत्तर प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त यह प्रत्युत्तर एक प्राकृतिक या सामान्य प्रत्युत्त है।
- **प्राचीन अनुबंधन:** उत्तेजना और अनुक्रिया के बीच साहचर्य स्थापित करने की प्रथम विधि प्राचीन अनुबंधन है। यह वह अधिगम प्रक्रिया है जिसमें एक स्वाभाविक एवं एक तटस्थ उद्दीपक के बीच साहचर्य सीखकर अनुबंधित उद्दीपक के प्रति वह अनुक्रिया प्राणी करने लगता है जो पहले केवल अनानुबंधित उद्दीपक के प्रति करता था।
- **अग्रमुखी अनुबंधन:** इस विधि में अनुबन्धित उद्दीपक पहले और अनानुबंधित उद्दीपक बाद में प्रस्तुत किया जाता है।
- **पृष्ठमुखी अनुबंधन:** इस विधि में अनानुबन्धित उद्दीपक पहले और अनुबंधित उद्दीपक बाद में प्रस्तुत किया जाता है।

- **कालिक अनुबंधन:** इसमें कोई अनुबंधित उद्दीपक प्रयुक्त नहीं होता है, बल्कि अनानुबंधित उद्दीपक ही निश्चित अन्तरालों पर प्रस्तुत करके प्रयोज्य को किसी निश्चित अन्तराल पर व्यवहार करने का प्रशिक्षण दिया जाता है।
- **सहसामयिक अनुबंधन:** इस विधि में अनुबंधित एवं अनानुबंधित दोनों उद्दीपक एक साथ प्रस्तुत तथा अदृश्य होते हैं।
- **नैमित्तिक अनुबंधन:** नैमित्तिक अनुबंधन वह कोई भी सीखना है, जिसमें अनुक्रिया अवलम्बित पुनर्बलन पर आधारित हो तथा जिसमें प्रयोगात्मक रूप से परिभाषित विकल्पों का चयन सम्मिलित न हो।
- **पुरस्कार प्रशिक्षण:** पुरस्कार प्रशिक्षण से तात्पर्य है, उचित या शुद्धता अनुक्रिया करके पुरस्कार या धनात्मक प्रबलन प्राप्त करना।
- **परिहार प्रशिक्षण:** इसमें प्रयोज्य को किसी संकेत ने प्रदर्शित होने पर वांछित व्यवहार करके कष्टदादयक उद्दीपक से बचने का प्रशिक्षण दिया जाता है।
- **अकर्म प्रशिक्षण:** इसमें किसी सीखे गये व्यवहार को त्याग कर पुरस्कार या प्रबलन प्राप्त करने का प्रशिक्षण दिया जाता है।
- **दण्ड प्रशिक्षण:** इस विधि में प्रयोज्य को सम्बन्धित व्यवहार का परित्याग न करने पर दण्डित करने की व्यवस्था की जाती है।
- **प्रबलन:** ऐसी कोई वस्तु, कारक या उद्दीपक है जिसके प्रयुक्त किये जाने पर प्रक्रिया की सम्भाव्यता प्रभावित होती है।
- **धनात्मक प्रबलन:** कोई भी सुखद वस्तु या उद्दीपक जो उचित व्यवहार होने पर प्रयोज्य को प्राप्त होता है।
- **नकारात्मक प्रबलन:** किसी उचित व्यवहार के प्रदर्शित होने पर कष्टप्रद वस्तु की आपूर्ति रोक देना।
- **धनात्मक दण्ड:** किसी अनुचित व्यवहार के घटित होने पर किसी कष्टप्रद वस्तु या उद्दीपक को प्रस्तुत करना।
- **नकारात्मक दण्ड:** किसी अनुचित व्यवहार के घटित होने पर सुखद वस्तु की आपूर्ति रोक देना।
- **विलोप:** किसी सीखी हुयी अनुक्रिया को समाप्त या बन्द करने से है।
- **स्वतः पुनरावर्तन:** अनुबंध के प्रयोगों में यह देखा गया है कि यदि विलोप की प्रक्रिया पूरी होने के कुछ समय बाद अनुबंधित उद्दीपक पुनः प्रस्तुत किया जाय तो अनुबंधित अनुक्रिया की कुछ न कुछ मात्रा प्रदर्शित होती है। इस गोचर को स्वतः पुनरावर्तन कहते हैं।
- **अवरोध:** जिन कारकों का अनुबंधन पर बाधक प्रभाव पड़ता है उन्हें अवरोध का नाम दिया जाता है।

- **संकलन प्रभाव:** यदि एक अनुक्रिया दो अनुबंधित उद्दीपकों के प्रति अनुबंधित की गयी है, तो दोनों उद्दीपकों को एक साथ प्रस्तुत करने पर प्राप्त होने वाली अनुक्रिया की मात्रा में वृद्धि होती है, इसे संकलन प्रभाव कहते हैं।
- **सामान्यीकरण:** उद्दीपकों के परिवर्तित होने पर अनुक्रियाओं का उत्पन्न होना या उद्दीपकों के स्थिर रहने पर अनुक्रिया प्रतिमान का परिवर्तित होने सामन्यीकरण कहा जाता है।
- **विभेदन:** दिये गये उद्दीपकों में अन्तर सीखकर उनके प्रति भिन्न-भिन्न व्यवहार करना विभेदन कहलाता है।
- **उच्चक्रम अनुबंधन:** यदि मूल अनुबंधित उद्दीपक के साथ कोई नया उद्दीपक युग्मित किया जाय तो प्रयोज्य उसके भी प्रति अनुबंधित अनुक्रिया करने लगता है। इस गोचर को उच्चक्रम अनुबंधन कहा जाता है।

2.13 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1- अनुबंधन को .... एवं नैमित्तिक अनुबंधन में वर्गीकृत किया गया है।

2- प्राचीन अनुबंधन के प्रमुख प्रकार हैं ....

(1) 3 (2) 4 (3) 5 (4) 6

3- इनमें से प्राचीन अनुबंधन का कौन सा प्रकार है

(1) परिहार प्रशिक्षण (2) अकर्म प्रशिक्षण (3) दण्ड प्रशिक्षण (4) कालिक अनुबंधन

4- प्राचीन अनुबंधन के प्रणेता कौन हैं?

(1) थार्नडाइक (2) पोस्टमैन (3) हल (4) पैवलाव

5- नैमित्तिक अनुबंधन के प्रतिपादन में इनमें से किसका योगदान है -

(1) टिचनर (2) एविगंहास (3) मार्कक्विस (4) स्किनर

6- विलोप का आशय किसी सीखी हुयी अनुक्रिया को .... करने से है।

7- जिन कारकों का अनुबंधन पर बाधक प्रभाव पड़ता है उसे कहा जाता है -

(1) अवरोध (2) विलोप (3) स्वतः पुनरावर्तन (4) सामान्यीकरण

8- दिये गये उद्दीपकों में अन्तर सीखकर उनके प्रति निम्न व्यवहार करने को कहा जाता है -

(1) विलोप (2) उच्चक्रम अनुबंधन (3) अवरोध (4) विभेदन

उत्तर - (1) प्राचीन, (2) 4, (3) 4- कालिक अनुबंधन (4) 4- पैवलाव
(5) 4- स्किनर (6) समाप्त (7) 1- अवरोध (8) 4- विभेदन।

2.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- सिंह, अरुण कुमार (2011): संज्ञानात्मक मनोविज्ञान
- श्रीवास्तव, रामजी (सम्पादक) (2003): संज्ञानात्मक मनोविज्ञान
- सिंह, आर.एन. एवं भारद्वाज, एस.एस. (2010): उच्च प्रायोगिक मनोविज्ञान
- Colin Martindale (1981) : Cognition and Consciousness.
- Geryd' YDewalle (1985) : Cognition, Information Processing and Motivation.
- Kathleen M. Galotti (1999) : Cognitive Psychology in and Out of the Laboratory.
- Margaret Matlin (1982) : Cognition.

2.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1) प्राचीन या पैवलावियन अनुबंधन का उदाहरण सहित वर्णन कीजिये।
2) प्राचीन अनुबंधन के प्रमुख प्रकारों का वर्णन कीजिए।
3) नैमित्तिक अनुबंधन एवं उसके प्रमुख प्रकारों का वर्णन कीजिए।
4) नैमित्तिक अनुबंधन में प्रबलनों की विशेष भूमिका का वर्णन कीजिए।
5) प्राचीन अनुबंधन क्या है? प्राचीन एवं नैमित्तिक अनुबंधन में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

इकाई-3 स्मृति के प्रकार- अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन स्मृति (अर्थगत एवं प्रासंगिक स्मृति) (Types of Memory- Short term and Long term memory (Episodic and Semantic memory)

इकाई संरचना

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 स्मृति का अर्थ
3.4 स्मृति के प्रकार एवं उनकी विशेषताएँ
3.5 सारांश
3.6 शब्दावली
3.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

स्मृति एक व्यापक शब्द है, प्रायोगिक मनोविज्ञान में अधिगम के स्मृति का सर्वाधिक विस्तार से प्रायोगिक अध्ययन किया गया है। लैकमन आदि ने व्यक्ति द्वारा अर्जित सूचनाओं के अपने जीवनकाल में बनाये रखने की मानसिक क्रिया को स्मृति कहा है। किसी सूचना के स्मृति में बने रहने की अवधि एक सेकेण्ड से भी कम हो सकती है या जीवनपर्यन्त बनी रह सकती है। स्मृति में सूचनाओं को बनाये रखने के प्रक्रिया के अन्तर्गत अनुक्रमिक रीति से 3 प्रकार की मानसिक क्रियायें होती हैं। सबसे पहले संग्रहको के माध्यम से होने वाले सूचना निवेश का कूट संकेतन होता है। कूट संकेतिक सूचना को स्मृति में बनाये रखने की क्रिया होती है। इस क्रिया को भण्डारण कहते हैं, जो स्मृति की दूसरी अवस्था है। कभी-कभी इसे सूचना संचय भी कहा जाता है। स्मृति की तीसरी अवस्था होती है सूचना का पुनरुद्धार, जिसे सामान्यतः प्रत्याह्वान एवं प्रतिभिज्ञा भी कहते हैं।

प्रायोगिक मनोविज्ञान में स्मृति के स्वरूप का विवेचन दो प्रकार से किया जाता है। कुछ लोग इसे बहुअवस्था प्रक्रम की संरचना के रूप में समप्रत्यायित करते हैं तो कुछ लोग एकत्रा स्थिति वाली ऐसी व्यवस्था मानते हैं जिसमें सूचनाओं के प्रक्रमण अलग-अलग स्तर पर होता है, ऐसा माना जाता है कि स्मृति अधिगम का परिणाम होती है। स्मृति के आधार पर हम पूर्व में सीखी गयी सामग्री या पूर्व अनुभव को वर्तमान में पुनः स्मरण रूप से या दोहराने में सफल होते हैं।

स्मृति को सामान्यतः तीन प्रकार का माना जाता है। इन्हें सांवेदिक स्मृति अल्पकालिक स्मृति एवं दीर्घ कालिक स्मृति कहते हैं। इन तीन प्रकार की स्मृतियों में भी भिन्न-भिन्न प्रकार की स्मृतियाँ पायी जाती है, जिनका विषद वर्णन इस इकाई में आगे किया जायेगा।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान सकेंगे:

- स्मृति क्या है तथा यह कितने प्रकार की होती है?
- संवेदी स्मृति क्या है, इसके प्रमुख प्रकार एवं विशेषताएँ क्या हैं?
- अल्पकालिक स्मृति क्या है, उसके प्रमुख प्रकार एवं उसकी क्या विशेषताएँ हैं?
- दीर्घकालिक स्मृति के प्रमुख प्रकार एवं दीर्घकालिक स्मृति की विशेषताएँ क्या हैं?
- अल्पकालिक एवं दीर्घकालिक स्मृति में क्या अन्तर है?
- शब्दार्थ स्मृति क्या है?

3.3 स्मृति का अर्थ

स्मृति, अधिगम का परिणाम है। स्मृति के ही आधार पर हम पूर्व में सीखी गई सामग्री या पूर्वानुभव को वर्तमान में पुनःस्मरण करने या दुहराने में सफल होते हैं। स्मृति के अभाव में हम कुछ भी याद नहीं रख पायेंगे। इस इकाई में इस पर चर्चा की जायेगी।

ऐसी मान्यता है कि प्राणी जो कुछ सीखता है उसकी मस्तिष्क में बनती है। इन छापों को स्मृति चिन्ह कहा जाता है। इसे 'न्यूरोग्राम' या 'इनग्राम' (Neurogram or Engram) भी कहते हैं (Munn, 1967)। स्मृति या सीखी गई सामग्री या कार्यो का पुनर्स्मरण स्मृति चिन्हों पर ही निर्भर करता है।

कून (Coon, 2003) के अनुसार, मस्तिष्क में सूचना भण्डारण के परिणामस्वरूप होने वाले परिकल्पनात्मक परिवर्तनों को स्मृति चिन्ह कहा जाता है।

ऐसा माना जाता है कि स्मृति, धारणा या पुनर्स्मरण के लिए 'स्मृति चिन्हों' का सक्रिय रहना आवश्यक है। यदि ये कमजोर या धूमिल पड़ते हैं, तो सीखी गई बातों का विस्मरण होने लगता है। ग्लीटमैन (1983) के अनुसार, ''अधिगम (सीखने) या अनुभव से उत्पन्न तन्त्रकीय परिवर्तन ही स्मृति चिद्द है। परन्तु वास्तव में परिवर्तन कैसा होता है यह अभी ज्ञात नहीं है।''

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि स्मृति का आधार स्मृति चिद्द हैं। स्मृति का स्वरूप स्पष्ट करने के लिए कुछ परिभाषाओं का उल्लेख कर सकते हैं।

स्मृति की परिभाषाएँ **(Definitions of Memory)-**

कून (Coon, 2003) के अनुसार- ”स्मृति एक मानसिक प्रणाली है जो सूचनाओं का संकेतन, भण्डारण, संगठन, परिवर्तन एवं पुनर्स्मरण करती है।“

आइजिंक (Eysenck, 1970) के अनुसार- ”स्मृति, व्यक्ति की वह योग्यता है जिसके द्वारा वह पहले की अधिगम प्रक्रिया से सूचना संग्रह करता है और आवश्यकता पड़ने पर उसका पुनरोत्पादन करता है।“

प्राइस इत्यादि (Marx, 1976) के अनुसार- ”अतीत के पूर्वानुभव एवं विचारों को पुनर्सृजित या पुनरोत्पादित करने की मस्तिष्क की योग्यता स्मृति है।“

विभिन्न परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि स्मृति एक ऐसी मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा पूर्वानुभवों, विचारों या सीखी गई सामग्रियों के अनुभवों को चेतना में लाने में सहायता मिलती है। हम पूर्वानुभवों को पुनः सृजित करते हैं या उन्हें पुनरोत्पादित करते हैं ताकि वर्तमान परिस्थिति में उनसे लाभ उठा सकें, समायोजन स्थापित कर सकें और आवश्यकतानुसार उनका प्रदर्शन कर सकें। स्मृति प्रक्रिया एक अत्यन्त लाभदायक प्रक्रिया है। इसी के कारण हमें अपने पूर्वानुभव याद रहते हैं। स्मृति के अभाव में जीवन निरर्थक एवं बोझ सा बन सकता है। यदि हमें कुछ याद ही न रहे तो वह स्थिति कितनी विचित्र सी हो जायेगी। उपर्युक्त परिभाषाओं तथा विवेचनों के आधार पर स्मृति के बारे में निम्नांकित निष्कर्ष दिये जा सकते हैं-

1) स्मृति एक मानसकि प्रक्रिया है।
2) यह स्मृति चिह्नों पर निर्भर होती है।
3) अधिगम या अनुभव के परिणामस्वरूप तन्त्रिाका तन्त्र में जो परिवर्तन होता है वही स्मृति का आधार बनता है।
4) स्मृति द्वारा पूर्वानुभव या पूर्व में सीखी गई बातें चेतना में लायी जाती हैं।
5) पूर्वानुभव को पुनः सृजित या पुनरोत्पादित करना स्मृति है।
6) स्मृति में कूट संकेतन ,संचयन एवं पुनरुद्धार की प्रक्रियाएँ सन्निहित होती हैं।
7) स्मृति द्वारा पूर्वानुभवों या पूर्व के ज्ञानों को वर्तमान परिस्थिति में प्रयुक्त किया जाना सम्भव हो पाता है।

3.4 स्मृति के प्रकार

स्मृति को सामान्यतः तीन प्रकार का माना जाता है। इन्हें संवेदी स्मृति, अल्पकालिक स्मृति एवं दीर्घकालिक स्मृति कहते हैं। इन तीन प्रकार की स्मृतियों में भी भिन्न-भिन्न प्रकार की स्मृतियाँ पाई जाती हैं। इन्हें प्रस्तुत चित्र 8.2 एवं 8.3 में दर्शाया गया है। ऐसी मान्यता है कि स्मृति-प्रणाली में इनके के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के स्मृति चिन्ह बनते हैं।

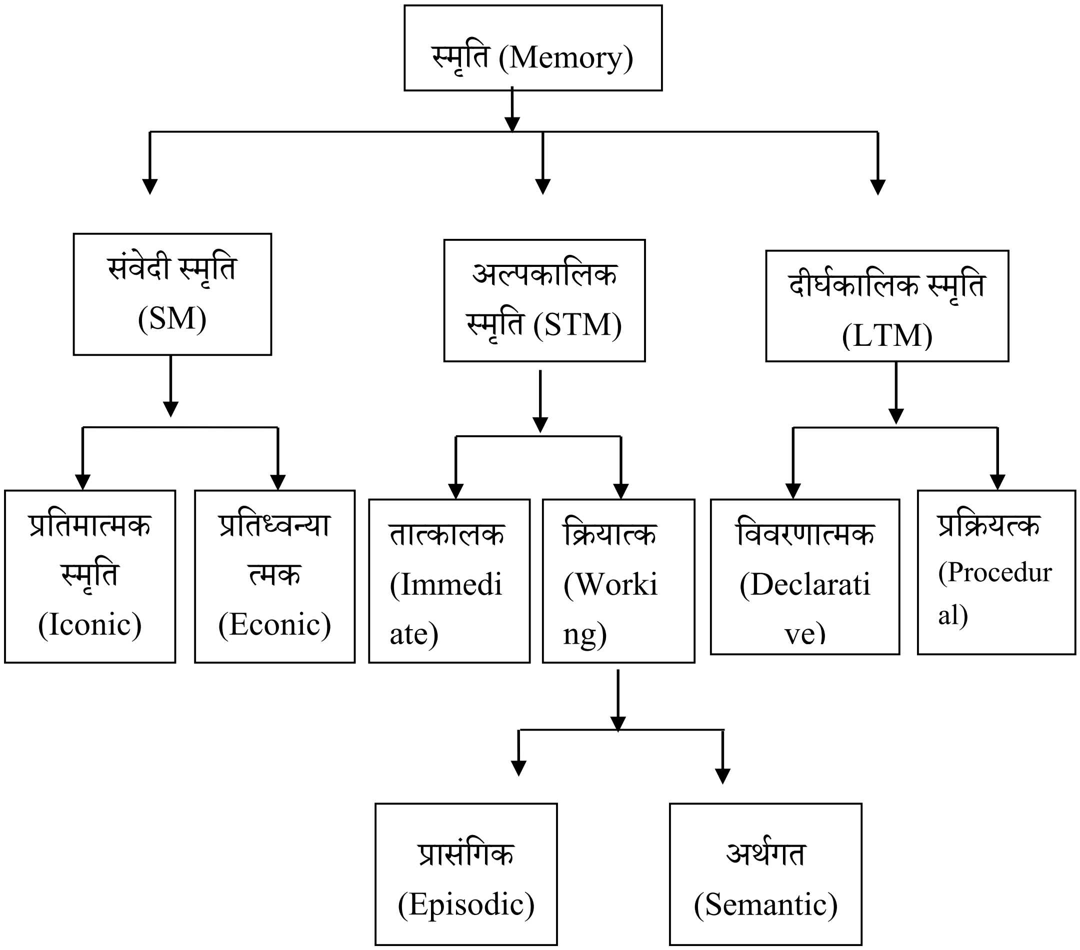

चित्र 8.2- स्मृति के प्रकार

1) संवेदी स्मृति (Sensory Memory)-

संवेदी स्मृति को स्मृति की प्रारम्भिक अवस्था अथवा उद्दीपन, सूचना या अधिगम से उत्पन्न प्रभाव भी कहा जाता है। यह स्मृति सांवेदिक निवेश पर ही निर्भर करती है। इसकी अवधि एक सेकण्ड से भी कम मानी गई है। इस स्मृति के लिए संवेदी पंजिका सम्प्रत्यय भी प्रयुक्त किया जाता है। प्राइस इत्यादि (Price et.al. 1982) के अनुसार, ''उद्दीपक हटा लेने के बाद भी संवेदी सूचना का कुछ क्षण तक विलम्बित रहना संवेदी स्मृति है।''

स्मृति की इस अवस्था में स्मृति में कोई परिवर्तन या प्रक्रमण नहीं होता है। इसी कारण यह स्मृति क्षणभंगुर होती है। ग्लीटमैन (1983) के अनुसार, ''स्मृति भण्डार की यह वह व्यवस्था (प्रणाली) है जिसमें सामग्री लगभग एक सेकेण्ड के लिए अपने मूल, अप्रकमित, संवेदी रूप में रहती है।''

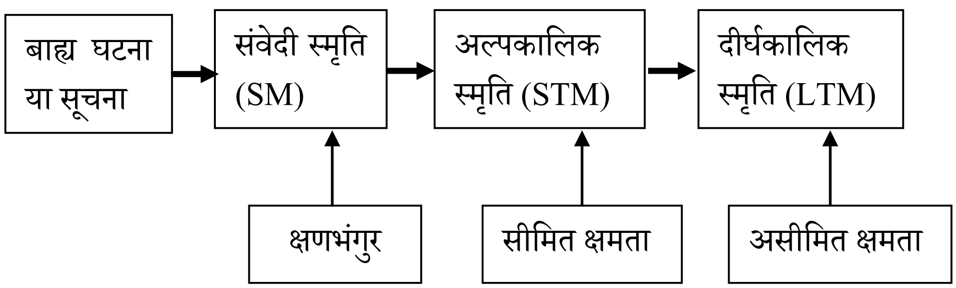

चित्र 8.3 स्मृति की अवस्थाएँ

इस प्रकार स्पष्ट हो रहा है कि संवेदी स्मृति वह स्मृति है जो लगभग एक सेकण्ड के भीतर जाँच करने पर प्राप्त होती है। अधिगम सामग्री या उद्दीपक को सामने से हटा देने के बाद भी कुछ क्षण के लिए उसकी जो यादाश्त रहती है, उसे ही संवेदी स्मृति कहा जाता है। इसी प्रकार इसे क्षणिक प्रतिमा (Momentary image) भी कहते हैं। स्मृति प्रक्रिया यहीं से प्रारम्भ होती है। इसे मानसिक चित्रा (Mental photograph) भी कहा जाता है। (Bourne and Ekstrand, 1982) । संवेदी स्मृति प्रणाली इस प्रतिमा को ज्यों का त्यों बनाये रखने का प्रयास करती है।

संवेदी स्मृति के प्रकार (Types of Sensory Memory) -

संवेदी स्मृति दो प्रकार की होती है। इन्हें प्रतिमात्मक या प्रतिचित्रात्मक स्मृति या चाक्षुष स्मृति एवं प्रतिध्वन्यात्मक स्मृति या श्रवणात्मक स्मृति भी कहते हैं।

(i) **प्रतिमात्मक स्मृति (Iconic Memory)-** किसी उद्दीपक या अधिगम सामग्री को प्रयोज्य या व्यक्ति के सामने से हटा लेने के बाद भी जो क्षणिक प्रतिमा रेटिना पर बनती है उसे प्रतिमात्मक या चाक्षुष स्मृति कहते हैं। इसमें उद्दीपक या सामग्री अत्यन्त लघुकाल के लिए (जैसे-50 मि0से0) प्रदर्शित की जाती है। प्राइस इत्यादि (1992) के अनुसार, ''प्रतिमात्मक स्मृति ऐसा चाक्षुष स्मृति चिन्ह या उद्दीपक

का सतत् पश्चात् प्रभाव है जिसकी संचयन क्षमता अपेक्षाकृत विस्तृत परन्तु एक सेकण्ड से अधिक नहीं होती है।“

अर्थात् प्रतिमात्मक स्मृति क्षणिक होती है। वस्तु या उद्दीपक प्रदर्शन के बाद विलम्ब बढ़ने के साथ स्मृति में ह्रास भी बढ़ता जाता है, वैसे इसकी अवधि प्रतिध्वन्यात्मक स्मृति (Echoic memory) से अधिक होती है। इस पर जॉर्ज स्पर्लिंग (Geogre Sperling, 1960)तथा कुछ अन्य शोधकर्त्ताओं ने भी उल्लेखनीय कार्य किया है (Posner and Keele, 1967; Averback and Coriell, 1961)। स्पर्लिंग(1960) ने एक प्रयोग में प्रयोज्यों के समक्ष टैचिस्टोस्कोप की सहायता से अक्षरों-अंकों की कुछ पंक्तियाँ 1/10 से. की दर से प्रस्तुत कीं। इसके बाद प्रयोज्यों से दुहराने के लिए कहा गया। प्रयोज्यों ने औसतन 3.50 संख्या तक प्रस्तुत उद्दीपकों (अक्षर-अंक) को दुहराने में सफलता प्राप्त की। इससे स्पष्ट होता है कि यह स्मृति अत्यन्त क्षणिक होती है। इसका कारण सम्भवतः यही है कि प्रयोज्य प्रदर्शित सामग्री को निर्धारित समय में न तो ठीक से प्रत्यक्षित कर पाते हैं और न ही स्मृति चिन्हों का क्षणिक समय में प्रक्रमण (Processing) ही हो पाता है (जैसे-कूटसंकेतन, नामकरण, संचयन इत्यादि) (Posner and Keele, 1967) । इस कारण वे कमजोर पड़ जाते हैं और विस्मरण गति बढ़ जाती है।

(ii) प्रतिध्वन्यात्मक स्मृति (Echoic Memory) - प्रतिमात्मक स्मृति के अतिरिक्त प्रतिध्वन्यात्मक या श्रवणात्मक संवेदी स्मृति का भी अस्तित्व प्रमाणित करने में शोधकर्त्ताओं को सफलता प्राप्त हुई है (Crowder, 1967, 1971; Massaro, 1970) । नीशर (U.Neisser, 1967) ने कहा है कि इसकी भी विशेषताएँ प्रतिमात्मक स्मृति (Iconic Memory) की ही भांति होती हैं। अन्तर यह है कि प्रतिमात्मक स्मृति दृष्टि उद्दीपकों (Visual Stimulus) की दशा में और प्रतिध्वन्यात्मक स्मृति श्रवणात्मक उद्दीपकों के प्रयुक्त करने पर प्राप्त होती है। प्राइस इत्यादि (1982) के अनुसार- ”प्रतिध्वन्यात्मक स्मृति श्रवणात्मक स्मृति चिन्ह या उद्दीपक का सतत् पश्चात् प्रभाव है, चाक्षुष या प्रतिमात्मक स्मृति की भाँति इसकी भी अवधि अत्यन्त लघु होती है।“

इससे स्पष्ट होता है कि प्रतिध्वन्यात्मक स्मृति भी अत्यन्त क्षणभंगुर होती है। मैशारो (Massaro,1970) ने इस पर विशेष अध्ययन किया है। इनके अनुसार, स्मृति प्रणाली में श्रवणात्मक सूचना भण्डार पाया जाता है। इनका निष्कर्ष है कि यदि किसी ध्वनि उद्दीपक के बाद कोई प्रच्छादन ध्वनि उद्दीपक भी दिया जाये तो प्रथम ध्वनि उद्दीपक की पहचान में कठिनाई आती है। यदि दोनों उद्दीपकों के बीच समय अन्तराल बढ़ाया जाय (जैसे- 20 से 250 डै) , तो प्रथम उद्दीपक की पहचान की शुद्धता में वृद्धि होती है। इससे स्पष्ट है कि बाद वाला उद्दीपक पूर्व के उद्दीपक की पहचान को अवरोधित करता है। इनके प्रयोग की यह विधि पश्चगामी प्रच्छादन अभिकल्प तक कहा जाता है। इस स्मृति की अवधि प्रतिमात्मक स्मृति (Iconic Memory) की अपेक्षा कम होती है,

परन्तु कुछ शोधकर्त्ताओं ने इसकी अवधि अपेक्षाकृत कुछ अधिक होने का उल्लेख किया है; जैसे-दो से0 तक (Triesman, 1964; Darwin, Turvey and Crowder, 1972; Crowder, 1978) ।

प्रतिध्वन्यात्मक स्मृति को एक उदाहरण द्वारा और भी सरलता से स्पष्ट किया जा सकता है, जैसे-कोई शब्द बोलने पर प्रयोज्य उसका अशुद्धता उच्चारण करता है, तो स्पष्ट है कि वह शुद्धता उच्चारण समझ नहीं पाया। अतः शुद्धता उच्चारण पुनः बोलकर सुधार कराया जा सकता है जैस- 'शब्द' या 'विस्व' अशुद्धता उच्चारण है। इन पर ध्यान देकर शुद्धता उच्चारण 'शब्द' एवं 'विश्व' किया जा सकता है।

संवेदी स्मृति की विशेषताएँ (Characteristics of Sensory Memory)-

संवेदी स्मृति में पाई जाने वाली प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं -

1. संवेदी स्मृति अत्यन्त क्षणिक होती है।
2. संवेदी स्मृति की अवस्था में सूचनाओं का प्रक्रमण नहीं हो पाता है, जैसे- कूटसंकेत या नामकरण आदि प्रक्रियाएँ इसमें सन्निहित नहीं होती हैं।
3. संवेदी स्मृति में सूचनाएँ मूल रूप में रहती हैं। इसके विपरीत अन्य स्मृतियों (जैसे-STM,LTM) में उनका रूप परिवर्तित भी होता है, जैसे- 'BTU' को 'TUB' या 'BUT' के रूप में कूटसंकेतित करना और दुहराने के समय मूल रूप में बोलना। परन्तु यह संवेदी स्मृति में नहीं हो पाता है।
4. इसकी संचयन क्षमता अधिक परन्तु अवधि अत्यन्त कम होती है (जैसे-एक से.)।
5. संवेदी स्मृति पर अभ्यास का प्रभाव नहीं पड़ता है।

प्रतिमात्मक स्मृति एवं प्रतिध्वन्यात्मक स्मृति में अन्तर (Differences Between Iconic and Echoic Memory) :-

इन स्मृतियों में प्रमुख अन्तर इस प्रकार हैं-

प्रतिमात्मक स्मृति	**प्रतिध्वन्यात्मक स्मृति**
1. इसकी अवधि अधिक होती है।	1. इसकी अवधि कम होती है।
2. इसमें प्रक्रमण प्रायः नहीं हो पाती	2. इसमें प्रक्रमण का कुछ लाभ मिल जाता है।
3. इसमें रेटिना (नेत्रपटल) की भूमिका होती है।	3. इसमें कोर्टि के अंगों की भूमिका होती है।
4. यह स्ममृति दृष्टि उद्दीपकों के लिए पाई जाती है।	4. यह स्मृति ध्वनि उद्दीपकों के लिए पाई जाती है।
5. इसके बारे में प्राप्त निष्कर्षों में समानता है।	5. इसके बारे में प्राप्त निष्कर्ष विवादास्पद हैं।

2) अल्पकालिक स्मृति (Short-Term Memory : STM) -

स्मृति प्रणाली की दूसरी अवस्था अल्पकालिक स्मृति कही जाती है। प्राचीन दार्शनिक विलियम जेम्स(1890) ने इसे प्राथमिक स्मृति का नाम दिया था। संवेदी अवस्था से जब सूचनाएँ स्मृति प्रणाली की द्वितीय अवस्था में प्रवेश करती हैं, तो उन्हें अल्पकालिक स्मृति कहा जाता है। रैथम (1984) के अनुसार, "अल्पकालिक स्मृति का आशय ऐसी स्मृति से है जिसमें संवेदी सूचनाएँ लगभग 15-20 से. तक पुनर्स्मरण के लिए उपलब्ध रहती हैं। अर्थात् इसकी भी अवधि कम ही होती है"(Price et,al. 1982; Bruno,1980) । ग्लीटमैन (Gleitman, 1983) के अनुसार, "अल्पकालिक स्मृति वह स्मृति प्रणाली है जो सामग्रियों (सूचनाओं) को लगभग एक मिनट तक संचित किये रहती है, जिसकी भण्डारण (संचयन) क्षमता कम होती है और जिसमें दीर्घकालिक स्मृति की तुलना में सामग्रियों का प्रक्रमण अपेक्षाकृत कम होता है।"

इस प्रकार स्पष्ट हो रहा है कि अल्पकालिक स्मृति की भी अवधि अपेक्षाकृत कम ही होती है (Coon, 2003) । इसकी अवधि अधिकतम एक मिनट तक मानी गई है। इस अवस्था में प्रायः सीखी गई सामग्रियों का प्रक्रमण कम हो पाता है, जैसे-कूटसंकेत, अव्यक्त अभ्यास, नामकरण, एवं विश्लेषण इत्यादि। इसके कारण इसमें भी विस्मरण तेज गति से होता है। फिर भी संवेदी स्मृति की तुलना में विस्मरण मन्द गति से होता है। यदि प्रक्रमण की प्रक्रियाएँ सक्रिय हो जाती हैं, तो यह स्मृति दृढ़ होने लगती हैं और दीर्घकालिक स्मृति में परिवर्तित हो जाती है (Keels, 1973; Fish and Karsh, 1971: Loftus, 1981) । ऐसी मान्यता है कि अल्पकालिक स्मृति की अवस्था में विस्मरण प्रायः स्मृति चिन्हों के विस्थापन के कारण होता है।

अल्पकालिक स्मृति के प्रकार (Types of Short-term Memory : STM)-

अल्पकालिक स्मृति को दो प्रकार का माना गया है। इन्हें तात्कालिक स्मृति एवं क्रियात्मक स्मृति कहते हैं।

(i) **तात्कालिक स्मृति (Immediate Memory) -** अधिगम की किसी परिस्थिति में कोई व्यक्ति एक बार में जितने अंकों या अक्षरों को सही-सही दुहरा लेता है, उसे तात्कालिक स्मृति कहते हैं। अवधान विस्तार के प्रयोगों द्वारा इसका मापन सरलता से कर सकते हैं। इसमें अंक या अक्षर समुच्चय प्रस्तुत किये जाते हैं। इनमें संख्या अलग-अलग होती है। प्रयोज्य उन्हें सुनने के बाद तुरन्त दुहराता है। सामान्यतः लोग 7, 2 (सात धन या ऋण दो) अंक तक दुहरा पाते हैं। इसीलिए इसे 'जादुई अंक सात' भी कहा जाता है।

(ii) **क्रियात्मक स्मृति (Working Memory) -** यह वह स्मृति है जो सूचनाओं की छानबीन इस प्रकार करती है कि उसका स्वरूप परिवर्तित हो जाता है। बैड्डले (Baddley, 1950) का मत है कि अल्पकालिक स्मृति में कुछ विशेष प्रकार की प्रक्रियाएँ सक्रिय होती हैं। यह केवल एक अस्थाई संचयन प्रणाली नहीं है। इसमें सूचनाओं का सम्पोषण होता रहता है और इस कार्य में 'सक्रिय अवधान

नियन्त्राक' सहायता करता है। चाक्षुष एवं श्रवणात्मक सूचनाओं के लिए अलग-अलग तन्त्र होते हैं। इनमें श्रवणात्मक सूचनाओं का सम्पोषण करने वाले तन्त्र को ध्वनिग्रामीय लूप कहते हैं (Craik and Levy, 1976; Lewi 1979; Matlin, 1983) ।

अल्पकालिक स्मृति का अध्ययन (Studying STM) -

अल्पकालिक स्मृति के अध्ययन में दो विधियों का प्रयोग किया जा सकता है। इन्हें उचाट या विकर्षण तकनीक एवं छानबीन तकनीक कहते हैं।

a) उचाट या विकर्षण तकनीक (Distraction Technique) - यह विधि पिटरसन एवं पिटरसन द्वारा विकसित की गई है। इसमें व्यंजनों से निर्मित पद या सार्थक पद एक-एक सेकण्ड के अन्तराल पर प्रस्तुत किये जाते हैं। तत्पश्चात् विश्राम देते हैं। परन्तु विश्रामावस्था में मानसिक अभ्यास रोकने के लिए उल्टी गिनती गिनवाते हैं। इसे अन्तर्वेशी कार्य कहते हैं। इसके बाद विभिन्न अन्तरालों पर पुनर्स्मरण कराया जाता है। विभिन्न अन्तरालों पर प्राप्त पुनर्स्मरणों की मात्राओं की तुलना करके स्मृति या विस्मरण का आकलन कर सकते हैं। इस विधि के आधार पर ब्राउन (Brown, 1958) ने भी कार्य किया है। इसके कारण इसे ब्राउन-पिटरसन तकनीक भी कहते है।

b) छानबीन तकनीक (Probing Technique) - इस विधि में अधिगम सामग्री को एक-एक करके प्रस्तुत किया जाता है। इसके बाद बीच-बीच के पद प्रदर्शित करते हैं और प्रयोज्य से यह पूछा जाता है कि उसके बाद कौन सा शब्द या पद आना चाहिए। प्रयोज्य को बाद में प्रदर्शन का क्रम ज्ञात नहीं रहता है। वह यादाश्त या अनुमान के आधार पर बोलता है। इसीलिए इसे छानबीन या जाँच तकनीक कहा जाता है। इसमें अन्तर्वेशी कार्य नहीं दिया जाता है।

➢ अल्पकालिक स्मृति पर प्रायोगिक अध्ययन (Experimental Study on Short-term Memory) -

अल्पकालिक स्मृति का प्रायोगिक अध्ययन करने के लिए वाचिक सामग्रियों (जैसे-शब्द या संख्याएँ) का बहुधा उपयोग होता है। कोनार्ड (1960), ब्राउन (1958), पिटरसन एवं पिटरसन (1959), पिटरसन (1963) एवं मेल्टन (1963) आदि ने इस पर उच्च स्तरीय कार्य किया है। यहाँ पर पिटरसन एवं पिटरसन ;1959) के प्रयोग की चर्चा की जायेगी क्योंकि यह इस क्षेत्रा का एक प्रतिष्ठित प्रयोग है। इनकी विधि को उचाट या विकर्षण विधि (Distraction method) कहा जाता है।

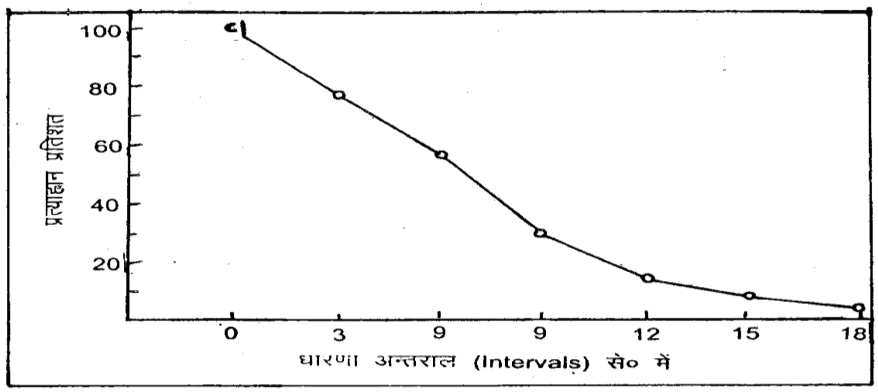

चित्र —अल्पकालिक स्मृति (STM) का धारणा वक्र (Peterson & Peterson, 1959)

उचाट विधि में प्रयोज्य के समक्ष त्रिपदीय व्यंजन शब्द दो सेकण्ड के अन्तर पर प्रस्तुत किये जाते हैं और प्रयोज्य उन्हें जोर से पढ़ता है। तत्पश्चात् विश्राम देते हैं परन्तु अव्यक्त अभ्यास को नियन्त्रित करने के लिए कुछ कार्य दिये जाते हैं जैसे- उल्टी गिनती गिनना। इसे अन्तर्वेशी कार्य (Interpolated task) कहते हैं। प्रयोगकर्त्ताओं ने धारणा अन्तराल 3, 6, 9, 12, 15, 18 रखा। इन अन्तरालों पर प्राप्त धारणा प्रतिशत चित्रा में प्रस्तुत किये गये हैं।

अन्तराल	धारणा
3 से	75%
6 से	55%
9 से	32%
12 से	18%
15 से	10%
18 से	6%

चित्र को देखने से स्पष्ट होता है कि धारणा अन्तराल (Retention intervals) बढ़ने के साथ-साथ धारणा प्रतिशत (Recall percentage) घटता गया है। जैसे- तीन से0 बाद धारणा 75 प्रतिशत, 6 से. बाद 55% और 9 से. पर 32% हो गई है। बारहवें तथा पन्द्रहवें सेकण्ड पर विस्मरण और भी द्रुत गति से हुआ है। व्यावहारिक दृष्टि से देखें तो अट्ठारहवें से. पर धारणा की मात्रा लगभग शून्य हो गई है क्योंकि विस्मरण 90% से अधिक हो चुका है। इससे स्पष्ट है कि अल्पकालिक स्मृति की अवस्था में विस्मरण द्रुत गति से होता है।

परन्तु मरडॉक (1961) ने यह तर्क दिया है कि धारणा में कमी मात्रा समय बीतने के कारण नहीं हुई प्रतीत होती है क्योंकि विश्राम अवधि में अन्तर्वेशी कार्य का भी मूल अधिगम की धारणा पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इस कारण उसकी स्मृति धूमिल होने लगती है और विस्मरण की मात्रा बढ़ जाती है।

केप्पेल (1965) ने अल्पकालिक स्मृति का अध्ययन करने के लिए छानबीन तकनीक का उपयोग किया है। इस विधि में युग्मित साहचर्य अधिगम विधि के आधार पर सूची के पद प्रस्तुत किये जाते हैं और पुनः बीच में सूची के कुछ पद प्रस्तुत करते हैं तथा प्रयोज्य उससे सम्बन्धित अनुक्रिया पद दुहराता है। इस विधि में धारणा की जाँच प्रारम्भिक अधिगम के बाद ही प्रारम्भ हो जाती है, परन्तु प्रयोज्य को इसकी जानकारी नहीं दी जाती है।

अल्पकारिक स्मृति की विशेषताएँ (Characteristics of STM)-

अल्पकालिक स्मृति पर कुछ विशेष कारकों का प्रभाव पड़ता है। इन्हें ही अल्पकालिक स्मृति की विशेषता के भी नाम से जानते हैं।

1. अल्पकालिक स्मृति में अभ्यास से वृद्धि (Increase in STM from Practice) अल्पकालिक स्मृति की मात्रा में अभ्यास के अवसर बढ़ने से वृद्धि होती है। इसमें प्रत्यक्ष अभ्यास एवं अव्यक्त अभ्यास दोनों सहायक माने गये हैं। पिटरसन एवं पिटरसन के प्रारम्भिक प्रयोग, एबिंगहास (1913) और पोस्टमैन (1962) के परिणाम इसकी पुष्टि करते हैं।
2. अवरोध का प्रभाव (Effects of Interference) अल्पकालिक स्मृति पर अग्रोन्मुख एवं पृष्ठोन्मुख अवरोध का भी प्रभाव पड़ता है। मरडॉक (1961) ने इसी आधार पर पिटरसन एवं पिटरसन (1959) के प्रयोग पर आपत्ति की थी। अण्डरवुड (1962) के भी अध्ययन से इसकी पुष्टि होती है।
3. प्रयासों के बीच अन्तराल (Interval between Trials) यह भी पाया गया है कि यदि प्रयासों के बीच अन्तराल दीर्घ हो तो अल्पकालिक स्मृति अधिक प्राप्त होती है। इससे स्मृति चिन्हों को संगठित होने का अवसर मिलता है और धारणा प्रतिशत बढ़ता है (Kepple & Underwood, 1962) ।
4. प्रलोभन का प्रभाव (Effects of Incentives) धारणा की जाँच के लिए अवसर देने पर प्रलोभनों तथा पुरस्कारों की व्यवस्था करने से अल्पकालिक स्मृति की मात्रा में वृद्धि होती है (करनाफ इत्यादि, 1966)।
5. धारणा में द्रुत ह्रास (Rapid Decrease in Retention) अल्पकालिक स्मृति के विस्मरण की गति अपेक्षाकृत तीव्र होती है क्योंकि इनमें संचयन तथा कूट संकेतन की प्रक्रियाएँ सन्निहित नहीं होती हैं

(Hilgard, et.al. 1975; Marx, 1976; Adams, 1967)। पिटरसन एवं पिटरसन (1959) के प्रयोग से इस कथन को समर्थन मिलता है।

3) दीर्घकालिक स्मृति (Long-Term Memory : LTM) -

स्मृति प्रणाली की यह तृतीय एवं अन्तिम अवस्था है। इसे विलियम जेम्स (1980) ने गौण स्मृति का नाम दिया था। यह अधिक स्थाई होती है। मानव जीवन में इसका अत्यधिक महत्व है क्योंकि हम जो कुछ सीखते हैं या याद करते हैं उसका उपयोग जीवन में काफी लम्बे-लम्बे अन्तरालों पर होता है। दीर्घ अन्तरालों पर (जैसे-घण्टों, सप्ताहों, महीनों या वर्षों बाद) जो स्मृति प्रदर्शित होती है उसे ही दीर्घकालिक स्मृति कहा जाता है (Bourn & Ekstrand, 1982)। अनुभवों या सूचनाओं को दीर्घकालिक स्मृति भण्डार में संचित होने के लिए आवश्यक है कि वे अल्पकालिक स्मृति की अवस्था से दीर्घकालिक स्मृति की अवस्था में स्थानान्तरित हों। इसके लिए अभ्यास तन्त्र का सक्रिय होना आवश्यक है ;।जापदेवद - (Atkinson & Schiffrin, 1971, 1977; Rundus, 1971)।

कून (Coon, 2003) के अनुसार, ”दीर्घकालिक स्मृति वह स्मृति है जो सार्थक सूचनाओं को दीर्घकाल तक भण्डारित किये रहती है।“

ग्लीटमैन (Gleitman, 1983) के अनुसार, ”दीर्घकालिक स्मृति ऐसी स्मृति प्रणाली है जिसमें स्मृतियाँ दीर्घकाल तक रहती हैं, जिसकी क्षमता काफी अधिक होती है और जो सामग्रियों को अपेक्षाकृत प्रक्रमित (संसाधित) रूप में संचित किये रहती है।“

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि दीर्घकालिक स्मृति अपेक्षाकृत अधिक स्थाई, संसाधित तथा असीमित क्षमतायुक्त होती है। मानव जीवन में इसका सर्वाधिक उपयोग होता है क्योंकि आज हम जो याद करते हैं या सीखते हैं उसका उपयोग हम प्रायः लम्बे अन्तरालों पर करते हैं। कक्षा में पढ़े प्रश्न या पाठ को परीक्षा में लिखना, ऐसा ही एक उदहरण है (Loftus, 1980, 1981; Postman; 1975; Rundus, 1971)। इससे यह स्पष्ट है कि दीर्घकालिक स्मृति में विस्मरण की गति मन्द होती है। इसके बारे में मान्यता है कि इस अवस्था में विस्मरण प्रायः पुनरुद्धार की असफलता (Failure of retrieval) के कारण न कि क्षय (ह्रास) के कारण होता है। इसमें किसी घटना, सूचना सामग्री या कहानी का सारा विवरण नहीं संग्रहीत रहता है बल्कि उसके विशिष्ट या महत्वपूर्ण अंश ही संचित किये जाते हैं।

दीर्घकालिक स्मृति के प्रकार (Types of LTM)-

दीर्घकालिक स्मृति को विवरणात्मक एवं प्रक्रियात्मक वर्गों में विभक्त किया जाता है।

1. विवरणात्मक स्मृति (Declarative Memory) विवरणात्मक स्मृति का आशय किसी वस्तु व्यक्ति, सामग्री या घटना के बारे में विस्तृत जानकारी से है। जैसे- यह कहना कि हम जानते हैं कि गाँधी जी सत्य, अहिंसा एवं मानतवा के पुजारी, गरीबों के मसीहा थे, विवरणात्मक स्मृति का उदाहरण है।

विवरणात्मक स्मृति को भी दो वर्गों में विभक्त किया जाता है। इन्हें प्रासंगिक या वृत्तात्मक स्मृति एवं अर्थगत या शब्दार्थ स्मृति कहते हैं। किसी घटना या जानकारी का क्रमवार वर्णन करना प्रासंगिक या वृत्तात्मक स्मृति कहा जाता है। इसमें व्यक्तिगत अनुभवों का समय आधारित वर्णन भी सम्मिलित है। इसलिए इसे आत्मचरित स्मृति भी कहते हैं। दूसरी तरफ किसी वस्तु के बारे में सम्प्रत्ययात्मक अवधारणाएँ विकसित करना शब्दार्थ या अर्थगत स्मृति कहा जाता है। जैसे-अमुक वस्तु में ये विशेषताएँ हैं। यह अर्थगत स्मृति है। इसे सामान्य या व्यापक स्मृति भी कहते हैं।

2. प्रक्रियात्मक स्मृति (Procedural Memory) प्रक्रियात्मक स्मृति का आशय किसी कार्य, क्रिया या कौशल की तकनीक की जानकारी से है। जैसे- गाड़ी चलाना, मशीन बनाना, साइकिल चलाना या टाईप करना आदि इसके उदाहरण हैं क्योंकि इनमें कार्य करने की प्रक्रिया व्यक्ति जानता है। आवश्यकता पड़ने पर उसका उपयोग भी करता है।

दीर्घकालिक स्मृति की विशेषताएँ (Characteristics of LTM) इनमें भी कतिपय विशेषताएँ पाई जाती हैं।

1) संगठित संचयन (Organized Storage) - दीर्घकालिक स्मृति में सूचनाएँ अपेक्षाकृत अधिक संगठित रूप में भण्डारित रहती हैं। इसी कारण उनमें विस्मरण की गति मन्द होती है।
2) दीर्घकालिक संचयन (Longer Storage) - इसमें स्मृतियों का भण्डारण अपेक्षाकृत दीर्घकाल तक रहता है, जैसे-कई दिनों, सप्ताहों, महीनों या वर्षों तक।
3) असीमित क्षमता (Unlimited Capacity) - दीर्घकालिक स्मृति की क्षमता असीमित होती है। इसमें अधिक से अधिक सूचनाएँ संग्रहीत रहती हैं।
4) संसाधित या प्रक्रमित संचयन (Processed Storage) - इसमें ज्ञान या सूचनाएँ अपेक्षाकृत अधिक प्रक्रमण के बाद संचित होती हैं। इसमें इस कार्य में संकेतीकरण ,विस्तारण , मानसिक अभ्यासए, प्रयत्न, अर्थगत विस्तारण एवं श्रेणी गुच्छन आदि जैसी प्रक्रियाओं से सहायता मिलती है (Craick and Lockhart, 1972; Craick and Tulving, 1975)।
5) शुद्धता (Accuracy) - इस स्मृति में शुद्धता ता की मात्रा अधिक पाई जाती है। यदि सीखी गई सामग्री चाक्षुष है (जैसे-शब्द, वाक्य आदि) तो पुनर्स्मरण की शुद्धता ता और भी बढ़ जाती है (Shepard, 1967)।
6) रूपान्तरण (Transformation)- दीर्घकालिक स्मृति की अवस्था में संचित सूचनाओं या जानकारियों का रूपान्तरण भी हो सकता है। इसे बार्टलेट (Bartlet, 1932) ने स्मृति में पुनर्रचना का नाम दिया है। अर्थात्,

मूल सामग्री का पुनरोत्पादन करते समय प्रयोज्य कुछ नया अंश उसमें जोड़ देते हैं, पुराने अंश विस्मरित हो जाते हैं और तथ्यों का विरूपण (Distortion) भी होता है।

अल्पकालिक एवं दीर्घकालिक स्मृति में अन्तर (Differences Between STM & LTM) - उपर्युक्त दोनों प्रकार की स्मृतियों में कतिपय अन्तर पाया जाता है, जैसे -

a) क्षमता में अन्तर (Differences in Capacity) - एडम्स (1967) के अनुसार अल्पकालिक स्मृति में संचयन की क्षमता कम और दीर्घकालिक स्मृति में संचयन की क्षमता अधिक होती है। इसी कारण अल्पकालिक स्मृति का विस्मरण अपेक्षाकृत शीघ्र होता है। मार्क्स (1976) का भी ऐसा ही विचार है।

b) व्यतिकरण या बाधा का प्रभाव (Effects of Inteference) - बाधाओं का प्रभाव दोनों प्रकार की स्मृतियों पर पड़ता है। कोनार्ड (1964) फ्रीमैन एवं हल आदि के अनुसार, अल्पकालिक स्मृति में उत्तेजक सम्बन्धी ध्वन्यात्मक समानता होने के कारण बाधा पहुँचती है, जबकि दीर्घकालिक स्मृति में उत्तेजकों में अर्थ सम्बन्धी समानता के कारण बाधा प्रभाव पाया जाता है। बैडले (1964) का भी ऐसा ही निष्कर्ष है। सामान्य भाषा में यह कहा जा सकता है कि व्यतिकरण का प्रभाव अल्पकालिक स्मृति पर अधिक और दीर्घकालिक स्मृति पर कम पड़ता है।

c) दैहिक आधार में (Differences in Physiological Bases) - अल्पकालिक एवं दीर्घकालिक स्मृति के वर्गीकरण की वैधता को दैहिक अध्ययनों से भी भी समर्थन मिला है। पेनफील्ड (1959) का निष्कर्ष है कि यदि हिप्पोकैम्पस (मस्तिष्क का भाग) को नष्ट कर दिया जाय, तो अल्पकालिक स्मृति दीर्घकलिक स्मृति में रूपान्तरित नहीं हो पाती है। अर्थात्, दोनों स्मृतियों में सन्निहित दैहिक प्रक्रियाओं में भी अन्तर है।

d) कूटसंकेत में अन्तर (Differences in Coding) - विद्वानों का मत है कि दोनों स्मृतियों में अल्पकालिक स्मृति का विस्मरण तीव्र गति से होता है क्योंकि इस अवस्था में सूचनाओं का अपेक्षित रूप में कूटसंकेत नहीं हो पाता है। कूटसंकेतन एवं संचयन आदि दीर्घकालिक स्मृति की अवस्था में अवश्य ही होता है। इसी कारण इसकी विस्मरण गति कम होती है (Tulving and Thompson, 1973; Atkinson & Shiffrin, 1971,1977; Craick and Lockhart,1972) ।

e) प्राथमिकता बनाम नवीनता प्रभाव (Primacy Recency Verses Effects) - अल्पकालिक एवं दीर्घकालिक स्मृतियों के वर्गीकरण की वैधता की पुष्टि प्राथमिकता एवं नवीनता प्रभावो से भी होती है। वाचिक अधिगम का यह महत्वपूर्ण गोचर है। इसका आशय यह है कि यदि कोई सूची क्रमिक विधि से याद की जाती है तो सूची के प्रारम्भिक पदों का स्मरण अधिक होता है। इसे प्राथमिकता प्रभाव कहते हैं।

मध्य के पदों का स्मरण बहुत कम हो पाता है, परन्तु पुनः सूची के अन्त के पदों का पुनर्स्मरण अधिक होता है फिर भी यह मात्रा प्रारम्भिक पदों की तुलना में कम होती है। इसे नवीनता प्रभाव कहते हैं।

शब्दार्थ-स्मृति (Semantic Memory)-

शब्दार्थ स्मृति दीर्घकालिक स्मृति का ही एक पक्ष है, क्योंकि इस स्मृति-भण्डार में शब्दों का अर्थ, शब्दों या वस्तुओं में सम्बन्ध, भाषा, ज्ञान आदि से सम्बन्धित सूचनाएँ संग्रहीत रहती हैं, परन्तु, ऐसा नहीं है कि सूचनाएँ ज्यों की त्यों पड़ी रहती हैं बल्कि उनमें रूपान्तरण या परिवर्तन भी होता है। यह परिवर्तन गुणात्मक होता है। एबिंगहास ने स्मृति-अध्ययन की जो परम्परा स्थापित की है उसमें स्मृति में होने वाले मात्रात्मक परिवर्तनों का अध्ययन किया जाता है। स्मृति में होने वाले गुणात्मक परिवर्तनों की परम्परा बार्टलेट (S.F. Bartlett, 1886-1969) द्वारा प्रारम्भ की गई।

शब्दार्थ-स्मृति का आशय यह है कि हम जो सीखते या याद करते हैं उसका स्वरूप भाषात्मक एवं बौद्धिक प्रक्रमों द्वारा परिवर्तित तथा रूपान्तरित होता रहता है (Hulse, et.al 1980) । इससे स्पष्ट है कि हम जो कुछ जानते हैं उसमें हमारी भाषा तथा संज्ञानात्मक प्रक्रमों के कारण परिवर्तन होता है। शब्दार्थ स्मृति से सम्बन्धी अध्ययनों में यह जानने पर बल दिया जाता है कि कोई व्यक्ति या प्रयोज्य किसी शब्द या वस्तु का अर्थ कैसे स्मरित करता है और किस प्रकार उसका
अर्थ भाषात्मक तथा बौद्धिक प्रक्रमों द्वारा रूपान्तरित होता है। शब्दार्थ स्मृति से सम्बन्धित पक्ष (कारक), विशेषकर वाचिक अधिगम तथा उसकी धारणा को व्यापक रूप में प्रभावित करते हैं।

स्मृति में शब्दार्थ भण्डारण (Semantic Storage in Memory) :-

व्यक्ति के शब्दार्थ स्मृति भण्डार में असंख्य शब्द संचित रहते हैं और वह आवश्यकतानुसार उनका उपयोग भी करता है। यहाँ पर यह प्रश्न किया जा सकता है कि वे किस तरह स्मृति भण्डार में संचित या भण्डारित रहते हैं। कुछ लोगों का मत है कि हमारे मस्तिष्क में भी शब्दकोष जैसी स्थिति होती है। इसे आत्मगत शब्दकोष कह सकते हैं। कुछ लोगों ने इनकी व्याख्या अन्य रूपों में भी (भाषात्मक एवं मनोवैज्ञानिक आदि) की है। अतः इस प्रश्न के स्पष्टीकरण के लिए कुछ माडलों की चर्चा अपेक्षित है।

जाल संरचना माडल (Network Structure Model) :-

शब्दार्थ स्मृति के बारे में एक प्रचलित अवधारणा यह है कि इसमें विभिन्न प्रकार के शब्दों से सम्बन्धित अर्थ जाल के रूप में परस्पर अन्तःसम्बन्धित होते हैं। जाल संरचना की अवधारणा पर आधारित शब्दार्थ स्मृति के कई माडल प्रस्तावित किए गये हैं। इनमें क्वीलियन का माडल (Quillian, 1968) काफी चर्चित रहा है। इसे पदानुक्रमिक माडल (Hierarchical model) कहा जाता है।

पदानुक्रमिक माडल के अनुसार, व्यक्ति के शब्द भण्डार में संचित प्रत्येक शब्द से सम्बन्धित लक्षणों का एक समुच्चय पाया जाता है और विभिन्न लक्षणों या विशेषताअें का विभिन्न उपयुक्त स्तरों या बिन्दुओं पर भण्डारण किया जाता है। ऐसे समुच्चय, सम्बन्धों के अन्तःसम्बन्धित पथ प्रणालियों द्वारा सम्बद्ध होकर जाल

जैसी संरचना का निर्माण करते हैं। कुछ विशेषताएँ उस वर्ग के किसी सदस्य की विशिष्ट विशेषताएँ हो सकती हैं और कुछ विशेषताएँ उस वर्ग के किसी सदस्य की विशिष्ट विशेषताएँ हो सकती हैं। इनका भण्डारण एक ही बिन्दु या गांठ पर न होकर अलग-अलग होता है। चित्रा में शब्दार्थ-स्मृति में पदानुक्रमिक भण्डारण का एक उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। उदाहरण के लिए, चित्रा में 'उड़ना, पंख का होना' इत्यादि जैसी विशेषताएँ 'पक्षी' शब्द के साथ दर्शाई गई हैं। दूसरी तरफ, गाती है, काली होती है, जैसी विशेषताएँ 'कोयल' के साथ सम्बद्ध करके भण्डारित दिखाई गई हैं। ये उसकी विशिष्ट विशेषताएँ हैं तथा उसमें पक्षियों की अन्य विशेषताएँ भी पाई जाती हैं। इससे स्पष्ट हो रहा है कि किसी वस्तु या शब्द से सम्बन्धित अर्थ या विशेषताएँ एक निश्चित स्तर या बिन्दु पर भण्डारित की जाती हैं। अतः यदि कोई यह प्रश्न करता है, 'क्या कोयल गा सकती है? तो इसका उत्तर 'कोयल प्रविष्टि बिन्दु' पर भण्डारित विशेषता के पुनरुद्धार से दिया जाएगा। परन्तु यदि प्रश्न है, 'क्या कोयल उड़ सकती है? तो इसका उत्तर 'पक्षी प्रविष्टि बिन्दु से विशेषता का पुनरुद्धार करके दिया जाएगा, क्योंकि स्मृति भण्डार में यह विशेषता 'कोयल' से ऊपर वाले स्तर या प्रविष्टि बिन्दु पर भण्डारित है। भण्डारण की यह व्यवस्था पदानुक्रमिक कही जाती है।

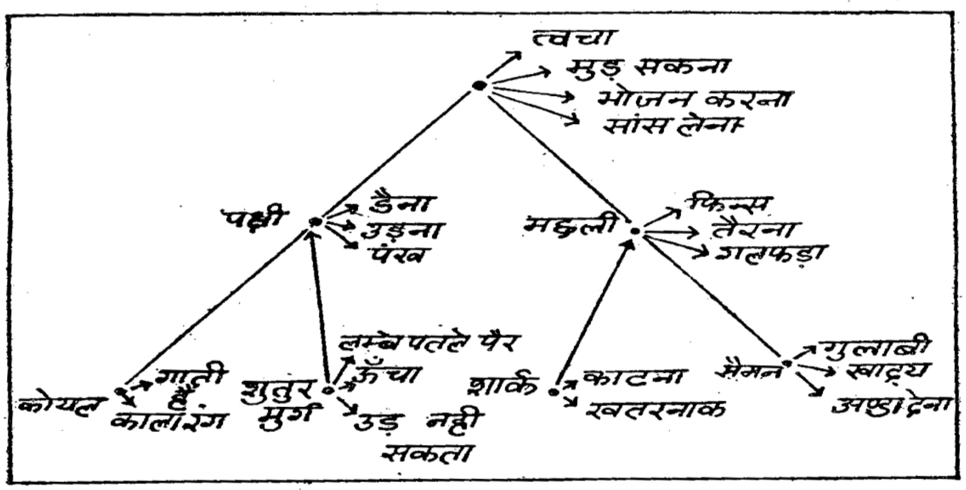

चित्र : शब्दार्थ भण्डारण का एक पदानुक्रमिक माडल। लक्षणों का उपयुक्त स्तरों या विन्दुओं (Nodes) पर भण्डारण होता है। (Collins & Quillian, 1969 से परिमार्जित)।

पदानुक्रमिक सिद्धान्त का अभिग्रह है कि किसी प्रश्न का उत्तर देने में जो प्रतिक्रिया काल प्राप्त होगा वह इस तथ्य पर निर्भर करेगा कि प्रस्तुत प्रश्न से सम्बन्धित सूचना शब्दार्थ स्मृति भण्डार में किस बिन्दु पर भण्डारित है। जैसे, क्या कोयल गा सकती है? इसका उत्तर देने में जो समय लगेगा उसकी तुलना में क्या कोयल उड़ सकती है? प्रश्न का उत्तर देने में समय अधिक लगेगा क्योंकि 'उड़ने' की विशेषता 'पक्षी' प्रविष्टि बिन्दु पर भण्डारित है।

सेट संरचना माडल (Set Structure model) :-

शब्दार्थ स्मृति में शब्दों के भण्डारण की व्याख्या के लिए एक और भी माडल या उपागम प्रस्तुत किया गया है। इसे ज्ञानकृति-संरचना कहते हैं। जाल संरचना की भांति इस विचार पर भी आधारित कई माडल प्रस्तुत किए गए हैं। इनमें ज्ञानकृति सैद्धान्तिक माडल एक बहुत ही उपयोगी तथा प्रभावशाली माडल है। जैसा कि इसके पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि जाल संरचना माडल में यह परिकल्पना की गई है कि शब्दार्थ स्मृति में भण्डारित शब्दों के बीच पाए जाने वाले सम्बन्ध अन्तःसम्बन्धित पथ प्रणालियों द्वारा परस्पर सम्बन्धित होते हैं। इसके विपरीत ज्ञानकृति संरचना माडल में यह अभिग्रह प्रस्तुत किया गया है कि शब्दार्थ स्मृति भण्डारण में शब्दों का भण्डारण विशेषताओं या लक्षणों के समुच्चय के रूप में किया जाता है। इसीलिए इसे लक्षण माडल भी कहते हैं। इस माडल को व्यापक समर्थन प्राप्त हुआ है (Schaiffer & Wallace, 1969)।

सेट-संरचना माडल को विभिन्न उभयनिष्ट वर्गों की वस्तुओं से सम्बन्धित वाक्यों को सही या गलत निर्णीत करने के लिए विकसित किया गया है। ऐसे निर्णय कराने के लिए मेयर (1970) ने दो प्रकार के वाक्यों का उपयोग किया। जैसे सभी कर्त्ता (Subject : S) विधेय (Predicate : P) है एवं कुछ कर्त्ता (S) विधेय (P) है। इनमें प्रथम प्रकार के वाक्य सार्वभौमिक विधायक या स्वीकारात्मक और द्वितीय प्रकार के वाक्य विशिष्ट विधायक या स्वीकारात्मक वाक्य कहे जाते हैं। उपर्युक्त दोनों वर्गों के वाक्यों में सेट-सम्बन्धों को प्रहस्तित करके मेयर ने यह जानने का प्रयास किया कि उनका प्रयोज्यों के निर्णय-प्रतिक्रिया काल पर कैसा प्रभाव पड़ता है। इसके लिए प्रत्येक वाक्य-वर्ग में चार प्रकार के सम्बन्धों पर आधारित वाक्य रखे गये। ऐसे वाक्य तथा उनके प्रति प्राप्त प्रतिक्रिया काल तालिका में प्रस्तुत किये गये हैं।

सार्वभौमिक स्वीकारात्मक

सेट-सम्बन्ध उदाहरण	सत्य/असत्य	औसत प्र0का0 (RTMS)
उपसेट Subset - सभी देवदार वृक्ष होते हैं।	सत्य	1182
सुपरसेट Superset - सभी पत्थर लाल होते हैं	असत्य	1339
आच्छादन overlapping - सभी महिलाएँ लेखक होती है।	असत्य	1263
वियोजित Disjoint - सभी बादल मणिबन्ध होते हैं।	असत्य	1154
विशिष्ट स्वीकारात्मक		
उपसेट Subset - कुछ देवदार वृक्ष होते हैं।	सत्य	998
सुपरसेट Superset - कुछ पत्थर लाल होते हैं	सत्य	1017
आच्छादन overlapping - कुछ महिलाएँ लेखक होती है।	सत्य	1108
वियोजित Disjoint - कुछ बादल मणिबन्ध होते हैं।	असत्य	1115

प्रस्तुत वस्तु शब्द या वाक्य के बारे में निर्णय लेते समय व्यक्ति उसकी सामान्य एवं विशिष्ट, दोनों प्रकार की विशेषताओं पर ध्यान केन्द्रित करता है। जैसे, क्या कोयल एक पक्षी है? इसका उत्तर देने के लिए पक्षियों एवं कोयल की विशेषताओंकी तुलना की जाती हैं और उसके बाद ही उत्तर -हाँ' में दिया जाता है। स्मिथ इत्यादि (1974) के अनुसार निर्णय दो अवस्थाओं में लिया जाता है। निर्णय लेने में समानता कारक की प्रमुख भूमिका होती हैं। जैसाकि प्रस्तुत चित्रा से स्पष्ट हो रहा है, यदि तुलनीय पक्षों में समानता निम्नतर मापदण्ड से भी कम है तो तत्काल 'असत्य' की अनुक्रिया प्राप्त होगी और इसी प्रकार समानता उच्चतर मापदण्ड से अधिक होने पर 'सत्य' की अनुक्रिया तत्काल प्राप्त होगी (Meyers, 1970)। इसी प्रक्रम को प्रथम अवस्था की छानबीन कहते हैं। उदाहरणार्थ कोयल, कबूतर, तोता एवं कौवा इत्यादि को पक्षी कहने में समय कम लगेगा क्योंकि इनकी विशेषताएँ पक्षी सम्प्रत्यय से सम्बद्धविशेषताओं के समान हैं परन्तु, बत्तख को पक्षी कहने में प्रयोज्य कठिनाई अनुभव कर सकता है एवं उत्तर देने में समय भी अधिक लगेगा क्योंकि उसकी अपनी विशेषताएँ पक्षियों की सामान्य विशेषताओं के पूर्णतः अनुरूप नहीं है।

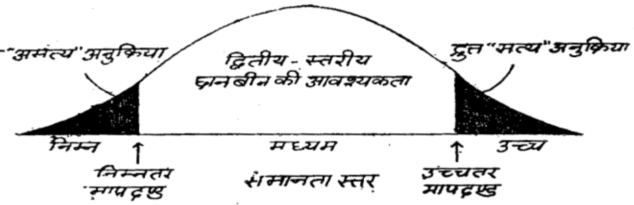

चित्र :—लक्षण-तुलना माडल की परिकल्पना पर आधारित निर्णय लेने की प्रथम अवस्था का चित्रण। यदि समानता दोनों मापदण्डों के बीच की है तो द्वितीय स्तरीय छानबीन करने की आवश्यकता पड़ेगी (Hulse, et. al. 1980)।

चित्र से यह भी स्पष्ट हो रहा है कि यदि सम्बन्धित वस्तुओं में समानता मध्यम स्तरीय है तो प्रश्न का उत्तर प्रथम अवस्था की छानबीन से नहीं मिल पायेगा। अतः द्वितीय अवस्था के उपयोग की आवश्यकता पड़ेगी। इस अवस्था में सम्बन्धित वस्तुओं की परिभाषक विशेषताओं पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है। परिभाषक विशेषताओं की कमी से निर्णय लेने में कठिनाई बढ़ती है (Rosch, 1973)। यदि दोनों परिभाषक विशेषताएँ एक जैसी हैं तो प्रश्न को 'सत्य' अन्यथा 'असत्य' मान लिया जाएगा। यदि निर्णय लेने में द्वितीय स्तरीय छानबीन की आवश्यकता पड़ती है तो प्रतिक्रिया काल बढ़ जाता है।

स्मृति में पुनर्रचना (Reconstruction in Memory)-

इसका आशय यह है कि पुनः स्मरण के वास्तविक प्रक्रम में स्मृति भण्डार में केवल पुनरुद्धार ही नहीं होता है बल्कि इसमें कुछ नवीन बातों या पक्षों का सृजन तथा वर्तमान अनुभव के साथ पूर्वानुभव के आत्मसातीकरण का भी प्रक्रम सन्निहित होता है (Hulse et, al, 1980)। अर्थात व्यक्ति सुनी हुई या पढ़ी गई बातों या कहानियों में अपनी पूर्व स्मृतियों, अनुभवों, विचारों या भावनाओं के सन्दर्भ में परिवर्तन एवं परिमार्जन भी करता है। वह उसके आकार को घटा सकता है, स्वरूप को और भी समन्वित करने का प्रयास कर सकता है, उसमें कुछ नवीन बातें जोड़ सकता है या कुछ पुरानी बातों को निकाल भी सकता है। इससे संकेत मिलता है कि स्मृति में गत्यात्मक परिवर्तन भी होता है। शब्दार्थ स्मृति के प्रसंग में प्रदर्शित होने वाले इस प्रक्रम या गोचर को स्मृति में पुनर्रचना का नाम दिया गया है। यह पक्ष एबिंगहास से भिन्न परम्परा का द्योतक है। एबिंगहास-उपागम में स्मृति में होने वाले मात्रात्मक परिवर्तन के अध्ययन पर बल दिया जाता है। पुनर्रचनात्मक स्मृति के अन्तर्गत उसमें होने वाले गुणात्मक परिवर्तनों को विवेचन का विषय माना जाता है। इस उपागम को प्रस्तुत करने का श्रेय बार्टलेट (1932) को दिया जाता है।

बार्टलेट का अध्ययन (Bartlett's Study) :

बार्टलेट (1932) ने अपनी पुस्तक में प्रत्यक्षीकरण, प्रतिमा एवं पुनर्स्मरण से सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण अध्ययनों का उल्लेख किया है। परन्तु इस प्रसंग में केवल स्मृति के बारे में दिए गए उनके विचारों की ही समीक्षा की जाएगी। बार्टलेट ने अपने प्रयोज्यों को एक कहानी पढ़ने को दिया और विभिन्न अनियमित अन्तरालों पर (न्यूनतम 15 मि0) कहानी का पुनरोत्पादन कराया। अनेक प्रयोज्यों से पुनरोत्पादन बार-बार तथा कई से वर्षों बाद भी (जैसे 10 वर्ष) कराया गया। इस कहानी का शीर्षक 'प्रेतों का युद्ध था। प्रत्येक प्रयोज्य को कहानी दो बार पढ़ने को दी गई। लगभग 24 घण्टे बाद कहानी का जो पुनरोत्पादन एक प्रयोज्य ने प्रस्तुत किया उसमें अनेक अशुद्धियाँ पाई गई। अपने प्रेक्षणों के आधार पर बार्टलेट ने निम्नांकित निष्कर्ष प्रस्तुत किया।

(i) प्रयोज्यों ने कहानी के अनेक अंशों को छोड़ते हुए उसे काफी छोटा कर दिया।

(ii) प्रयोज्यों ने कहानी की भाषा को अपनी स्वयं की भाषा सम्बन्धी आदतों के अनुरूप परिवर्तित कर दिया। उनकी भाषा परिष्कृत अंग्रेजी भाषा के अनुरूप थी जबकि कहानी की मूल भाषा जनजातीय स्तर की थी।

(iii) प्रयोज्यों ने कहानी को अपनी सभ्यता और संस्कृति की दृष्टि से अपेक्षाकृत अधिक संगठित तथा ठोस रूप दे दिया।

(iv) कहानी के पुनरोत्पादन में अनेक मूल बातों को छोड़ दिया गया था एवं अनेक बातों को रूपान्तरित भी कर दिया गया।

इन प्रेक्षणों के आधार पर बार्टलेट ने यह मत व्यक्त किया कि पुनर्स्मरण केवल प्रस्तुत सामग्री द्वारा ही प्रभावित नहीं होता है बल्कि पूर्वानुभव-विचार, एवं परिवेश से भी प्र्रभावित होता है। इसे बार्टलेट ने स्कीमा कहा है। स्कीमा जटिल घटनाओं के प्रत्यक्षीकरण तथा उनकी स्मृति को व्यापक रूप में प्रभावित करता है।

स्कीमा का प्रायोगिक प्रवर्तन (Experimental induction of Schema) - बार्टलेट के अध्ययनों की इस आधार पर आलोचना की गई है कि उन्होंने ने यह स्पष्ट नहीं किया है कि किस प्रकार प्रयोज्यों में स्कीमा उत्पन्न या प्रहस्तित किया जा सकता है ताकि उसका क्रमब) विरूपण पर प्रभाव ज्ञात किया जा सके। इस प्रसंग में ऐसे कुछ अध्ययन हुए हैं जिनसे यह निष्कर्ष मिला है कि वस्तु के प्रत्यक्षीकरण के समय यदि उसके बारे में कोई विशेष सूचना उपलब्ध की जाती है तो उससे प्रयोज्यों में एक विशेष स्कीमा या मानसिकता उत्पन्न हो जायेगी और वह पुनरोत्पादन के स्वरूप को निर्धारित करेगी। ऐसा एक प्रसिद्ध अध्ययन कारमाइकेल इत्यादि (1932) का है।

कारमाइकेल इत्यादि के अध्ययन में कुछ आकृतियाँ चाक्षुष प्रत्यक्षीकरण के लिए प्रस्तुत की गई। इन्हें उद्दीपक आकृतियाँ कहा गया। एक समूह को इन आकृतियों का नाम कुछ तथा दूसरे को उससे भिन्न बताया गया। प्रत्येक आकृति एक-एक करके दिखाई गई। और उन्हें प्रस्तुत करने से पहले सूचित किया गया, इसका आकार अमुक वस्तु जैसा है। एक समूह को प्रथम सूची जैसे, अंग्रेजी का अक्षर ब और दूसरे को द्वितीय सूची जैसे- दूज का चाँद से नाम बताये गए। अध्ययन के तीसरे समूह को किसी भी प्रकार की सूचना नहीं दी गई। प्रयोज्यों द्वारा पहचान योग्य आकृतियों के पुनरोत्पादन तक प्रयास जारी रहा। परिणाम यह रहा कि प्रयोज्यों के पुनरोत्पादन पर वाचिक सूचना का स्पष्ट प्रभाव पड़ा। प्रयोज्यों को जैसी सूचना दी गई थीं उसी के अनुरूप उस वस्तु का पुनरोत्पादन भी हुआ। जैसे- एक अर्धवृत्ताकार आकृति को एक समूह ने पूर्व सूचना के कारण उसे अंग्रेजी के अक्षर-सी के रूप में और द्वितीय समूह ने उसका प्रत्यक्षीकरण 'चाँद' के रूप में किया। इससे स्पष्ट है किसी भी कारण से उत्पन्न स्कीमा अधिगम सामग्री के पुनरोत्पादन को विरूपित करता है और प्रत्येक उद्दीपक या वस्तु के लिए अलग-अलग 'स्कीमा' का निर्माण होता है। यद्यपि इस अध्यन से पुनरोत्पादन पर वाचिक सूचना सममस का प्रभाव अवश्य स्पष्ट होता है, परन्तु यह नहीं स्पष्ट हो पाता है कि सूचनाओं के कारण विरूपण कब होता होगा।

3.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान चुके हैं कि स्मृति क्या होती है कून ने बताया है कि मस्तिष्क में सूचना भण्डारण के परिणामस्वरूप परिकल्पनात्मक परिवर्तनों का स्मृति चित्रा कहा जाता है, स्मृति इन्हीं स्मृति चिन्हों पर ही निर्भर करती है। स्मृति के अभाव में हम कुछ भी याद नहीं रख पाते हैं। स्मृति को परिभाषित करते हुए आइजेन्क ने कहा है कि स्मृति व्यक्ति की वह योग्यता है कि जिसके द्वारा वह पहले के अधिगम प्रक्रिया से सूचना संग्रह करता है और आवश्यकता पड़ने पर उसका पुनरुत्पादान करता है।

स्मृतियाँ कई प्रकार की होती हैं। जिसमें प्रमुख हैं - संवेदी स्मृति अल्पकालिक स्मृति एवं दीर्घकालिक स्मृति। प्रत्येक प्रकार की स्मृतियों की अपनी अलग-अलग विशेषताएँ होती हैं। इस इकाई में शब्दार्थ स्मृति की भी चर्चा की गयी है। यह दीर्घकालिक स्मृति का ही एक पक्ष है। शब्दार्थ स्मृति का तात्पर्य है कि हम जो सीखते या याद करते हैं उसका स्वरूप भावात्मक तथा दैहिक प्रक्रमों द्वारा परिवर्तित तथा रूपान्तरित होता रहता है।

3.6 शब्दावली

- **स्मृति:** एक मानसिक प्रणाली है जो सूचनाओं का संकेतन, भण्डारण, संगठन परिवर्तन एवं पुनर्स्मरण करती है।
- **स्मृति-चिह्न:** मस्तिष्क में सूचना भण्डारण के परिणामस्वरूप होने वाले परिकल्पनात्मक परिणामों को स्मृति चिह्न कहा जाता है।
- **संवेदी स्मृति:** उद्दीपक हटा लेने के बाद भी संवेदी सूचना का कुछ क्षण तक विलम्बित रहना संवेदी स्मृति है।
- **प्रतिमात्मक स्मृति:** ऐसा चाक्षुष स्मृति चिह्न या उद्दीपक का सतत् पश्चात् प्रभाव है जिसकी संचयन क्षमता अपेक्षाकृत विस्तृत, परन्तु एक सेकण्ड से अधिक नहीं है।
- **प्रतिध्वन्यात्मक स्मृति:** प्रतिध्वन्यात्मक स्मृति, श्रवणात्मक स्मृति चिह्न या उद्दीपक का सतत् पश्चात् प्रभाव है, चाक्षुष या प्रतिमात्मक स्मृति की तरह इसकी भी अवधि अत्यन्त लघु होती है।
- **अल्पकालिक स्मृति:** अल्पकालिक स्मृति वह स्मृति प्रणाली है जो सामग्रियों को एक मिनट तक संचित रखती है, जिसकी भण्डारण क्षमता कम होती है और जिससे दीर्घकालिक स्मृति की तुलना में सामग्रियों का प्रक्रमण अपेक्षाकृत कम होता है।
- **तात्कालिक स्मृति:** अधिगम की किसी परिस्थिति में कोई व्यक्ति एक बार में जिसमें अंकों या अक्षरों को दुहरा लेता है। उसे तात्कालिक स्मृति कहते हैं।
- **क्रियात्मक स्मृति:** यह वह स्मृति है, जो सूचनाओं की छान-बीन इस प्रकार करती है कि उसका स्वरूप परिवर्तित हो जाता है।
- **दीर्घकालिक स्मृति:** दीर्घ अन्तरालों पर जो स्मृति प्रदर्शित होती है उसे दीर्घकालिक स्मृति कहा जाता है यह सूचनाओं को दीर्घकाल तक भण्डारित किये रखती है।
- **विवरणात्मक स्मृति:** इसका तात्पर्य किसी वस्तु, व्यक्त सामग्री या घटना के बारे में विस्तृत जानकारी से है।
- **वृत्तात्मक स्मृति:** किसी घटना या जानकारी का क्रमवार वर्णन करना प्रासंगिक या वृत्तात्मक स्मृति कहा जाता है।

- **शब्दार्थ स्मृति:** किसी वस्तु के बारे में सम्प्रत्यात्मक अवधारणायें विकसित करना शब्दार्थ या अर्थगत स्मृति कहा जाता है।
- **प्रक्रियात्मक स्मृति:** इसका तात्पर्य किसी कार्य क्रिया या कौशल की तकनीक की जानकारी से है।

3.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1- स्मृति .... का परिणाम है।

2- स्मृति एक .... प्रणाली है।

3- स्मृति के कितने प्रकार हैं?

(1) 4, (2) 5, (3) 2, (4) 3

4- इसमें से संवेदी स्मृति का कौन सा प्रकार नहीं है -

(1) प्रतिमात्मक स्मृति (2) प्रतिध्वन्यात्मक (3) तात्कालिक स्मृति

उत्तर: (1) अधिगम, (2) मानसिक, (3) 3 (4) 4- तात्कालिक स्मृति

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- सिंह, अरुण कुमार (2011): संज्ञानात्मक मनोविज्ञान
- श्रीवास्तव, रामजी (सम्पादक) (2003): संज्ञानात्मक मनोविज्ञान
- सिंह, आर.एन. एवं भारद्वाज, एस.एस. (2010): उच्च प्रायोगिक मनोविज्ञान
- Colin Martindale (1981) : Cognition and Consciousness.
- Geryd' YDewalle (1985) : Cognition, Information Processing and Motivation.
- Kathleen M. Galotti (1999) : Cognitive Psychology in and Out of the Laboratory.
- Margaret Matlin (1982) : Cognition.

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. स्मृति का अर्थ स्पष्ट करते हुए उसके प्रमुख प्रकारों का वर्णन कीजिए।
2. संवेदी स्मृति क्या है? संवेदी स्मृति की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
3. अल्पकालिक स्मृति के प्रकारों का वर्णन करते हुये इसके अध्ययन की तकनीकों का वर्णन कीजिए।
4. दीर्घकालिक स्मृति को स्पष्ट कीजिए तथा अल्पकालिक एवं दीर्घकालिक स्मृति में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
5. दीर्घकालिक स्मृति के प्रकारों का वर्णन करते हुये इसकी प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
6. टिप्पणी लिखिए -

(i) शब्दार्थ स्मृति (ii) स्मृति में पुनर्रचना (iii) स्कीमा का प्रायोगिक प्रवर्तन।

इकाई-4 पृष्ठोन्मुख अवरोध और उसके सिद्धान्त(Retroactive Inhibition and its theories)

इकाई संरचना

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 पृष्ठोन्मुख अवरोध
4.4 पृष्ठोन्मुख अवरोध के निर्धारक
4.5 पृष्ठोन्मुख अवरोध के सिद्धान्त
4.6 सारांश
4.7 शब्दावली
4.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

अवरोध विस्मरण का एक प्रमुख कारण है। यह अवरोध दो प्रकार के होते हैं - पृष्ठोन्मुख एवं अग्रोन्मुख पृष्ठोन्मुख अवरोध की दशा में वर्तमान में सीखी जाने वाली सामग्री का अतीत या पूर्व में सीखी गयी सामग्री की धारणा पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है और उसका विस्मरण बढ़ जाता है पृष्ठोन्मुख अवरोध पर अनेक विद्वानों ने महत्वपूर्ण प्रायोगिक कार्य किया है। इन अध्ययनकर्ताओं के अनुसार अन्तर्वेशीय कार्य करने से उत्पन्न पृष्ठोन्मुख अवरोध के कारण पूर्व अधिगम के स्मृति चिन्हों का दृढ़ एवं संगठित होने का समुचित अवसर नहीं मिल पाता है, इसी कारण विस्मरण बढ़ जाता है। पृष्ठोन्मुख अवरोध के अनेक निर्धारक हैं। इसी प्रकार इसकी व्याख्या के लिए कुछ सिद्धान्त भी प्रतिपादित किए गए हैं, जिनका विस्तृत वर्णन इस इकाई में किया जायेगा।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप कर सकेंगे:

- पृष्ठोन्मुख अवरोध क्या है तथा इसके प्रमुख निर्धारक क्या हैं?
- पृष्ठोन्मुख अवरोध के प्रमुख सिद्धान्त जिसके द्वारा इसकी व्याख्या की जा सकती है।

4.3 पृष्ठोन्मुख अवरोध

पृष्ठोन्मुख अवरोध विस्मरण का एक प्रमुख कारण है। पृष्ठोन्मुख व्यतिकरण या अवरोध की दशा में वर्तमान में सीखी जाने वाली सामग्री का अतीत या पूर्व में सीखी सामग्री की धारणा पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है और उसका विस्मरण बढ़ जाता है। इसे परिभाषित करते हुए रच (1967) ने लिखा है, ''मूल अधिगम एवं उसके प्रत्याह्वान के बीच किये गये अन्तर्वेशी कार्य के स्वरूप से पुनर्स्मरण में जो कठिनाई पैदा होती है उसे पृष्ठोन्मुख अवरोध कहते हैं।''

हिलगार्ड आदि (1975) ने भी लिखा है, ''पृष्ठोन्मुख अवरोध से तात्पर्य बाद में सीखे गये किसी कार्य का पूर्व अधिगम के प्रत्याह्वान में व्यतिकरण (बाधा) है।''

इस प्रकार स्पष्ट हो रहा है कि पृष्ठोन्मुख अवरोध उस समय प्राप्त होता है जब नवीन कार्य अतीत के अधिगम की स्मृति को कमजोर बनाता है या उसके विस्मरण को बढ़ाता है।

पृष्ठोन्मुख अवरोध पर मूलर-पिल्जेकर (1900) ए डीकैम्प (1915), वेब्ब (1921), वान आरमर (1932), जेन्किन्स तथा डालेनवैक (1924), स्टीवेन्सन (1941), अन्डरवुड (1957) तथा लोवट्ट एवं वार (1968) ने महत्वपूर्ण प्रायोगिक कार्य किया है। इन शोधकर्त्ताओं के अनुसार अन्तर्वेशी कार्य (Interpolated learning) करने से उत्पन्न पृष्ठोन्मुख अवरोध के कारण पूर्व अधिगम के स्मृति चिन्हों को दृढ़ एवं संगठित होने का समुचित अवसर नहीं मिल पाता है। इसी कारण विस्मरण बढ़ जाता है। परन्तु यदि अधिगम के बाद विश्राम किया जाये या व्यक्ति सो जाय तो स्मृति चिन्ह सुचारु रूप से दृढ़ एवं संगठित हो जाते हैं और विस्मरण की मात्रा घट जाती है। लोवट्ट एवं वार (1968) के एक प्रयोग में प्रयोज्यों ने दिन एवं रात में अधिगम किया और पुनः पुनर्स्मरण कराया गया। परिणामों से स्पष्ट हुआ कि यदि अधिगम के बाद प्रयोज्य को विश्राम दिया जाये, तो विस्मरण की मात्रा अपेक्षाकृत कम प्राप्त होती है। परन्तु अन्य गतिविधियों में लगे रहने से उनका मूल कार्य पर बाधक प्रभाव पड़ता है और विस्मरण बढ़ जाता है।

पृष्ठोन्मुख अवरोध का अभिकल्प (Design)

पृष्ठोन्मुख अवरोध का प्रायोगिक अध्ययन करने के लिए इस प्रकार कार्य किया जा सकता है। प्रयोज्य को प्रायोगिक अवस्था में कार्य करने पर 'अ' के बाद 'ब' सीखना पड़ता है और पुनः कार्य 'अ' का पुनर्स्मरण करना पड़ता है। नियन्त्रित अवस्था में कार्य 'अ' के बाद विश्राम देते हैं और इसके बाद पुनः कार्य 'अ' का पुनर्स्मरण कराया जाता है। यदि दोनों दशाओं के कार्यों में अन्तर आता है, तो इसे पृष्ठोन्मुख अवरोध का परिणाम माना जायेगा। इस प्रकार दोनों अवस्थाओं के परिणामों के आधार पर पृष्ठोन्मुख अवरोध (RI) का मात्रात्मक निर्धारण कर सकते हैं।

4.4 पृष्ठोन्मुख अवरोध के निर्धारक

पृष्ठोन्मुख अवरोध की मात्रा पर अनेक कारकों का प्रभाव पड़ता है। कुछ कारक इस प्रकार हैं -

1) मूल एवं अन्तर्वेशी अधिगम में समानता (Similarity Between Ol and IL) यदि मूल अधिगम सामग्री एवं अन्तर्वेशी अधिगम में समानता है, तो अवरोध प्रभाव अधिक उत्पन्न होगा। इसके परिणामस्वरूप विस्मरण की मात्रा बढ़ जायेगी। मैक्यू एवं मैक्डोनाल्ड (1931) के अध्ययन से यह निष्कर्ष मिला है कि दोनों कार्यों (OL-IL) में समानता में क्रमशः वृद्धि होने से धारणा में वृद्धि हुई है। इससे यह संकेत मिल रहा है कि समानता से पुनर्स्मरण में सुगमता हो सकती है। इसी आधार पर स्कैग्स-राबिन्सन परिकल्पना प्रस्तावित की गई है। राबिन्सन (1927) के अनुसार, समानता में अत्यधिक वृद्धि कर देने से

धनात्मक अन्तरण (Positive transfer) प्रभाव उत्पन्न होगा जो धारणा में वृद्धि करेगा। समानता शून्य होने पर सुगमता भी शून्य हो जायेगी। मध्यम समानता होने पर प्रत्याह्वान कुशलता न्यूनतम प्राप्त होगी।

2) अधिगम का स्तर (Degree of Learning) यदि मूल अधिगम का अधिक से अधिक अभ्यास किया जाय तो अन्तर्वेशी कार्य का प्रभाव कम बाधा उत्पन्न कर पाता है। इसके विपरीत यदि मूल अधिगम का स्तर स्थिर रखकर अन्तर्वेशी कार्य का स्तर बढ़ा दिया जाय तो पृष्ठोन्मुख प्रभाव अधिक प्राप्त होगा (Meltan and Irvine, 1940; Underwood 1943)।
3) अन्तर्वेशी अधिगम की मात्रा (Quantity of IL) अन्तर्वेशी कार्य की मात्रा जितनी ही अधिक होगी पृष्ठोन्मुख अवरोध भी उतना ही अधिक प्राप्त होगा। एक अध्ययन में ट्विनिंग (1940) ने 8 निरर्थक पदोंकी सूची याद कराने के बाद अन्तर्वेशी कार्य के रूप में 1, 2, 3, 4 या 5 सूचियाँ दीं। परिणाम यह रहा कि सूचियों की संख्या में वृद्धि होने से धारणा फलांक घटता गया।
4) मूल एवं अन्तर्वेशी अधिगम के बीच का समय (Time Between OL and IL) - ऐसे भी निष्कर्ष मिले हैं कि यदि मूल अधिगम के तुरन्त बाद अन्तर्वेशी अधिगम कराया जाता है या धारणा की जाँच से थोड़ा पहले इसे दिया जाता है तो पृष्ठोन्मुख अवरोध अधिकतम प्राप्त होता है। अर्थात् धारणा प्राप्तांक इस बात पर भी निर्भर करता है कि मूल अधिगम के बाद अन्तर्वेशी अधिगम कब कराया जाता है।
5) विश्राम का प्रभाव (Effects of Rest) यदि मूल अधिगम के बाद प्रयोज्य को विश्राम दे दिया जाय तो विस्मरण कम होता है जबकि जागते रहने पर अधिक विस्मरण होता है। जेकिन्सन एवं डालेनवैक (1924) तथा लोवट एवं वार (1968) ने यह निष्कर्ष प्राप्त किया है कि अधिगम के बाद शयन करने से धारणा प्राप्तांक अधिक प्राप्त होते हैं। इसके अनुसार, विश्राम या शयन से स्मृति चिन्हों को संगठित एवं स्थिर होने का अवसर मिल जाता है। इसके परिणामस्वरूप विस्मरण की मात्रा घटती है एवं धारणा की मात्रा बढ़ती है।

4.5 पृष्ठोन्मुख अवरोध के सिद्धान्त

पृष्ठोन्मुख अवरोध प्रभाव क्यों उत्पन्न होता है? इसकी व्याख्या के लिए कुछ सिद्धान्त प्रतिपादित किए गए हैं। प्रस्तुत प्रसंग में उनका उल्लेख किया जायेगा।

अनुक्रिया प्रतिस्पर्धा सिद्धान्त (Two-factor Theory) - पृष्ठोन्मुख अवरोध की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि जब दो कार्य बारी-बारी सीखे जाते हैं तो प्रत्याह्वान के समय दोनों ही कार्यो से सम्बन्धित अनुक्रियाएँ जिह्वा पर आने को प्रयास करती हैं। इसे अनुक्रिया स्पर्धा कहते हैं। इसी कारण अतीत में सीखी गई सामग्री का विस्मरण बढ़ जाता है। (Barnes & Underwood, 1959) क्योंकि अनुक्रियाओं में स्पर्धा के कारण अपेक्षित अनुक्रिया का पुनर्स्मरण नहीं हो पाता है। अतः यदि

स्पर्धा की स्थिति समाप्त हो जाय तो पुनर्स्मरण की मात्रा बढ़ जायेगी, परन्तु यह सिद्धान्त पूर्णतः स्वीकार्य नहीं है, क्योंकि शोधकर्ताओं का मत है कि मात्रा स्वर्धा के ही आधार पर पृष्ठोन्मुख अवरोध की सम्यक् व्याख्या नहीं की जा सकती है।

द्वि-तत्त्व सिद्धान्त (Two-factor Theory)- मेल्टन एवं इरबिन (1940) ने 'स्वातन्त्र परिकल्पना' को अपने अध्ययनों के आधार पर परिमार्जित कर दिया। इनके अनुसार, मात्रा प्रतिस्पर्धा ही विस्मरण का कारण नहीं है। एक अध्ययन में ं प्रयोज्यों को निरर्थक पदों का क्रमिक पूर्वाभास विधि से पाँच प्रयास तक अधिगम कराया। इसके बाद प्रयोज्यों ने या तो विश्राम किया था या उन्हें अन्तर्वेशी अधिगम (IL) का विभिन्न स्तरों तक अधिगम कराया गया। मूल अधिगगम (OL) के 30 मि0 बाद उनसे उसका पुनः अधिगम कराया गया। पृष्ठोन्मुख अवरोध (RI) की गणना विश्राम अवस्था के प्रत्याह्वान फलांकों को घटा कर की गई।

प्रयोग में आया कि अन्तर्वेशी अधिगम (IL) पर अभ्यास शून्य से आगे बढ़ाने पर पृष्ठोन्मुख अवरोध (RI) की सम्पूर्ण मात्रा में तीव्र गति से वृद्धि हुई है। बीसवें प्रयास में पृ0अ0 (RI) की मात्रा अधिकतम हो गई है और उसके बाद उसमें कुछ कमी आई है। ऐसा क्यों? इसकी व्याख्या देने के लिए मेल्टन एवं इरविन ने यह तर्क दिया है कि अन्तर्वेशी अधिगम (IL) पर प्रयासों की संख्या में वृद्धि करने से प्रथम सूची (OL) के प्रत्याह्वान के समय द्वितीय सूची (IL) के पद भी पुनः स्मरित हो जाते हैं। अर्थात्, वे मूल सूची के प्रत्याह्वान के समय हस्तक्षेप (Intrusion) करते है।। इससे मूल सूची के प्रत्याह्वान में और भी कमी आ जाती है। अर्थात्, पृष्ठोन्मुख अवरोध उत्पन्न करने में अनुक्रियाओं की बाह्य प्रतिस्पर्धा (Overt competition) भी उत्तरदायी है। ऐसी त्रुटियाँ प्रारम्भ में अधिक होगी और अन्तर्देशी अधिगम (IL) पर प्रयासों में वृद्धि करते रहने से कम होंगी। प्रयासों में वृद्धि के कारण प्रयोज्य प्रथम (OL) ओर द्वितीय (IL) सूची के पदों में स्पष्टतः विभेदन (Differentiation) सीख लेता है, इसलिए आगे चलकर द्वितीय सूची (IL) के पदों के प्रत्याह्वान (त्रुटियों) की सम्भावना कम हो जाती है। इसे सूची-विभेदीकरण (List-differentition) परिकल्पना कहते हैं (Underwood, 1965)।

मेल्टन एवं इरविन के अनुसार के अनुसार पृष्ठोन्मुख व्यतिकरण (RI) की पू्ूर्ण मात्रा में स्पर्धा के अतिरिक्त एक अन्य कारक से भी उत्पन्न अवरोध मिला होता है। इसे इन लोगों ने कारक-एक्स (Factor-x) का नाम दिया है। इसी के कारण अनुक्रिया प्रतिस्पर्धा की सम्भावना कम होने पर भी अवरोध की मात्रा में वृद्धि पाई जाती है। पृ0अ0 (RI) की सम्पूर्ण मात्रा और बाह्य प्रतिस्पर्धा से उत्पन्न अवरोध में अन्तर के लिए इन लोगों ने कारक-एक्स को उत्तरदायी माना है। अन्तर्वेशी अधिगम (IL) के स्तर में वृद्धि करने से इसके प्रभाव में भी वृद्धि होती रहती है। इनका कहना है कि अन्तर्वेशी अधिगम की अवधि में मूल सामग्री (OL) का अनाधिगम (Unlearning) होता है। इसलिए उसका विस्मरण बढ़ जाता है। इसे ही कारक एक्स कहा जा सकता है। इस प्रकार द्वितीय सूची (IL) के अधिगम के कारण प्रथम सूची (OL) के पदों की पुनः स्मरण के लिए उपलब्धता कम हो जाती है और द्वितीय सूची (IL) से पद प्रत्याह्वान के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं। स्पष्ट है विस्मरण के लिए इन दो कारकों को उत्तरदायी माना गया है। इसीलिए इसे द्विकारक सिद्धान्त कहा जाता है।

स्वतः पुनरावर्तन - कुछ शोधकर्ताओं का मत है कि अन्तर्वेशी अधिगम से उत्पन्न अनाधिगम का प्रभाव समय अन्तराल के साथ कम भी हो सकता है। यह अवधारणा स्वतः पुनरावर्तन (Spontaneous recovery) जैसी है। अनुबन्धन में अनुक्रिया विलोप के बाद विश्राम या अन्तराल देने के बाद अनुक्रिया का पुन प्रदर्शन होता है। उसी प्रकार यदि द्वितीय सामग्री (IL) के अधिगम के बाद विश्रामोपरान्त प्रथम सूची का पुनः स्मरण कराया जाय तो विस्मरण की मात्रा में कमी आ सकती है (Underwood, 1948; Postman, etc, 1968; Ekstrand, 1967)। विभिन्न अध्ययनों में शयन के बाद काफी मात्रा में स्वतः पुनरावर्तन पाया गया।

परिमार्जित मुक्त प्रत्याह्वान - इस प्रसंग में कुछ अन्य शोधकर्ताओं का कहना है कि यदि द्वितीय सूची (IL) के अधिगम की अवधि में विभिन्न प्रयासों के बाद प्रथम सूची के भी पदों का प्रत्याह्वान कराया जाय तो यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उनका किस प्रकार विस्मरण होता जाता है। इसे परिमार्जित मुक्त प्रत्याह्वान (MFR) तकनीक कहा गया है। बार्नेस एवं अण्डरवुड (1959) के अध्ययन से स्पष्ट हुआ है कि द्वितीय सूची पर प्रयास बढ़ाने से उसके पदों की उपलब्धता बढ़ती है और प्रथम सूची (OL) के पदों की उपलब्धता घटती है। द्वितीय सूची पर प्रयास बढ़ाने पर प्रथम सूची के पदों या अनुक्रियाओं के पुनः स्मरण में कमी आती है, क्योंकि अन्तर्वेशी अधिगम (IL) के कारण उनकी अनुक्रिया शक्ति (Response strength) घटती है और उनका प्रत्याह्वान कठिन हो जाता है।

अनुक्रिया-विन्यास व्यतिकरण - कुछ विद्वानों का मत है कि द्वितीय सूची का अधिगम करने से प्रथम सूची के पदों का पुनः स्मरण न करने की प्रवृत्ति बन जाती है। ऐसा चयनकारी यंत्रान्यास (Selector mechnism) द्वारा सम्भव होता है (Newton & Wickens, 1956)। ऐसा ही मत कुछ अन्य शोधकर्ताओं ने भी व्यक्त किया है (Postman, Stark & Fraser,1968) इसे अनुक्रिया-विन्यास व्यक्तिरण (Response set interference)

परिकल्पना कहा गया है। इसे अन्य अध्ययनों से भी समर्थन मिला है। (McGovern, 1964; Postman & Stark, 1969) । वैसे, इसे द्वितत्व सिद्धान्त का विस्तार ही माना जाना चाहिए। (Postman & Underwood,1973)। संक्षेप में यही कहा जाना उचित होगा कि अनुक्रिया विन्यास दमन और अनाधिगम दोनों ही विस्मरण का निर्धारण करते हैं (Anderson & Bower, 1973)

उपर्युक्त विवेचनों से स्पष्ट हो रहा है कि व्यक्तिकरण के लिए जिस भी कारण को उत्तरदायी माना जाय या उसकी व्याख्या चाहे जैसे भी की जाय, यह विस्मरण का एक बहुत ही महत्वपूर्ण कारण है। इस प्रकार इस अवधारणा का खण्डन होता है कि विस्मरण मात्रा समय अन्तराल का परिणाम है।

4.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान चुके हैं कि पृष्ठोन्मुख अवरोध क्या है। हिलगार्ड आदि ने स्पष्ट किया है कि - पृष्ठोन्मुख अवरोध से तात्पर्य बाद में सीखे गये किसी कार्य को पूर्व अधिगम के प्रत्याह्वान में व्यतीकरण (बाधा) है। पृष्ठोन्मुख अवरोध के रूप में अधिगम की समानता, अधिगम का स्तर, अन्तर्वेशीय अधिगम की मात्रा मूल एवं अन्तर्वेशीय अधिगम के बीच का समय एवं विकास जैसे कारक आते हैं। पृष्ठोन्मुख अवरोध प्रभाव क्यों उत्पन्न होता है, इसकी व्याख्या के लिए कुछ सिद्धान्त प्रतिपादित किए गए हैं, जिनमें प्रमुख हैं - अनुक्रिया प्रतिस्पर्धा सिद्धान्त एवं द्वितत्व सिद्धान्त।

4.7 शब्दावली

- **पृष्ठोन्मुख अवरोध:** पृष्ठोन्मुख अवरोध से तात्पर्य बाद में सीखे गए किसी कार्य या पूर्व अधिगम के प्रत्याह्वान में व्यतिकरण (बाधा) है।
- **अन्तर्वेशीय अधिगम:** जिस सामग्री का अधिगम कराना होता है, उसके बाद जो सामग्री बाधा प्रथम के पुनः स्मरण पर पड़ता है। उसे ही अन्तर्वेशीय अधिगम कहते हैं।

4.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1) पृष्ठोन्मुख अवरोध .... का एक प्रमुख कारण है।
2) अन्तर्वेशीय कार्य की मात्रा जितनी ही अधिक होगी .... भी उतना ही अधिक प्राप्त होगा।

उत्तर: (1) विस्मरण (2) पृष्ठोन्मुख अवरोध।

4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- सिंह, अरुण कुमार (2011): संज्ञानात्मक मनोविज्ञान

- श्रीवास्तव, रामजी (सम्पादक) (2003): संज्ञानात्मक मनोविज्ञान
- सिंह, आर.एन. एवं भारद्वाज, एस.एस. (2010): उच्च प्रायोगिक मनोविज्ञान
- Colin Martindale (1981) : Cognition and Consciousness.
- Geryd' YDewalle (1985): Cognition, Information Processing and Motivation.
- Kathleen M. Galotti (1999): Cognitive Psychology in and Out of the Laboratory.
- Margaret Matlin (1982): Cognition.

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पृष्ठोन्मुख अवरोध को स्पष्ट करते हुए इसके प्रमुख निर्धारकों का वर्णन कीजिए।
2. पृष्ठोन्मुख अवरोध की व्याख्या हेतु प्रतिपादित प्रमुख सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।

इकाई-5 चिंतन का स्वरूप एवं प्रकार, चिंतन में मानसिक वृत्ति या तत्परता का महत्व, भाषा एवं चिंतन (Nature and Types of Thinking; Role of Set in thinking, Language and Thinking)

इकाई संरचना

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 चिंतन: अर्थ एवं परिभाषा
5.4 चिंतन का स्वरूप
5.5 चिंतन: प्रकार
5.6 चिंतन में वृत्ति या तत्परता का महत्व
5.7 भाषा एवं चिंतन
5.8 सारांश
5.9 शब्दावली
5.10 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
5.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची
5.12 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों, सामान्यतया चिंतन शब्द से हम सभी परिचित हैं, क्योंकि यह एक ऐसी अव्यक्त मानसिक प्रक्रिया है, जो प्रायः सभी प्राणियों में निरन्तर चलती रहती है।

चिन्तन का हमारे व्यक्तित्व से प्रत्यक्ष संबंध है। हमारा चिन्तन जितना श्रेष्ठ होगा, हमारा व्यक्तित्व भी उतना ही विकसित एवं परिपक्व होगा। यदि हम किसी के व्यक्तित्व से परिचित होना चाहते हैं तो हम यह जान लें कि उस व्यक्ति के विचार कैसे हैं। उसका चिन्तन सकारात्मक है या नकारात्मक। यह अत्यधिक श्रेष्ठ साधन है, किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व से परिचित होने का। हमारे चिन्तन का हमारे स्वास्थ्य में भी अति महत्वपूर्ण स्थान है। स्वास्थ्य की कुंजी सकारात्मक सोच है। हमारे चिन्तन का हमारे स्वास्थ्य पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। हम जैसा सोचते हैं, हमारा शरीर वैसा ही रिएक्ट करता है। नकारात्मक चिन्तन शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को कम कर, इसे अस्वस्थ बना देता है। सकारात्मक रहना आसान है और चिन्तन को सकारात्मक स्वरूप देना उससे भी

ज्यादा आसान है, आवश्यकता सिर्फ सकारात्मक रवैया इख्तियार करने की है। जीवन में जितनी भी कठिनाइयों एवं संघर्ष क्यों न आयें, सकारात्मक रूख अपनाये रखें, यही उत्तम स्वास्थ्य एवं श्रेष्ठ व्यक्तित्व की कुंजी है।

अब आपके मन में यह प्रश्न उत्पन्न हो रहा होगा कि यह चिंतन आखिर है क्या? हम सभी हर पल, हर समय कुछ न कुछ सोचते तो रहते हैं किन्तु इस सोचने की प्रक्रिया से क्या आशय है? यह ठीक-ठीक बताने में हम प्रायः असमर्थ रहते है? प्रस्तुत ईकाई में आप इसी चिंतन प्रक्रिया का अर्थ, इसकी विभिन्न परिभाषाओं का विश्लेषण इसकी विशेषताओं, प्रकार इत्यादि का अध्ययन कर सकेंगे।

वस्तुतः, चिंतन प्रत्यक्ष रूप से दिखाई न देने वाली एक ऐसी मानसिक प्रक्रिया है जो प्रत्येक प्राणी में निरन्तर चलती रहती है। जब प्राणी के सामने कोई समस्या उत्पन्न होती है तो चिंतन की शुरूआत होती है और जब तक समस्या का समाधान नहीं हो जाता तब तक चिंतन की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है।

पाठकों, इस चिंतन के स्वरूप को ठीक ढंग से समझने के लिये आप स्वयं अपने व्यावहारिक जीवन से, अपने व्यक्तिगत जीवन से इस प्रक्रिया को जोड़कर देखें कि किस प्रकार स्वयं हमारी नित्यप्रति की जिन्दगी में यह प्रक्रिया घटित होती है, हम किस प्रकार से इसका उपयोग करते हैं। यदि आप इस पद्धति से अध्ययन करेंगे तो निश्चित ही अपने विषय को भली-भाँति जानने-समझने में सक्षम हो सकते हैं।

5.2 उद्देश्य

विद्यार्थियों प्रस्तुत ईकाई का अध्ययन करने के बाद आप -

- चिंतन के अर्थ को स्पष्ट कर सकेंगे।
- इसकी विभिन्न परिभाषाओं का विश्लेषण कर सकेंगे।
- चिंतन की विभिन्न विशेषताओं का अध्ययन कर सकेंगे।
- चिंतन के विभिन्न प्रकारों का वर्गीकरण कर सकेंगे।
- चिंतन में तत्परता का क्या महत्व है, इसे स्पष्ट कर सकेंगे।
- चिंतन एवं भाषा का एक दूसरे से क्या संबंध है, इसकी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- चिंतन प्रक्रिया को हम किस प्रकार विकसित कर सकते है, इसे स्पष्ट कर सकेंगे।
- व्यावहारिक जीवन में चिंतन के महत्व को स्पष्ट कर सकेंगे।

5.3 चिंतन: अर्थ एवं परिभाषा

मानव के व्यवहार में चिंतन का विशेष महत्व है। चिंतन के कारण ही मनुष्य पशुओं से भिन्न है। आधुनिक युग में दिखाई देने वाली सभी प्रकार की प्रकगति चाहे वह वैज्ञानिक हों ,दार्शनिक हो या तकनीकी साहित्यिक हो या सांसारिक,चिंतन का ही परिणाम है। अपनी चिंतन क्षमता द्वारा ही मनुष्य एक नयी सभ्यता और संस्कृति का

निर्माण कर सका ,जबकि पशु ऐसा न कर सका। चिंतन की सहायता से मनुष्य अनेक प्रकार की समस्याओं का समाधान करता हैं चिंतन का प्रयोग समस्या समाधान में ही नहीं अपितु ओर प्रकार के अधिगम में ही किया जाता हैं। चिंतन में परिर्वतन से व्यक्ति की आदतें और व्यवहार परिवर्तित हो जाते हैं शिक्षित लोगों के वार्तालाप में चिंतन शब्द का उपयोग अनेक प्रकार की अप्रकट मानसिक क्रियाओं का उल्लेख करने के लिए किया जाता हैं। चिंतन शब्द के स्थान पर क्रिया सूचक शब्द सोचने का उपयोग सभी वर्ग कें लोग बहुतायत में करते हैं, जब कोई कवि कविता लिखता है या कोई कलाकार कलाकृतियों का निर्माण करता है,तब वह अपनी कल्पना के माध्यम से अनेक प्रकार के विम्बों को उभारने का प्रयत्न करता हैं उससे प्रश्न करने पर उसका उत्तर होता है कि वह सोंच रहा हैं वह शायद ही कभी कहता है कि वह कल्पना कर रहा हैं एक बेरोजगार युवक बैठा है , आँखें बन्द हैं किन्तु चेहरे से स्पष्ट लगता है कि वह अपने विचारों में खोया हुआ है। वह कल्पना करता है कि उसे एक बहुत अच्छी नौकरी मिल गई है, उसके पास एक बहुत अच्छा मकान है गुणवान तथा सुशील पत्नी व बच्चे हैं , उसके पास सुख सुविधाओं के सभी साधन उपलब्ध है। पूछने पर वह बताता है कि वह कुछ सोच रहा हैं, वह यह नहीं रहता, कि वह दिवास्वप्न देख रहा है। एक नववधू अभी -2 शादी होकर ससुराल आई है। उसे अपने घर परिवार की याद सता रही हैं पूछने पर वह भी यही रहती है कि वह अपने घर ,परिवार के बारे में सोच रही है। जब मनुष्य को किसी समस्या का समाधान खोजना होता है तब वह चिंतन प्रक्रिया का ही आश्रय लेता है। वह चिंतन प्रक्रिया द्वारा वातावरण ,उसकी वस्तुओं और वस्तुओं के पारस्परिक संबंधों को जानने का प्रयास करता हैं। अतः कहा जा सकता है कि चिंतन एक महत्वपूर्ण मानसिक प्रकिया है, जो समस्या समाधान की ओर उन्मुख होती है। चिंतन के दो पक्ष होते हैं प्रथम व्यवहारिक तथा द्वितीय सैंद्धान्तिक। इस संबंध में कुछ भी कहने से पूर्व इसकी विभिन्न परिभाषाओं को जानना एवं उनका विश्लेषण करना आवश्यक है।

परिभाषा -

इंगलिश और इंगलिश (1980) के अनुसार:- चिंतन के चार मुख्य अर्थ है-

a) कोई भी प्रक्रिया या कार्य जो मुख्यतः प्रत्यक्षात्मक नहीं, चिंतन हो सकता है।
b) दूसरे अर्थ में समस्या का समाधान ही चिंतन है। जिसमें प्रकट प्रहस्तन औ प्रत्यक्षीकरण न होकर मुख्यतः विचार होते हैं।
c) तीसरे अर्थ में चिंतन का अर्थ किसी समस्या में निहित संबंधों को समझना अथवा उस पर विचार करना है।
d) चिंतन का अर्थ आन्तरिक और मुख वाणी व्यवहार से मिलाया जाता है।

एटंकिंसन ,एटकिंसन एवं हिलगार्ड (1998) के अनुसार:- ''चिंतन एक ज्ञानात्मक प्रक्रिया है, जिसमें घटनाओं तथा वस्तुओं के प्रतिनिधियों के रूप में प्रतीकों की विशेषता होती हैं। ''

बेरोन(1992) के अनुसारः-‘‘चिंतन में सम्प्रत्ययों ,प्रतिज्ञाप्ति तथा प्रतिमाओं का मानसिक जोड़ तोड़ होता हैं।’’

गैरेट (1961) के अनुसारः-‘‘चिंतन एक ऐसा आन्तरिक व्यवहार हैं, जिसमें वस्तुओं विचारों के लिए प्रतीक प्रयुक्त होते हैं।‘‘

सैनट्रोक (1995) के अनुसारः-‘‘चिंतन में मानसिक रूप से सूचनाओं का जोड़-तोड़ सम्मिलित होता हैं विशेष कर जब हम सम्प्रत्यय का निर्मण करते हैं, समस्याओं का समाधान करते हैं,तर्क करते हैं तथा निर्णय लेते है।‘‘

रेबर तथा रेबर (2001)के अनुसारः- सामान्यतः चिंतन का अर्थ है विचारों ,प्रतिमाओं, प्रतीकों, षब्दों, कथनों ,स्मृतियों, प्रत्ययों अवबोधनों, विष्वासों तथा अभिप्रायों का अन्तःज्ञानात्मक तथा मानसिक परिचालन।‘‘

कागन तथा हैवमैन (1976) के अनुसारः- ‘‘प्रतिमाओं,प्रतीकों, सम्प्रत्ययों, नियमों तथा अन्य मध्यस्थ इकाइयों के मानसिक जोड़ तोड़ को चिंतन कहा ताता है। ‘‘

वारेन के अनुसारः- ‘‘चिंतन एक विचारात्मक क्रिया है, जिसका स्वरूप प्रतीकात्मक है, इसका प्रारम्भ व्यक्ति के समक्ष उपस्थित किसी समस्या या कार्य से होता है, इसमें कुछ मात्रा में प्रयत्न सन्निहित होता है। किन्तु यह चिंतन इस समस्या के प्रत्यक्ष प्रभाव में होता है और यह अन्तिम रूप से समस्या सुलझाने और उसके निष्कर्ष की ओर ले जाता है। ‘‘

आइजेन्क तथा उनके साथियों (1972) के अनुसारः- ‘‘काल्पनिक परिभाषा के रूप में चिंतन का काल्पनिक जगत में व्यवस्था स्थापित करना है । यह व्यवस्था स्थापित करना वस्तुओं से संबंधित होता है तथा साथ ही साथ वस्तुओं के जगत की प्रतीकात्मकता से भी संबंधित होता है।वस्तुओं में संबंधों की व्यवस्था तथ वस्तुओं में प्रतीकात्मक संबंधों की व्यवस्था का नाम चिंतन है। ‘‘

कोलिन्स एवं ड्रेवर के अनुसारः-चिंतन परिस्थिति के प्रति चेतन समायोजन है।

जॉन डीवे के अनुसारः- ‘‘चिंतन किसी विश्वास या अनुमानित प्रकार के ज्ञान का , उसके आधारों तथा निष्कर्ष के प्रकाश में सक्रिय, निन्तर, एवं सावधानी पूर्वक विचार करना है।‘‘

वुडवर्थ का मत है ‘‘ चिंतन करना एक कठिनाई को दूर करना है। ‘‘

डैशियल (1949)के अनुसारः- उच्च स्तरीय समस्या समाधान की आन्तरिक कहानी ही चिंतन है। ‘‘

जॉर्सविक (1970) के अनुसारः- ‘‘ चिंतन की कार्यात्मक परिभाषा यह है कि इसके द्वारा अनुभव की गई सांसारिक घटनाओं अथवा उनके प्रतिनिधियों के बीच व्यवस्था स्थापित की जाती है। ‘‘

चिंतन के संबंध में **हम्फ्रे (1963)** ने निम्न विचार व्यक्त किये हैं-

i) जब प्राणी किसी समस्या का समाधान करता है तो इस क्रिया में वह पूर्वा अनुभव का प्रयोग करता है।

ii) समस्या प्राणी को उसके उद्देश्य तक पहुँचने में बाधा उत्पन्न करती है, अतः चिंतन की आवश्यकता पड़ती है।

iii) समस्या समाधान की परिस्थिति में चिंतन क्रियाशील होता हैं।

iv) सभी विचारपूर्ण क्रियाओं में प्रयास और भूत का स्वरूप देखा जाता है, चाहे वे क्रिया में आन्तरिक हो अथवा बाह्य ।

v) चिंतन मे प्रेरणा पाई जाती है । इसका अर्थ यह है कि चिंतन उद्देश्य पूर्ण होता है।

vi) चिंतन प्रक्रिया से भाषा को अलग नहीं किया जा सकता। भाषा मानव चिंतन में अति आवश्यक है।

vii)समस्या के समाधान में जब चिंतन क्रिया प्रारम्भ होती है तो उसमें प्रतिमाएँ, पेषीय, क्रियाएँ तथा आन्तरिक सम्भाषण आदि पाये जाते हैं।

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि चिंतन का संबंध उपस्थित वस्तुतओं से कम और उनके प्रतिनिधियों और प्रतीको से अधिक है। प्रतीक हमारे मानसिक जगत में पूर्व अनुभवों के प्रति निधि के रूप में कार्य करते हैं। किसी वस्तु की अनुपस्थिति में जब कोई मानसिक क्रिया उस वस्तु का प्रतिनिधित्व करती है तो उसे मध्यस्थ इकाई कहते हैं । चिंतन में भौतिक वस्तुओं की उपस्थिति वर्जित नहीं है परन्तु चिंतन क्रिया अनुपस्थ्ति वस्तुओं के अनुपस्थित के प्रतीकों को भी अपने अन्दर अनिवार्य रूप से समेट लेती है । चूँकि चिंतन में वस्तुओं एवं विषयों की भौमिक उपस्थिति आवश्यक नहीं है इसलिए इसमें सम्पूर्ण जीवन मे सीखी गयी मध्यस्थ इकाईयों के प्रवेश करने की पूरी गुंजाइश रहती है।किसी उददीपन अथवा समस्या ने मस्तिष्क में कुछ सूचना भेजी जाती है। उस सूचना के प्रति उपयुक्त क्रिया होने से पहले सूचना संसाधन क्रिया होती है । उस सूचना संसाधन का कार्यस्थ प्रधानतः मस्तिष्क होता है। यद्यपि सम्पूर्ण शरीर से सोचन का भी दसवाँ किया गया है। विचार, विम्ब, प्रत्यय आदि को मानसिक स्तर पर नये - नये ढंग से मिलान एवं संगठित करने की क्रिया होती है। आरम्भ में अनेक संगठनों को रद्द किया जाता है और अन्त के किसी संगठन को समस्या के उपयुक्त माना जाता है । इससे स्पष्ट है कि चिंतन में मानसिक स्तर पर प्रयत्न एवं भूल या त्रुटि होती हैं, जो समस्या का समाधान प्राप्त होते तक चलती रहती हैं । ये प्रयत्न एवं भूल अनियमित ढंग से नहीं बल्कि समस्या से उत्पन्न एक विशेष प्रकार की तत्परता द्वारा संचालित होते है। किसी समस्या का समाधान कब प्राप्त होगा अथवा समस्या पर चिंतन कब समाप्त होगा,? इसे निश्चित नहीं किया जा सकता। किसी -किसी समस्या पर चिंतन क्रिया जीवन भर चलती रहती है।

चिंतन मे भूत ,वर्तमान और भविष्य तीनों से व्यक्ति का संबंध रहता है। भूतकाल से चिंतन की सामग्रियाँ मिलती हैं , वर्तमान चिंतन को समस्या देता है और भविष्य चिंतन के फल दर्शाता है। कल्पना की कोई दिशा नहीं होती है और न इसकी कोई अन्तिम सीमा होती है,जबकि चिंतन की एक निश्चित दिशा होती है, और समस्या

समाधान होते ही यह चिंतन क्रिया समाप्त हो जाती है। इसी आधार पर विद्वानों ने निर्दिष्ट चिंतन तथा अनिर्दिष्ट चिंतन मे भेद किया है। निर्दिष्ट चिंतन किसी समस्या से उत्पन्न होता है और साहचर्यों के आधार पर एक लक्ष्य तक पहुँचता है। इसके विपरीत अनिर्दिष्ट चिंतन स्वतः उत्पन्न होता है और इसका कोई लक्ष्य नहीं होता है।

5.4 चिंतन का स्वरूप

पाठकों, चिंतन की विभिन्न परिभाषाओं का विश्लेषण करने के उपरान्त चिन्तन के स्वरूप के संबंध में निम्नलिखित तथ्य उजागर होते हैं-

1) जब प्राणी के सामने कोई ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होती है, जिसका समाधान तो वह करना चाहता है, किन्तु उसे समाधान का उपाय या रास्ता दिखाई नहीं देता है तो वह सोचना शुरू करता है अर्थात- उसमें चिंतन की प्रक्रिया प्रारंभ होती हैं अतः स्पष्ट है कि चिंतन एक समस्या समाधान व्यवहार है।
2) चिंतन एक अव्यक्त मानसिक प्रक्रिया है अर्थात- इसे स्थूल वस्तुओं की भाँति प्रत्यक्ष रूप से आँखों से नहीं देखा जा सकता वरन्-प्राणी के व्यवहार के आधार पर यह पता लगता है कि वह क्या सोच रहा है? उसके चिंतन का स्तर क्या है?
3) चिंतन प्रक्रिया का संबंध भूत, वर्तमान एवं भविष्य तीनों से होता है।
4) चिंतन का प्रमुख उद्देश्य किसी समस्या का समाधान करना होता है। अतः इसमें प्रयत्न एवं श्रुति की प्रक्रिया शामिल होती है।
5) चिंतन की एक निश्चित दिशा होती है क्योंकि यह लक्ष्य निर्देशित होता है।
6) चिंतन में भाषा तथा प्रतीकों का भी उपयोग होता है। विद्यार्थियों आपने अक्सर अनुभव किया होगा कि सोचते-सोचते कभी-कभी हम अपने मन में कुछ-कुछ बोलने भी लगते हैं अर्थात् भाषा का प्रयोग करते हैं। इसी प्रकार दिखायी एवं सुनायी देने वाली प्रतिभाओं का उपयोग भी हम सोचने में करते हैं।

प्रिय पाठकों, चिंतन की उपर्युक्त विशेषताओं को जानने के बाद आशा है कि आप इसके अर्थ एवं स्वरूप को भलीभाँति समझ गये होंगे।

अब अगले परिच्छेद में चिंतन किस-किस प्रकार से किया जाता है? इसके विभिन्न प्रकार कौन-कौन से है इस पर चर्चा कि जायेगी, जिससे कि आप विषय को ठीक ढंग से आत्मसात कर सकें।

5.5 चिंतन: प्रकार

अतः प्रिय विद्यार्थियों, आप जान गये होंगे कि भिन्न-भिन्न विद्वानों ने चिन्तन के भिन्न प्रकार बतलाये है। वस्तुतः समस्या के स्वरूप पर भी बहुत कुछ हद तक यह निर्भर करता है कि चिंतन किस प्रकार का है।
मनोवैज्ञानिकों ने चिंतन को कई भागों में बाँटकर अध्ययन किया है।

जिम्बार्डो तथा रूक (1977) ने चिंतन को निम्नांकित दो भागों में बाँटा हैं-

1) स्वली चिंतन (ऑटिस्टिक थिंकिंग)
2) यथार्थवादी चिंतन (रियलिस्टिक थिंकिंग)

1) **स्वली चिंतन (ऑटिस्टिक थिंकिंग):-** स्वली चिंतन का तात्पर्य ऐसे चिंतन से होता है जिका संबंध कल्पनाओं से होता है। स्वली चिंतन मं व्यक्ति की इच्छाएँ तथा विचार ही कल्पनाओं के रूप मं अभिव्यक्ति होते हैं। विभिन्न प्रकार के स्वप्न तथा इन स्वप्नों में दिखने वाले दृश्य साथ ही व्यक्ति की अभिलाषाएँ स्वली चिंतन के उदाहरण हैं मेडिकल प्रवेश परीक्षा की तैयारी कर रहा कोई छात्र यदि यह कल्पना करता है कि मेडिकल प्रवेश परीक्षा पास करने के पश्चात वह किसी प्रसिद्ध मेडिकल कॉलेज में एड्मिशन लेगा तथा पढ़ाई पूरी करने के पश्चात वह एक बहुत बड़ा हॉस्पिटल खोलेगा, बहुत से लोगों की सफलता पूर्वक चिकित्सा करने पर उसका देश विदेश में नाम होगा तथ वह खूब सारा पैसा कमायेगा तो यह स्वली चिंतन का उदाहरण होगा। इस तरह के चिंतन का कोई वास्तविक आधार नहीं होता है साथ ही इसका संबंध किसी भी प्रकार की समस्या के समाधान से नहीं होता है।

स्वली चिंतन का कोई वास्तविक आधार न होने के कारण कई बार व्यक्ति अपने उददेश्य से भटककर भी चिंतन करना प्रारम्भ कर दकता है जिससे उसके समय व ऊर्जा दोनों की बर्बादी होती है। जिस समय का सदुपयोग वह अपने उददेश्य की पूर्ति हेतु प्रयत्न करने में कर सकता या उस समय को वह यूँही व्यर्थ कल्पनाओं में बिता देता है।

2) **यथार्थवादी चिंतन (रियलिस्टिक थिंकिंग):-** यथार्थवादी चिंतन का तात्पर्य ऐसे चिंतन से होता है, जिसका संबंध व्यक्ति के वास्तविक जीवन से होता है। यथार्थवादी चिंतन व्यक्ति की समस्याओं का समाधान करने में मदत करता है । उदाहरणार्थ - यदि कोई व्यक्ति बस में बैठकर मात्रा कर रहा है और अचानक बस रूक जाती है तब वह विभिन्न प्रकार से सोचना प्रारम्भ कर देता है कि कहीं ड्राइवर ने कोई एक्सीडेंट तो नहीं कर दिया है ,कहीं बस का डीजल तो नहीं खत्म हो गया है , कहीं बस के इंजन मे कोई खराबी तो नहीं आ गयी है, कहीं पहिये का टायर तो नहीं फट गया है , आदि आदि । इस प्रकार व्यक्ति समस्या उत्पन्न करने मे संभावित विभिन्न कारणों पर चिंतन करने के पश्चात मुख्य कारण तक पहुँचता है तथा निश्चित करता है कि बस इस कारण से ही बन्द हुई है ,फिर वह प्रस्तुत समस्या के समाधान का प्रयास करता है । इस प्रकार का चिंतन यथार्थवादी चिंतन का उदाहरण है।

यथार्थवादी चिंतन प्रक्रिया के अन्तर्गत कई बातें आती है-

i) नयी समस्या की खोज करके उसको पहचानना ।
ii) समस्या के संकेतों का अर्थ समझना ।

iii) अतीत के अनुभवों का स्मरण करना।

iv) अतीत के अनुभवों का लाभ उठाकर ,उनके आधार पर कल्पना करना।

v) परिकल्पना के आधार पर नियम खोजना तथा नियमों के आधार पर सही निष्कर्ष तक पहुँचना है।

मनोवैज्ञानिकों ने यथार्थवादी चिंतन को निम्न लिखित भागों में विभाजित किया है-

1) **अभिसारी चिंतन (कॉनवर्जेंट थिंकिंग):-** इस तरह के चिंतन को निगमनात्मक चिंतन (डेडक्टिव थिंकिंग) भी कहा जाता है। अभिसारी चिंतन का प्रतिपादन सर्वप्रथम जाय पॉल गिल्फोर्ड ने किया। अभिसारी चिंतन चिंतन का एक ऐसा प्रकार है ,जिसमें व्यक्ति बहुत सारी जानकारियों तथा तथ्यों का विश्लेषण करके किसी एक उत्तर को खोजता है। अर्थात् किसी एक निष्कर्ष पर पहुँचता है। विद्यालयों में विद्यार्थियों द्वारा किया जाने वाला चिंतन, जिसके आधार पर वे विभिन्न पुस्तकों को पढ़कर जानकारियाँ एकत्र करते फिर अपने लिए उपयोगी जानकारी तक पहुँच जाते हैं तथा अध्यापकों द्वारा पूछे गये प्रश्नों का समाधान करते हैं। अभिसारी चिंतनमें गति परिशुद्धता तथ तर्कणा का विशेष महत्व है। अभिसारी चिंतन का प्राथमिक उददेश्य कम से कम समय में सर्वश्रेष्ठ तार्किक उत्तर तक पहुँचना होता है। एक अभिसारी चिंतक प्रायः ऐसी जानकारियों के एकत्रीकरण का प्रयास करता है अर्थात ऐसे ज्ञान को प्राप्त करता है जिसका उपयोग वह भविष्य में आने वाले समस्याओं के समाधान में करता है। अभिसारी चिंतन में हम सामान्य से विशिष्ट की ओर जाते हैं अर्थात इसमें ज्ञात सामान्य नियमों के अनुसार किसी विशिष्ट बात या घटनाक्रम का हम विश्लेषण करते हैं। जब किसी प्रदत्त नियम के आधार पर हम विशिष्ट निष्कर्ष पर पहुँचते हैं तब हमारा चिंतन अभिसारी चिंतन के प्रकार का होता है। अभिसारी चिंतन का केन्द्र बिन्दु किसी समस्या का समाधान करना होता है, इसके लिए हम विभिन्न साक्ष्य व तथ्य एकत्र करते हैं, उनका विष्लेशण करते हैं। और समस्या का समाधन करते हैं। इस तरह के चिंतन में व्यक्ति अपनी जिन्दगी के भिन्न -भिन्न क्षेत्रों में प्राप्त अनुभवों को एक साथ मिलाकर उसके आधार पर एक समाधान खोजता है। ऐसे चिंतन द्वारा जिस समस्या का समाधान होता है , उसका एक निश्चित उत्तर होता है।

उदाहरण:- बहुविकल्पी प्रश्न में अभिसारी चिंतन का प्रयोग करना होता है जिसमें दिये गये। 4 या 5 उत्तरों का विष्लेशण कर सही उत्तर तक पहुँचते हैं। इसी प्रकार यदि हमसे पूछा जाय कि 10 का गुणा 15 से करने पर क्या उत्तर आयेगा , तो इसके उत्तर देने मे निहित चिंतन अभिसारी चिंतन का उदाहरण होगा।

2) **अपसारी चिंतन (डाइवर्जेन्ट थिंकिंग):-** अपसारी चिंतन का प्रतिपादन सर्वप्रथम जाँय पॉल गिलफोर्ड ने किया।अपसारी चिंतन में किसी भी समस्या का समाधान करने हेतु विभिन्न जानकारियाँ, साक्ष्य व तथ्य एकत्र किये जाते हैं फिर इन जानकारियों ,साक्ष्यों व तथ्यों के आधार पर अलग-अलग तरीकों से समस्या समाधान किया जाता जाता है। अपसारी चिंतन सामान्यतः स्वतंत्र व स्वैच्छि होता है। जिसमें हमारा मस्तिष्क

अव्यवस्थित रूप से समस्या समाधान के उपाय खोजता है। और विभिन्न तरीकों से समस्या समाधान करता है। अपसारी चिंतन का प्रयोग सामान्यातः ओपन इन्डेड प्रश्नों के समाधान में किया जाता है। जिसमें उत्तरदाता अपने अनुसार कोई भी उत्तर देने के लिए स्वतंत्र होता है उत्तर देते समय वह विभिन्न उदाहरणों के माध्यम से अपनी बात स्पष्ट करता है।

अपसारी चिंतन में प्रयुक्त तकनीकें-

(क)ब्रेनस्टाँर्मिंगः- ब्रेनस्टाँर्मिंग का तात्पर्य ऐसी तकनीकी से है जिसमें अल्प अवधि में अनेक विकल्पों पर विचार करते हुए किसी समस्या का समाधान किया जाता हैं या कोई निर्णय लिया जाता है। ब्रेनस्टाँर्मिंग में मुख्य तत्व पिगिबैकिंक है जिसमें एक विचार दूसरे विचार के लिए अभिप्रेरक का कार्य करता है। इसमें बहुत सारे विचारों कों एकत्र करने के पश्चात् हर विचार का विश्लेषण करके उत्तर प्राप्ति का प्रयास किया जाता है।

(ख)शोध पत्रिकाओं का प्रयोग:- शोध पत्रिकाओएँ अपसारी चिंतन में महत्वपूर्ण स्त्रोत साबित हुई है। इन शोध पत्रिकाओं में किसी विशिष्ट विषय पर अलग -2 लोगों द्वारा प्रस्तुत शोध निष्कर्ष होते है। जिनका प्रयोग चिंतन को एक दिशा प्रदान करता है।

(ग) स्वतंत्र लेखन:- स्वतंत्र लेखन व्यक्ति किसी विषय में बिना रूके लिखना प्रारम्भ कर देता है, उसके दिमाग मे जो कुछ भी विष्खय संबंधित आता है, वह लिखता जाता है। इससे अल्प समय में ही बहुत से विचार एकत्र हो जाते हैं , जिनका विशिष्ट क्रम में बाद भी संगठन कर लिया जाता है।

(घ) मानसिक प्रतिमा का निर्माणः- इसमें ब्रेनस्टाँर्मिंग से उत्पन्न विभिन्न विचारों की एक मानसिक प्रतिमा तैयार कर ली जाती है जिसका उपयेग अन्य विचारों की उत्पत्ति में सहायक के रूप में किया जाता है।

इस प्रकार अपसारी चिंतन में अलग -2 तकनीकों का प्रयोग करके समकस्या समाधान का प्रयास किया जाता है। साधारण शब्दों में अपसारी चिंतन को एक समस्या तथा उसके विभिनन हल (उत्तर) से समझ सकते हैं।

3) **रचनात्मक चिंतन (क्रियेटिव थिंकिंग):-** रचानात्मक चिंतन ,चिंतन की एक सकारात्मक प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति दिये गये तथ्यों में कुछ नये तथ्य जोड़कर एक निष्कर्ष तक पहुँचता है। विज्ञान ,साहित्य और कला का विकास रचनात्मक चिंतन का ही परिणम है। हिन्दी के शब्द जानने वाले तो करोड़ों हैं परन्तु इन्हीं शब्दों के अनुपम प्रयोग से कुछ लोग बड़े कवि तथा कलाकार बन जाते हैं । पेड़ से पके फल टूटकर जमीन पर गिरते तो बहुतों ने देखा था परन्तु न्यूटन ने इसी साधारण सी घटना से गुरूत्वाकर्षण का नियम निकाला । हाँडी में उबलते पानी और वाष्प को देखकर जेम्स वाँट ने रेल के इदंजन का अविष्कार कर दिया । ये सब रचनात्मक चिंतन के ही परिणाम हैं । किसी भी व्यक्ति का रचनात्मक चिंतन उसके लिए एक आश्चर्यजनक घटाना हो सकती है। पेड़ से जमीन पर गिरते फल तथा उबलते हुए पानी की भाप से ढक्कन हिलते बहुतों ने

देखा परन्तु गुरूत्वाकर्षण का नियम न्यूटन ने ही तथा भाप के इंजन का अविष्कार जेम्स वॉट ने ही किया। रचनात्मक चिंतन करने वाले व्यक्ति की कल्पनाओं में इतनी नवीनता तथा सहजता होती है कि वह विभिन्न वस्तुओं क असाधारण उपयोग बता सकता है।

मनोवैज्ञानिकों ने रचनात्मक चिंतन को भिन्न-2 शब्दों में परिभाषित किया है-

राँस के अनुसार:- रचनात्मक चिंतन ज्ञानात्मक पक्ष की मानसिक क्रिया है।

वेलेन्टाइन के शब्दों में:- रचनात्मक चिंतन शब्द का प्रयोग उस क्रिया के लिए किया जाता है, जिसमें श्रृंखलाबद्ध विचार किसी लक्ष्य अथवा उददेश्य की ओर प्रवाहित होते है।

समाधान की नवीनता और सहजता रचनात्मक चिंतन के मुख्य गुण हैं। अनेक विद्वानों ने सर्जनात्मक अथवा रचनात्मक चिंतन और रचनात्मक समस्या समाधान को एक ही माना है।

ड्रेवडाल (1956) ने रचनात्मक चिंतन की सबसे उचित तथा विस्तृत परिभाषा दी है- सर्जनात्मक चिंतन अथवा सर्जनात्मकता व्यक्ति की उस क्षमता को कहा जाता है। जिससे कुछ ऐसी नयी चीजों ,रचनाओं या विचारों को पैदा करता है ,जो नया होता है एवं जो पहले से उसे ज्ञात नहीं होता है। यह एक काल्पनिक क्रिया या चिंतन संश्लेषण हो सकता है। इसमें गत अनुभूतियों से उत्पन्न सूचनाओं का एक नया पैटर्न और सम्मिश्रण सम्मिलित हो जाता है। ना कि निराधार स्वप्न चित्र होता है। यह वैज्ञानिक ,कलाकार या साहित्यिक रचना के रूप में हो सकता है।

बेरोन (2001) ने रचनात्मक चिंतन की एक सटीक परिभाषा दी है जो इस प्रकार है- ''मनोवैज्ञानिकों द्वारा सर्जनात्मकता को ऐसी कार्य करने की क्षमता के रूप में परिभाषित किया जाता है। जो नवीन (मौलिक ,अप्रत्याशित) तथा उचित (लाभदायक या कार्य अवरूद्धता को दूर करने लायक) दोनों ही होते है।

उपरोक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से रचनात्मक चिंतन की विशेषताओं का पता चलता है जो इस प्रकार है-

रचनात्मक चिंतन की विशेषताएँ -

1) रचनात्मक चिंतन एक जटिल मानसिक प्रक्रिया है, जिसमें अनेक सरल मानसिक प्रक्रियाएँ निहित होती है।
2) रचनात्मक चिंतन लक्ष्य निर्देषित होता है। इसमें व्यक्ति को अपने लक्ष्य का स्पष्ट ज्ञान होता है। तथा उसका प्रत्येक व्यवहार इसी लक्ष्य प्राप्ति हेतु होता है।
3) रचनात्मक चिंतन में व्यक्ति कुछ नई तथा भिन्न चीजों की रचना करता है। जो अपने आप में अनूठी होती है। इस तरह की रचना षाब्दिक, अषाब्दिक, मूर्त तथा अमूर्त कुछ भी हो सकती है। जो व्यक्ति के लिए लाभदायक होती है।

4) रचनात्मक चिंतन में व्यक्ति समस्या समाधान के अनेक उपायों पर विचार करता है और अन्त में किसी एक उपाय का प्रयोग करके समस्या का समुचित समाधान करता है।
5) रचनात्मक चिंतन की दिषा सूक्ष्म की ओर होती है।
6) रचनात्मक चिंतन में संकेतों, सम्प्रत्ययों एवं भाषा का विशेष योगदान रहता है।
7) सर्जनात्मक चिंतन पर व्यक्ति के पूर्व अनुभवों का स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। ये पूर्व अनुभव जितने ज्यादा होंगे ,रचनात्मक चिंतन करने की क्षमता उतनी ही अधिक होगी।
8) रचनात्मक चिंतन उद्देश्य पूर्ण होता है तथा यह व्यक्ति को क्रियाषील बनाता है।
9) रचनात्मक चिंतन में स्वली चिंतन नियंत्रित ढंग से मौजूद होता है। दूसरे शब्दों मे रचनात्मक ढंग से सोचते समय व्यक्ति कुछ अर्थ पूर्ण कल्पनाएँ करता है। इसी अर्थ पूर्ण कल्पना का ही परिणाम है कि व्यक्ति कुछ वैज्ञानिक कलात्मक तथा साहित्यिक रचना कर पाता है।
10) रचनात्मक चिंतन मे अपसारी चिंतन मौजूद होता है जिसमें व्यक्ति समस्या के भिन्न -भिन्न दिषाओं मे सोचता है।
11) रचनात्मक चिंतन में अभिसारी चिंतन भी मौजूद होता है, जिसमें व्यक्ति कुछ इस तरह से जानकारियों को एकत्र करता है, जिससे समस्या समाधान में मदद मिलती है।
12) रचनात्मक चिंतन मानव का एक विषिष्ट गुण है, जो उसे प्राणी जगत में सर्वोच्च स्थान प्रदान करता है।
13) रचनात्मक चिंतन में व्यक्तिगत भिन्नता पाई जाती है, भिन्न - भिन्न व्यक्तियों की रचनात्मक चिंतन प्रक्रिया उनके उद्देश्यों, परिस्थियों अथवा समस्याओं के अनुरूप भिन्न -भिन्न होती है।
14) रचनात्मक चिंतन वातावरण के साथ व्यक्ति की अन्तःक्रिया का एक पक्ष है।
15) रचनात्मक चिंतन चिंतन का एक विशेष तरीका है। यह बुद्धि से एक अलग सम्प्रत्यय है क्योंकि बुद्धि में रचनात्मक चिंतन के अलावा भी अन्य मानसिक क्षमताएँ सम्मिलित होती है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि रचनात्मक चिंतन एक जटिल संज्ञानात्मक प्रक्रिया है। इस तरह का चिंतन करने की क्षमता सभी व्यक्तियों में अधिक ही हो यह आवश्यक नहीं हैं।

गिलफोर्ड (1967) ने चिंतन को दो भागों में विभाजित किया है।

(1) अभिसारी चिंतन

(2) अपसारी चिंतन

इन दोनों चिंतन प्रकारों की व्याख्या पूर्व में की जा चुकी है। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने अपसारी चिंतन को रचनात्मक चिंतन के समतुल्य माना हैं।

बुचर (1968) के अनुसारः- जिन लोगों में अपसारी चिंतन करने की क्षमता अधिक होती है ,उसे लोग सर्जनात्मक चिंतन कहते हैं।

<u>रचनात्मक चिंतन की अवस्थाएँ</u>:-

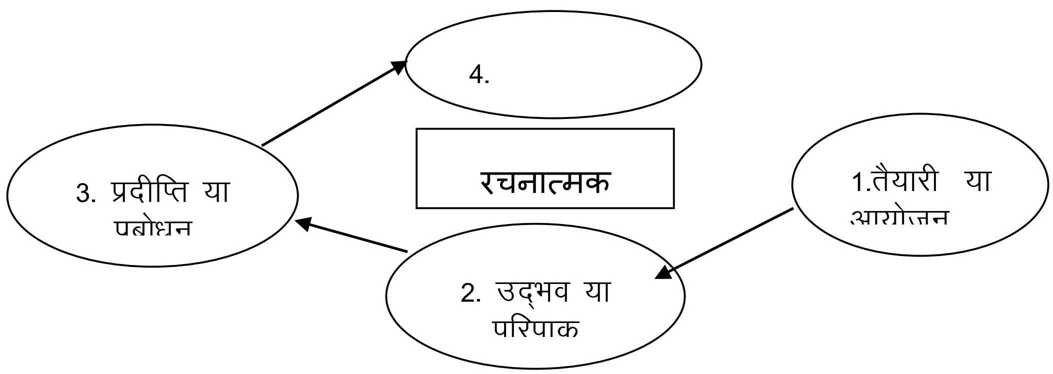

रचनात्मक चिंतन में विचारों का आगमन अथवा समस्या समाधान पायः बड़े सहज ढंग से अचानक होता है। कभी ऐसा भी होता है कि समस्या आते ही कुछ नये ढंग का समाधान अचानक सूझ गया। अधिकांश समस्या और उसके सर्जनात्मक समाधान के बीच कुछ समय बीतता है । हेल्महोल्डा (1896) ने सर्वप्रथम रचनात्मक चिंतन की अवस्थाओं पर कार्य किया । एक समस्या के हल करने की प्रक्रिया में उन्हें जब कुछ कठिनाई हुई तो उस समस्या पर विचार करना , कुछ समय के लिए उन्होंने स्थगित कर दिया । परन्तु थोड़ा आराम कर लेने के बाद समकस्या का समाधान उन्हें स्वयं मिल गया। जब वे आराम कर रहे थे तब उनका अवचेतन मन उस समस्या के प्रति सक्रिय रहा।

वैलेन्स (1926) के अनुसार - चाहे व्यक्ति सामान्य विधि द्वारा किसी समस्या का समाधान कर रहा हो या रचनात्मक चिंतन कर रहा हो, चिंतन की सम्पूर्ण क्रिया चार मुख्य अवस्थाओं मं बाँटी जा सकती है। ये अवस्थाएँ है-

1) तैयारी या आयोजन (प्रिपरेशन)
2) उद्भव या परिपाक (इनकुबेशन)
3) प्रदीप्ति या प्रबोधन (इल्युमिनेशन)
4) प्रमाणीकरण (वैरीफिकेशन)

1) **तैयारी या आयोजन (Preparation):-** तैयारी या आयोजन रचनात्मक चिंतन का आरम्भिक चरण या पद है । इस पद पर चिंतक विभिन्न घटनाओं को संगठित करता है अर्थात् समस्या से संबंधित आवश्यक तथ्यों एवं प्रमाणों को एकत्रित करता है। समस्या को ठीक ढंग से परिभाषित करके उसके पक्ष तथा विपक्ष में

प्रमाण एकत्रित किये जाते हैं। ऐसा करने में प्रयत्न तथा त्रुटि का सहारा लिया जाता है। उदाहरणार्थ -न्यूटन ने देखा कि पेड़ से फल जमीन पर ही गिरता है अथवा किसी ऊँचे स्थान से जब कोई वस्तु गिरती है तो वह जमीन की ओर ही जाती है। इस वस्तु स्थिति के आधार पर न्यूटन ने परिकल्पना बनायी कि पृथ्वी में सभी वस्तुओं को अपनी ओर खींचने की शक्ति होती है। पृथ्वी में जिस गुरूत्वाकर्षण की शक्ति की उसने कल्पना की उस कल्पना की पुष्टि हेतु उसने विभिन्न साक्ष्यों तथा तथ्यों का एकत्रीकरण किया। अतः अपनी परिकल्पना को प्रभावित करने के लिए ही विभिन्न साक्ष्यों तथा तथ्यों का संकलन करना रचनात्मक चिंतन की तैयारी या आयोजन है। समस्या के स्वरूप तथा व्यक्ति के ज्ञान के अनुसार यह अवस्था लम्बे या कम समय की हो सकती है तो यह अवस्था लम्बे समय तक जारी रह सकती है किन्तु यदि समस्या की जटिलता कम है तथा व्यक्ति कम ज्ञान भंडार अधिक परिपक्व है तो यह अवस्था कम समय तक जारी रहती है। सामान्यतः समस्या समाधान इसी बात पर निर्भर करता है कि समस्या विवरण किस ढंग से किया गया और साक्ष्यों को किस प्रकार सकत्र तथा व्यवस्थित किया गया। सर्जनात्मक ढंग से सोचने वाला व्यक्ति बड़े कौ से साक्ष्यों का गठन एवं पुनर्गठन करता है। और समस्या का विवरण व पुनर्विवरण करता है। पैट्रिक (1935,1938) ने अपने परीक्षण के आधार पर यह दावा किया है कि आयोजन का अधिक या कम समय लगने पर आयु लिंग तथा बुद्धि का प्रभाव पड़ता है।

2) **उद्भव या परिपाक** (Incubation)**:-** किसी भी सर्जनात्मक चिंतन या समस्या समाधान की दूसरी अवस्था उद्भव, उद्भवन की होती है। इस अवस्था में चिंतक समस्या पर आगे विचार करना बंदकर देता है, इस अवस्था में उसकी निष्क्रियता बढ़ जाती है। जब कई तरह से समस्या समाधान का प्रयास करने के बाद भी सफलता नहीं मिलती है, तब इस अवस्था की उत्पति होती है। इस अवस्था में व्यक्ति समस्या के समाधान के बारे में चिंतन करना छोड़कर या तो सो जाता है या किश्राम करने लगता है। इस अवस्था में समस्या को चेतन मन से हटाकर अवचेतन मन में डाल दिया जाता है। धीरे -धीरे समाधान को अवरूद्ध करने वाले विचार हटने लगते है और दर्शाने वाले विचार लगते है।व्यक्तिगत भेद के कारण यह अवस्था अत्यधिक देर या थोड़ी देर की हो सकती है। व्यक्ति के अनुभव तथा अधिगम तथा अधिगम भी समस्या समाधान में सहायक होते हैं। एक ऐसी अवस्था आती है जब अचानक समाधान प्रकट हो जाता है और उद्भव की अवस्था समाप्त हो जाती है। पैट्रिक (1935) ने कवियों तथा कलाकारों पर अध्ययन करके इस बात की पुष्टि की है कि सर्जनात्मक चिंतन में उद्भव की अवस्था होती है।

3) **प्रदीप्ति या प्रबोधन (Illumination):-** प्रदीप्ति या प्रबोधन समस्या समाधान की तीसरी अवस्था है। इस अवस्था में अचानक व्यक्ति को समस्या का समाधान मिल जाता हैं। उद्भव की अवस्था कुछ मिनटों की हो या कुछ वर्षों की जब प्रबोधन प्राप्त होता है तो समाप्त हो जाती है। प्रबोधन वस्तुतः समाधान का अचानक

प्रकट होना है। जैसे-बटन दबाने ही अन्धकार में रोशनी फैल जाती है। प्रबोधन की मूल बात यह है कि यह अचानक प्रकट होता है।

सिलवरमैन (1978) के अनुसार:- समस्या समाधान के अकस्मात अनुभव को प्रबोधन कहा जाता है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार व्यक्ति में उदभवन की अवस्था के बाद प्रबोधन की अवस्था कमी भी प्रकट हो सकती है यहाँ तक कि कभी -कभी व्यक्ति को स्वप्न में भी प्रबोधन का अनुभव होते पाया गया है। गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों ने इस प्रकार समाधान पाने की क्रिया को सूझ का परिणाम माना है।

4) **प्रमाणीकरण (Authentication):-** प्रमाणीकरण सर्जनात्मक चिंतन या समस्या समाधान की चौथी अवस्था है। प्रबोंधान से प्राप्त समाधान का शुद्ध होना आवश्यक नहीं है। इस अवस्था में प्रबोधन से प्राप्त परिणाम का मूल्यांकन किया जाता है । इस अवस्था में व्यक्ति यह देखने की कोशिश करता है कि उसे जो समाधान प्राप्त हुआ है वह ठीक है या नहीं । मूल्यांकन करने के बाद जब व्यक्ति इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि समाधान या निष्कर्ष सही नहीं था तो वह सम्पूर्ण कार्य विधि का संशोधन करता है और पुनः एक दूसरे समाधान की खोज करता है। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने इस अवस्थाओं की आलोचना की है और कहा है कि सभी सर्जनात्मक चिंतन में ये सभी अवस्थाएँ नहीं होती हैं जैसेः- सर एलेक्जेण्डर फ्लेमिंग जिनमें पेनिसिलीन की और ना ही प्रबोधन की अवस्था पायी गयी।

फिर भी हमारे दिन प्रतिदिन के अनुभव तथा अधिकतर वैज्ञानिकों ,कलाकारों तथा कवियों के सर्जनात्मक चिंतन का विश्लेषण इस बात का सबूत है कि इस प्रकार का चिंतन उपर्युक्त अवस्थाओं के अनुसार ही होता है।

रचनात्मक चिंतन का विकास :

रचनात्मक चिंतन के क्षेत्र में किये गये अनुसंधान इस बात के घोतक हैं कि रचनात्मक चिंतन के विकास में वंश परम्परा तथा वातावरण दोनों ही आवश्यक तत्व है। इतिहास से हमें ऐसे उदाहरण मिलते हैं कि कुछ महापुरूषों ने बाल्यकाल से ही अपनी प्रतिमा तथा रचनात्मकता का परिचय दिया है। अतः हम कह सकते हें कि इस प्रकार की प्रतिमा अवश्य ही वंश परम्परा संबंधी होती चाहिए ।

रचनात्मक चिंतन के विकास में संस्कृति भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। माता पिता तथा घर का वातावरण रचनात्मक चिंतन को प्रभावित करता है। इस संबंध में गेजल्स तथा जैक्सन (1961) के अनुसंधान कार्य अति विचारणीय हैं। प्रत्येक स्कूल में यह उददेश्य रखा जाता है कि शिक्षा के आधार पर उस स्कूल के विद्यार्थी अधिक रचनात्मक निकलें । रचनात्मक चिंतन की प्रक्रिया प्रारम्भ करने के लिए विद्यालयों में विद्यार्थियों को प्रोत्साहन दिया जाता है। गोल्ड (1965) ने रचनात्मक चिंतन को प्रोत्साहित करने के लिए कई संकेतों का परिचय दिया है। जिन्हें विद्यालयों में प्रयोग में लाया जाता है।

1) **आलोचनात्मक चिंतन (evaluative thinking) -** आलोचनात्मक चिंतन में व्यक्ति किसी वस्तु ,घटना या तथ्य की सच्चाई को स्वीकार करने से पहले उनके गुण दोष परख लेता है। हमारे समाज में कुछ व्यक्ति ऐसे होते हें जिन्हें किसी व्यक्ति, वस्तु या घटना के बारे में जो कुछ भी कहा जाता है। वे उसे उसी रूप में सम्त्यस मानकर स्वीकार कर लेते हैं अतः स्पष्ट है कि उनमें आलोचनात्मक चिंतन की कमी है जबकी कुछ व्यक्ति ऐसे होते है। जिनके सामने जब कोई भी वस्तु या घटना उपस्थित होती है, तो वो उसके बारे में दोषों को परखते हैं। उसका विभिन्न दृष्टिकोणों से चिंतन करते है तथा फिर उसके आधार पर अपनी राय देते है। इस प्रकार का चिंतन आलोचनात्मक चिंतन का उदाहरण है ।
2) **प्रत्यात्मक चिंतन (conceptual thinking) -** प्रत्यात्मक चिंतन अन्य प्रकार के चिंतनों की अपेक्षा अधिक जटिल होता है। इसमें मानसिक प्रक्रिया के अन्तर्गत चिंतन कर्त्ता को अमूर्तता और सामान्यीकरण की प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ता है।इसी चिंतन के आधार पर व्यक्ति स्वयं को वातावरण में व्यवस्थित रखने में समर्थ हो पाता है। वह वातावरण की परिस्थिति का विश्लेषण करता है, उसकी घटनाओं, वस्तुओं और प्रभावों के बीच संबंध का अध्ययन करके नया संबंध देखता है। यह नया संबंध उसका मौलिक चिंतन होता है। यही उच्च चिंतन जिसमें मौलिक होती है। प्रत्यावर्तन स्तर का सीखना होता हैं और प्रत्यात्मक चिंतन कहलाता है। प्रत्यात्मक चिंतन में प्रत्ययों का विकास होता है।

5.6 चिंतन में वृत्ति या तत्परता का महत्व

तत्परता से तात्पर्य प्राणी की ऐसी मानसिक स्थिति से होता है जिसके सहारे वह किसी निश्चित उद्दीपन परिस्थिति अथवा समस्या के प्रति एक विशेष ढंग से क्रिया करता है जिससे की उस उद्दीपन परिस्थिति अथवा समस्या का समाधान हो सके। यह तत्परता स्थायी हो जाने पर अभिवृत्ति और आदत कहलाती है। तत्परता की उत्पत्ति या तो व्यक्ति के अपने पूर्व अनुभवों से होती है या प्रयोग कर्ता द्वारा दिये गये विशेष प्रकार के निर्देशों से।

समस्या समाधान में तत्परता का महत्व सर्वप्रथम **मायर(1930)** ने अपने प्रयोगों से प्रदर्शित किया। प्रत्येक समस्या का समाधान करने के पहले व्यक्ति एक प्रकार की मानसिक तैयारी करता है कि इसके समाधान के लिए वह किस तरह की अनुक्रिया करेगा। इसे ही मानसिक तत्परता या वृत्ति कहते हैं। बिना मानसिक तत्परता के समस्या का समाधान करना कठिन ही नहीं, वरन असम्भव भी होता है।

मायर (1930) ने मानसिक तत्परता के प्रभाव को दिखाने के लिए कई प्रयोग किये हैं जिनमें मानसिक तत्परता के लाभकारी प्रभाव शामिल हैं साथ ही हानिकारक प्रभाव भी शामिल हैं साथ ही हानिकारक प्रभाव भी शामिल हैं। मानसिक तत्परता के लाभकारी प्रभाव में समस्या समाधान में मदत मिलती है तथा हानिकारक प्रभाव में समस्या समाधान में बाधा पहुँचती है य समस्या समाधान विलम्बित हो जाता है। मानसिक तत्परता के

लाभदायक प्रभाव - मानसिक तत्परता के लाभकारी प्रभाव को व्यक्त करने के लिए मायर द्वारा किये गये तीन प्रयोग उल्लेखनीय हैं

1. एक प्रयोग में कॉलेज के विद्यार्थियों को बहुत सी सामग्रियाँ जैसे डंडे, शिकंजे, रस्सी, खड़िया आदि देकर कहा गया कि इनकी सहायता से दो दोलक बनाकर उन्हें इस प्रकार झुलायें कि वे निर्धारित स्थलों पर चिन्ह बनाते गुजरें। प्रयोज्यो के कई समुह बनाये गये किसी को केवल समस्या दी गई किसी को समस्या के कुछ भागों का समाधान भी दिखाया गया जैसे दो डंडों को शिकंजे की सहायता से कैसे जोड़ा जा सकता है- और एक समूह को आंशिक प्रदर्शन के साथ-साथ समाधान की सही दिशा अथवा सही तत्परता भी दी गई। जैसे उन्हें यह बताया गया कि छत में कील ठोंक कर उससे रंस्सी लटका सकते हैं जो दोलक के समान झूलेगी। बिना दिशा वाले 62 प्रयोज्यों में से केवल 2 ने समस्या का समाधान किया। जबकि दिशा पाने वाले 22 प्रयोज्यों में से 8 ने समस्या का समाधान किया। केवल सही तत्परता मिल जाने से अथवा यह मालूम हो जाने से कि किस ढंग से सोचने पर समाधान होगा, सफलता में कितना अन्तर हुआ यह इस प्रयोग से स्पष्ट है।
2. **मायर (1930)** ने समस्या समाधान में तत्परता के महत्व को व्यक्त करने के लिए एक अन्य प्रयोग किया, इस प्रयोग का उद्देश्य यह दिखलाता था कि जब प्रयोग में शाब्दिक संकेत तथा अशाब्दिक संकेत किसी समस्या का समाधान करते समय दे दिया जाता है तो इससे प्रयोज्य में विशेष तत्परता उत्पन्न हो जाती है, जिससे उसे समस्या का सममधान करने में मदत मिलती है। प्रयोज्य को बारी-बारी से एक ऐसे कमरे में लाया जाता था, जिसकी छत से दो रस्सी लटक रही थी। रस्सी इतनी छोटी तथा उनके बीच की दूरी इतनी अधिक थी कि प्रयोज्य के लिए एक साथ दोनों को छूना संभव नहीं था। समस्या यह थी कि इन दोनों रस्सियों को आपस में कैसे बाँधा जा सकता है। कमरे में कई सामग्रियाँ उपस्थित थीं परन्तु उन सबकी जरुरत समस्या समाधान में नहीं थी। ऐसे में इस समस्या के कई समाधान थे परन्तु मायर एक निश्चित समाधान ही चाहते थे। वे चाहते थे। वे चाहते थे कि प्रयोज्य किसी एक रस्सी के लटकते छोर से कोई भारी चीजे बाँध दें, ताकि वह दोलक के समान झूलने लगे। फिर इसे जोर से झुला दें और झुलते-झुलते वह जब दूसरी रस्सी की ओर अधिकतम दूरी तक पहुँच जाये, तो प्रयोज्य इसे पकड़कर दूसरी रस्सी से बाँध दें।

प्रत्येक प्रयोज्य को समस्या समाधान के लिए मात्र 10 सेकण्ड का समय दिया जाता था। कुछ लोगों ने इस समय के भीतर निर्दिष्ट समाधान कर लिया परन्तु कुछ लोग असफल भी रहे। असफल रहने पर मायर ने दो तरह के संकेत दिए। परिणाम में यह देखा गया कि बिना संकेत 39% प्रयोज्य ने समस्या का समाधान किया। संकेत देने के बाद 38% प्रयोज्यों ने समस्या का समाधान किया। बाकी 23% इस तरह के संकेत के बावजुद भी असफल रहे। इस प्रयोग के परिणाम के आधार पर यह बतलाया कि संकेत देने से प्रयोज्य में कुछ विशेष तत्परता उत्पन्न हो गयी जिसके कारण 38% अतिरिक्त प्रयोज्यों ने समस्या का समाधान किया।

3. मायर का तीसरा प्रयोग दो प्रयोगों के एक विशेष प्रेक्षण पर आधारित था। माया ने उपरोक्त दोनों प्रयोगों में पाया कि कुछ प्रयोज्यों द्वारा समस्या के समाधान में जो असफलता प्राप्त हुई उसका एक प्रधान कारण यह था कि उनमें एक गलत तत्परता विकसित हो गई थी। क्या यह संभव नहीं है कि इस तरह की तत्परता को परिवर्तन करके प्रयोज्य दूसरी ऐसी तत्परता विकसित करें जिससे उसे समस्या के समाधान में मदत मिले? मायर ने तीसरा प्रयोग इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिया किया। इस प्रयोग में प्रयोज्यों के दो समूह लिये गये प्रयोगात्मक समूह तथा नियन्त्रित समूह दोनों समूह के प्रयोज्यों को अलग-अलग तीन समरूप समस्याओं का समाधान करने के लिए कहा गया। प्रयोगात्मक समूह को समस्या का समाधान करने से पहले 20 मिनट का एक भाषण दिया गया जिसमे विशेष रूप से इस बात पर बल डाला गया था कि किसी तरह किसी समस्या के समाधान में जब गलत तत्परता विकसित हो जाती है तो इसे बदलकर इसकी जगह दूसरी तत्परता विकसित की जा सकती है ताकि समस्या का समाधान आसानी से हो सके। परिणाम में देखा गया कि प्रयोगात्मक समू्ी तथा नियन्त्रित समूह द्वारा तीनों समस्याओं के सही समाधान की प्रतिशतता में अधिक अन्तर तो नहीं था परन्तु निश्चित रूप से कम अन्तर परही प्रयोगात्मक समूह के सही समाधान का प्रतिशत अपेक्षाकृत अधिक था। अतः मायर का निष्कर्ष यह था कि यदि गलत तत्परता की जगह पर सही तत्परता विकसित हो जाती है, तो इससे समस्या समाधान में काफी मदत मिलती है।

मानसिक तत्परता के हानिकारक प्रभाव -

मायर के प्रयोगों से हमें इस बात का संकेत है कि समस्या समाधान में जब अनुचित तत्परता विकसित हो जाती है तो इससे समस्या समाधान में बाधा पहुँचती है। मानसिक तत्परता के हानिकारक प्रभाव को दिखाने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने कई प्रयोग किये हैं। **डंकर(1945)** ने गलत तत्परता के इस अंध प्रभाव को, जिसके कारण व्यक्ति समस्या का समाधान नहीं कर पाता है, क्रियात्मक अटलता या स्थिरता कहा है। ऐसा इसलिए कहा गया है क्योंकि व्यक्ति नयी समस्या के समाधान में एक तरह से क्रियात्मक रूप से स्थिर हो जाता है, यानि बार-बार एक ही अनुक्रिया करता है, जिससे वर्तमान समस्या का समाधान नहीं हो पाता है।

इसी क्रम में **रीस तथा इजरेल (1935)** के प्रयोग से भी तत्परता के अन्धप्रभाव का पता चलता है। उन्होंनें तत्परता के अन्धप्रभाव को दिखाने के लिए एनाग्राम के सहारे प्रयोग किया। अर्थपूर्ण शब्दों के अक्षरों के क्रम को बदलने से जो अर्थ हीन शब्द बनता है, उसे एनाग्राम कहा जाता है जैसे **CAMEL** से **ELAMC** बन सकता है या और भी कोई अर्थहीन शब्द बन सकता है जिसे एनाग्राम कहा जाता है। प्रयोग कर्ताओं ने 30 एनाग्राम की एक सूची बनाई, जिससे से प्रथम 15 एनाग्राम को एक निश्चित नियम से समाधान करने पर एक अर्थपूर्ण शब्द बन जाता था। अन्तिम 15 एनाग्राम में अन्य वैकल्पिक समाधान भी संभव था। परिणाम में देखा गया कि अधिकतर प्रयोज्यों ने प्रथम 15 एनाग्राम के समाधान में जिस नियम का उपयोग किया था उसी नियम

द्वारा अन्तिम 15 एनाग्राम के समाधान में उत्पन्न मानसिक तत्परता से द्वितीय 15 एनाग्राम के वैकल्पिक समाधान ढूँढने में एक तरह से बाधित किया क्योंकि प्रयोज्या इस तत्परता के कारण वैकल्पिक समाधान की बात सोच ही नहीं पा रहे थे।

अतः स्पष्ट है कि समस्या समाधान में यानी चिन्तन में किसी तत्परता का प्रभाव सहायक भी होता है और बाधक भी। तत्परता के इस हानिकारक प्रभाव को कुछ प्रयोगों द्वारा कम भी किया जा सकता है।

5.7 भाषा एवं चिंतन

मानव की चिन्तन प्रक्रियाओं के लिए भाषा का होना आवश्यक है। **कॉलिन्स और ड्रेवर** के अनुसार - ''चिन्तनकला भाषा की सहायता से अपने विचारों को नियन्त्रित करता है और चिंतन क्रिया का ठीक-ठीक संचालन भी करता है।'' डम्बिल के कथनानुसार ''मानव की भाषा विकास मानव के बुद्धि विकास पर आधारित है।चिन्तन में भाषा का प्रयोग होता है। भाषा के माध्यम से ही चिन्तन के निष्कर्ष व समस्या समाधान प्रस्तुत किये जाते हैं।''' चिन्तन तथा भाषा के सम्बन्ध को एक उदाहरण द्वारा इस प्रकार समझ सकते हैं - हाइवे में जाते समय जाम लग जाता है जो कई घण्टे बीतने के बाद भी आगे नहीं बढ़ रहा है। यह समस्या भाषा में ढ़ले अनेंक प्रश्नों के रूप में प्रकट होती है, क्या हाईवे में कोई दुर्घटना हो गयी है? क्या कोई जुलूस या रैली निकल रही है? इत्यादि यह समस्या वस्तुतः भाषा में प्रश्न और उत्तर के रूप में बदल जाती है जिससे चिन्तन और भाषा में भेद करना कठिन हो जाता है।

भाषा के निम्नलिखित 4 कार्य होते हैं -

i) भाषा को विचार विनयम का साधन कहा गया है। इसके माध्यम से व्यक्ति अपने विचार दूसरों तक पहुँचाता है और दूसरों के विचारों को ग्रहण करके सामाजिकता के गुण एवं भाव अपनाता है।
ii) व्यक्ति भाषा की सहायता से क्रियाशील होने की प्रेरणा प्राप्त करता है।
iii) भाषा व्यक्ति को अन्तर्द्वन्दों एवं तनाव से छुटकारा दिलाती है क्योंकि इसके प्रयोग के द्वारा व्यक्ति अपने मनके विचार व्यक्त करके अपने मन को हल्का कर लेता है।
iv) भाषा की सहायता से हम तर्क कर सकते हैं, वाद विवाद कर सकते है तथा अपने चिन्तन की उत्तम व्याख्या कर सकते हैं।

मनोवैज्ञानिकों ने चिन्तन में भाषा को महत्वपूर्ण मानते हुए इसका निम्न प्रकार वर्णन किया है।

(i) भाषा को चिन्तन का माध्यम कहा जाता है। भाषा के अभाव में चिन्तन प्रक्रिया नहीं हो सकती है। व्यक्ति भाषा के द्वारा ही अपने विचार प्रस्तुत करता है और दूसरों के विचार ग्रहण करके उनपर प्रतिक्रिया करता है। चिन्तन की प्रक्रिया भाषा द्वारा प्रभावित तथा निर्धारित होती है।

सापिर की परिकल्पना भी कि भाषा द्वारा चिन्तन की प्रक्रिया काफी हद तक प्रभावित होती है। इस परिकल्पना का समर्थन ब्रुनर (1964) द्वारा किये गये प्रयोग से होता है। इन्होंने शिशुओं तथा प्रि स्कूली बच्चों पर अध्ययन किया और पाया कि इन बच्चों के चिन्तन की प्रक्रिया तथा संज्ञानात्मक विकास अधिक सीमित इसलिए होता है क्योंकि इनमें भाषा पूर्णरूप से विकसित नहीं होती है। इनके अध्ययन के अनुसार 6-7 साल की उम्र में बच्चे सोचने के लिए अच्छीतरह से भाषा का उपयोग प्रारम्भ कर देते हैं। चूँकी प्री स्कूली छात्रों की उम्र 6 साल से नीचे होती है और उनमें भाषा का विकास पूर्ण नहीं रहता है, अतः उनका संज्ञानात्मक विकास विशेषकर चिन्तन की प्रक्रिया ठीक ढ़ंग से नहीं हो पाती है। इस प्रयोग स्पष्ट है कि भाषा द्वारा चिन्तन की प्रक्रिया प्रभावित होती है।

ओर्फ (1956) ने सापिर के इस कथन को कि भाषा द्वारा चिन्तन प्रभावि होता है, और भी अधिक स्पष्ट करते हुए कहा कि भाषा द्वारा चिन्तन प्रभावित ही नहीं, निर्धारित भी होता है। ओर्फ के योगदान को मनोवैज्ञानिकों द्वारा अधिक मान्यता मिली है। ओर्फ की परिकल्पना थी कि भाषा का विकास चिन्तन की प्रक्रिया से पहले होता है तथा चिन्तन की प्रक्रिया का निर्धारण पूर्ण रूप से भाषा द्वारा ही होता है। इसे भाषाई नियतिवाद कहा गया और आम लोगों में यह ओर्फ परिकल्पना के नाम से मशहूर हुआ। इस परिकल्पना के अनुसार कभी उच्च स्तरीय चिन्तन भाषा द्वारा ही निर्धारित होते हैं।

ओर्फ ने अपनी परिकल्पना को सत्य साबित करने के लिए एक अध्ययन किया जिसमें ग्रीनलैंड में रहने वाली प्रजाति एस्किमो तथा अंग्रेजी भाषा बोलने वाले व्यक्तियों के प्रत्यक्षण एवं चिन्तन की प्रक्रियाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया गया। एस्किमो की भाषा में बर्फ के लिए कम से कम 12 शब्द और हैं जिनका अर्थ बर्फ ही होता है परन्तु उसका प्रयोग भिन्न-भिन्न प्रकार की बर्फो को समझने तथा प्रत्यक्षण करने में होता है। अंग्रजी भाषा में बर्फ के लिए सिर्फ एक या दो शब्द है। ओर्फ ने अपने अध्ययन में पाया कि जितने स्पष्ट रूप से भिन्न -भिन्न प्रकार की बर्फों का प्रत्यक्षण एवं उसके बारे में चिन्तन एस्कियाँ द्वारा किया जाता है, उतना स्पष्ट प्रत्यक्षण एवं चिन्तन अंग्रेजी भाषा बोलने वाले व्यक्तियों द्वारा नहीं किया जाता है। इस अध्ययन से स्पष्ट है कि भाषा विकसित होने से प्रत्यक्षण एवं चिन्तन भी स्पष्ट होते हैं।

यद्यपि आर्फ परिकल्पना काफी महत्वपूर्ण परिकल्पना है, फिर भी कुछ मनोवैज्ञानिकों ने इसकी आलोचना की है। कंजम (1976) ने ओर्फ परिकल्पना की आलोचना करते हुए कहा कि भाषा में विभिन्नता से यह तो स्पष्ट रूप से पता चलता है कि भाषाएँ एकदूसरे से भिन्न होती हैं परन्तु इसके आधार पर बिना किसी स्वतन्त्र माप के यह कह देना कि इसके कारण चिन्तन क्षमता में भी अन्तर होता है, उचित नहीं है।

ओर्फ परिकल्पना की दूसरी आलोचना इस आधार पर की गयी है कि भिन्न-भिन्न भाषाओं में विभिन्नता के बावजूद काफी अधिक समानता होती है। जैसे- प्रत्येक भाषा में संज्ञा और क्रिया होते है। और

प्रत्येक भाषा में कुछ नियम होते हैं, जिनके अनुसार शब्दों के क्रम का निर्धारण होता है। इतना ही नहीं, भाषा की किसी विशेष संरचना जैसे शब्द मिलाकर बोलना, पूरा-पूरा शुद्ध वाक्य बोलना आदि प्रत्येक भाषा बोलने वाले बच्चों में करीब-करीब एक ही समय में विकसित होती है। ब्राउन तथा कुफ (1986) के अनुसार ऐसी परिस्थिति में भिन्न-भिन्न भाषा बोलने वाले एक उम्र के सभसी बच्चों की चिन्तन क्षमता समान होनी चाहिए थी। ऐसा होता तो वोर्फ परिकल्पना को पूर्ण समर्थन मिलता परन्तु भाषा में इस समानता के बावजुद भी उनकी चिन्तन क्षमता समान नहीं होती है।

गैग्ने एवं स्मिथ(1962) ने अपने प्रयोग में जिन प्रयोज्यों को इस बात की शिक्षा दी कि समस्या समाधान करते समय वे अपने विचारों को शब्दों में व्यक्त करते जायें और सामान्य नियमों को बोलते जायें वे अन्य समस्याओं के समाधान में उन प्रयोज्यों से श्रेष्ठ हो गये जिन्हें ऐसी शिक्षा नहीं दी गयी थी।

भाषा के अन्तर्गत शब्द विन्यास विचारों के संकेत के रूप में कार्य करते हैं। मॉर्गन तथा गिली लैण्ड यह स्वीकार करते हैं कि वयस्कों का अधिकांश चिन्तन शब्दों के माध्यम से होता है।

कुछ मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि भाषा चिन्तन के लिए सहायक हो सकती है, आवश्यक नहीं है। यदि भाषा चिन्तन के लिए आवश्यक होती तो छोटे बच्चे और पशु जिन्हें भाषा नहीं आती समस्याओं का समाधान नहीं कर पाते। समस्या समाधान मूलतः चिन्तन का एक रूप है और चूहे भी समस्या समाधान और अन्तर्दृष्टि प्रदर्शित करते हैं। इस विषय पर टौलमैन एवं हौजिक (1930) द्वारा चूहों पर किये गये एक प्रयोग से पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। प्रयोगकर्ताओं ने 15 चूहों को 24 घंटे भूखा रखकर एक व्यूह में 10 बार दौडाया। व्यूह में आरम्भ पेटी से लक्ष्य तक पहुँचने के तीन मार्ग मे सबसे छोटा उससे लम्बा और सबसे लम्बा। सबसे छोटे और उससे लम्बे मार्गों का कुछ अन्तिम भाग उभयनिष्ठ था। प्रशिक्षण अवधि में तीनों मार्ग खुले थे। चूहों ने तीनों मार्गों से लक्ष्य तक पहुँचना सीखा, परन्तु सबसे छोटे मार्ग से ही लक्ष्य तक जाने लगे। जब पहला (उससे लम्बे) से लक्ष्यतक गये। जब पहले मार्ग को ऐसी जगह बन्द किया गया जो दूसरे मार्ग में भी उभयनिष्ठ था तो चूहे दूसरे मार्ग से नहीं बल्कि तीसरे मार्ग से लक्ष्य तक गये जो सबसे लम्बा था। इससे स्पष्ट हुआ कि उस बाधा ये चूहों में अन्तर्दृष्टि हो गयी कि बाधा ऐयी जगी पर है जिससे केवल पहला ही नहीं बल्कि दूसरा रास्ता भी बन्द हो गया है, इसी कारण उन्होंने तीसरा रास्ता चुना।

(ii) मनोवैज्ञानिकों का एक समूह ऐसा भी है जिसने उपर्युक्त विचार के ठीक विपरीत विचार व्यक्त किया है। इसमे पियाजे (1932) तथा क्लार्क (1973) का नाम प्रसिद्ध है। इन मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि चिन्तन की प्रक्रिया व्यक्ति में पहले होती है। चिन्तन की प्रक्रिया पहले होती है और बाद में उससे सम्बन्धित शब्दों का विकास होता है। चिन्तन की प्रक्रिया भाषा द्वारा प्रतिबिम्बित होती है न कि निर्धारित। पियाजे ने अपने प्रयोग के आधार पर बताया कि कुछ शब्द जैसे बड़ा, छोटा, लम्बा दूर आदि

का अर्थ बच्चा तब तक नहीं समझता है जब तक कि उसमें इन शब्दों से संबंधित तार्किक सम्प्रत्ययों का विकास नहीं होता है।

(iii) कुछ मनोवैज्ञानिक इन दो विचारों के ठीक बीचों बीच अपने विचार रचाते है। उनका कथन है कि भाषा तथा चिन्तन दो ऐसी प्रक्रियाएँ हैं जो प्रारंभ में अलग-अलग तथा स्वतन्त्र रूप से विकसित होती हैं किसी एम का विकास दूसरे के द्वारा प्रभावित नहीं होता है। इन विद्वानों के अनुसार, बच्चों का चिन्तन और भाषा का विकास लगभग स्वतन्त्र रूप से साथ-साथ चलता है। बच्चे जैसे-जैसे नये शब्द सीखते हैं वे अपने चिन्तन को अधिक स्पष्टता से व्यक्त करने लगते हैं और निष्कर्षों का स्मरण भी अच्छा हो जाता है। वाइगोट्स्की (1962) इस विचार के मुख्य समर्थक हैं। जब मानव भाषा का प्रयोग विचारों की अभिव्यक्ति के लिए करता है तब उसे कम परिश्रम करना पड़ता है। भाषा के माध्यम से वह विचार रूप सागर को गागर के रूप में व्यक्त कर सकता है।

चिन्तन में भाषा बहुत सहायक होती है। परन्तु कभी-कभी यह धोखा भी दे सकती है। सुन्दर शब्दों के हेर फेर से व्यक्ति कुछ का कुछ समझ कर गलत धारणा भी बना लेता है। यही कारण है कि कभी-कभी उसके शब्द उसके मन की धारणा में भली प्रकार स्पष्ट नहीं कर पाते हैं। हायाकावा (1941) के अनुसार गर्व दुःख तथा घृणा भरे शब्द चिन्तन का द्वारा ही बन्द कर देते है। बालक रटा हुआ भाषण बिना चिन्तन के सुना सकता है इसलिए केवल बातचीत को हम चिन्तन नही मान सकते हैं। वास्तव में चिन्तन से तात्पर्य आशय पूर्ण भाषा से है, केवल रटे हुए शब्दों से नहीं। उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि चिन्तन प्रक्रिया में भाषा का महत्वपूर्ण योगदान है, किन्तु सभी चिन्तन भाषा पर हो निर्भर होते हैं ऐसा नहीं कहा जा सकता। मनोवैज्ञानिकों द्वारा इस विषय पर निर्णायक रूप से कुछ भी रहना अब भी कठिन है।

5.8 सारांश

1) चिन्तन प्रत्येक प्राणी में होने वाली एक अव्यक्त मानसिक प्रक्रिया है, जो समस्या समाधान की ओर उन्मुख होती है।
2) चिंतन लक्ष्य निर्देशित होता है अर्थात्- इसकी एक निश्चित दिशा होती है।
3) चिंतन का संबंध समस्या समाधान से होने के कारण इसमें प्रयत्न एवं त्रुटि की प्रक्रिया शामिल होती है।
4) चिंतन प्रक्रिया तीनों कालों भूत, वर्तमान, एवं भविष्य से सम्बद्ध होती है।
5) जिम्बार्डो तथा रूक (1977) ने चिन्तन के निम्न दो प्रकार बताये हैं-
   अ. स्वली चिंतन
   ब. यथार्थवादी चिन्तन
6) यथार्थवादी चिन्तन को मनोवैज्ञानिकों ने पाँच भागों में वर्गीकृत किया है जो निम्न हैं-

i)अभिसारी चिन्तन ii) अपसारी चिन्तन iii) रचनात्मक चिन्तन

iv) आलोचनात्मक चिन्तन v) प्रत्यात्मक चिन्तन

7) रचनात्मक चिन्तन के मुख्यतः चार चरण हैं-

1. तैयारी या आयोजन (Preparation)
2. उद्भव या परियाक (Incubation)
3 प्रदीप्ति या प्रबोधन (Ilumination)
4. प्रमाणीकरण (Verification or Revision)

8) मनोवैज्ञानिकों ने विभिन्न प्रयोगों के माध्यम से चिंतन में तत्परता के महत्व को स्पष्ट किया है। सही एवं उचित तत्परता से समस्या समाधान हेतु चिंतन में सहायता मिलती हैं, इसके विपरीत अनुचित तत्परता से चिंतन में बाधा उपस्थित होती हैं।

9) विभिन्न प्रयोगों के माध्यम से मनोवैज्ञानिकों ने चिंतन में भाषा के महत्व को भी स्वीकार किया है।

5.9 शब्दावली

- **चिंतन:** सोचने की प्रक्रिया
- **अव्यक्त:** जिसे प्रत्यक्ष रूप से देखा ना जा सके।
- **सम्प्रत्यय:** अवधारणा
- **यथार्थवादी:** वास्तविक
- **प्रत्यात्मक:** अवधारणात्मक
- **तत्परता:** एक ऐसी मानसिक स्थिति जिसके सहारे प्राणी समस्या का समाधान करने की कोशिश करता है।

5.10 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

नीचे कुछ कथन दिये गये है। जो कथन सत्य है उनके आगे सही का निशान एवं जो गलत है, उनके आगे क्रास का निशान लगायें :-

1) चिंतन एक व्यक्त मानसिक प्रक्रिया है। ( )
2) चिंतन में प्रयत्नएवं श्रुति की प्रक्रिया सम्मिलित होती है। ( )
3) चिंतन की एक निश्चित दिशा नहीं होती है। ( )
4) चिंतन का संबंध समस्या समाधान से होता है। ( )
5) बेरोन के अनुसार चिन्तन में सम्प्रत्ययों, प्रतिज्ञाप्ति एवं प्रतिभाओं का मानसिक जोड़-तोड़ होता है। ( )
6) यथार्थवादी चिंतन का संबंध कल्पनाओं से होता है। ( )

7) अभिसारी चिंतन का सर्वप्रथम प्रतिपादन जाय पॉल गिल्फोर्ड ने किया था। ( )

8) तैयारी उद्भव, प्रदीप्ति एवं प्रमाणीकरण रचनात्मक चिंतन की अवस्थायें हैं। ( )

9) सृजनात्मक चिंतन की उद्ययन अवस्था में व्यक्ति में निष्क्रियता बढ़ जाती है। ( )

10) अवसारी चिंतन का प्रतिपादन सर्वप्रथम जाय पॉल गिल्फोर्ड ने किया था। ( )

उत्तर: 1) गलत 2) सही 3) गलत 4) सही 5) सही

6) गलत 7) सही 8) सही 9) सही 10) सही

5.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- सिंह, अरूण कुमार, (2006) उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान। मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड जवाहर नगर, दिल्ली।
- सिंह, अरूण कुमार, (2006) संज्ञानात्मक मनोविज्ञान। मोतीलाल बनारसीदास, बंगालो रोड, जवाहर नगर दिल्ली।
- अर्जीमुर्र रहमान, (2003) सामान्य मनोविज्ञान: विषय और व्याख्या।
- श्रीवास्तव, रामजी, आलम, आसिम (2004) आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान।
- श्रीवास्तव, रामजी। (2003), संज्ञानात्मक मनोविज्ञान।

5.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. चिन्तन को परिभाषित हुये इसके स्वरूप पर प्रकाश डालें।
2. रचनात्मक चिंतन से आप क्या समझते है ? इसकी विशेषताओं एवं अवस्थाओं का विवेचन कीजिए।
3. चिन्तन के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिये।
4. चिन्तन प्रक्रिया में भाषा के महत्व को स्पष्ट कीजिए ?

इकाई-6 चिन्तन के सिद्धान्त
(Theories of Thinking)

इकाई संरचना

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 चिन्तन के सिद्धान्त
  6.3.1 केन्द्रीय सिद्धान्त
  6.3.2 परिधीय या गति सिद्धान्त
  6.3.3 जीन पियाजे का सिद्धान्त
6.4 सारांश
6.5 शब्दावली
6.6 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
6.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची
6.8 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों, इससे पूर्व की ईकाई का अध्ययन करने के बाद आप चिंतन के अर्थ, विशेषताओं एवं इसके विभिन्न प्रकारों से परिचित हो चुके होंगे। प्रस्तुत ईकाई में चिन्तन के संबंध में विभिन्न मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों को समझाया जायेगा।

करीब-करीब सभी मनोवैज्ञानिक इस बात से सहमत हैं कि चिन्तन की शुरुआत उस समय होती है जब व्यक्ति के सामने समस्या उत्पन्न होती है और चिन्तन का अंत उस समय होता है, जब समस्या का समाधान हो जाता है। किन्तु चिन्तन द्वारा समस्याओं के समाधान में प्रयुक्त प्रक्रियाओं का वर्णन करने में मनोवैज्ञानिकों के बीच प्रारम्भ से ही मतभेद रहा है। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने चिन्तन प्रक्रिया में केन्द्रीय तंत्रिका तन्त्र को महत्व दिया है जबकि कुछ मनोवैज्ञानिकों ने चिन्तन को संवेदी गतिवाही घटनाक्रम के रूप में स्वीकार किया है। वाटसन, जो व्यवहारवाद के जनक हैं, इन्होंने चिन्तन के उपवाचिक बातचीत माना है तथा इसके पक्ष में कुछ प्रयोगात्मक सबूत भी प्रस्तुत किये हैं, वहीं पर जीन पियाजे ने बच्चों के चिन्तन की व्याख्या उनके परिपक्वता स्तर, अनुभव तथा इनके मध्य अन्तःक्रिया के आधार पर की है साथ ही बच्चों में संज्ञानात्मक विकास की व्याख्या में चार

अवस्थाओं का भी वर्णन किया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि अलग-अलग मनोवैज्ञानिकों ने चिन्तन का वर्णन अलग-अलग प्रकार से किया है।

अतः ये तो बिल्कुल स्पष्ट है कि चिन्तन में समस्या समाधान में प्रयुक्त होने वाली प्रक्रिया के संबंध में सभी विद्वान एकमत नहीं है। इसलिये प्रिय विद्यार्थियों, आपके मन में भी यह जानने की इच्छा उत्पन्न हो रही होगी कि समस्या समाधान में चिंतन की प्रक्रिया किस प्रकार से होती है, किन-किन मनोवैज्ञानिकों ने इस संबंध में कौन-कौन से प्रयोग किये हैं इत्यादि।

आशा है कि प्रस्तुत ईकाई के अध्ययन के बाद आपकी इन सभी जिज्ञासाओं का समाधान हो जायेगा।

6.2 उद्देश्य

प्रिय पाठकों, इस ईकाई के अध्ययन के बाद आप -

- चिंतन के द्वारा समस्या का समाधान किस प्रकार से होता है, इसे स्पष्ट कर सकेंगे।
- समस्या समाधान की विभिन्न प्रक्रियाओं का अध्ययन कर सकेंगे।
- चिंतन के विभिन्न सिद्धान्तों का विश्लेषण कर सकेंगे।
- चिंतन प्रक्रिया के संबंध में किये गये विभिन्न मनोवैज्ञानिक प्रयोगों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

6.3 चिन्तन के सिद्धान्त

प्रिय विद्यार्थियों, जब व्यक्ति किसी समस्या का अनुभव करता है तो उसके समाधान के लिए वह चिन्तन करता है। इस तथ्य को सभी मनोवैज्ञानिकों ने स्वीकार किया हैं। परन्तु चिन्तन की इस प्रक्रिया में यानि समस्या उत्पन्न होने तथा उसके समाधान होने तक कौन - कौन सी मध्यवर्ती प्रक्रियाएँ होती हैं तथा उनकी व्याख्या कैसे हो सकती है, इसे लेकर मनोवैज्ञानिकों में मतभेद रहा हैं। इन मध्यवर्ती प्रक्रियाओं की व्याख्या चिन्तन के विभिन्न सिद्धान्तों के माध्यम से की जा सकती है, जिनका विवेचन निम्नानुसार है:-

1. केन्द्रीय सिद्धान्त (Central theory)
2. परिधीय सिद्धान्त या गति सिद्धान्त (Peripheral or Motor theory)
3. जीन पियाजे का सिद्धान्त (Piaget’s theory)

6.3.1 केन्द्रीय सिद्धान्त -

चिन्तन का केन्द्रीय सिद्धान्त प्राचीन सिद्धान्त है। इस सिद्धांत के अनुसार मस्तिष्क ही चिन्तन का आधार हैं। मस्तिष्कीय वल्क में जो क्रियाएँ होती हैं। उन्ही से समास्या का समाधान होता हैं। इस सिद्धांत के अनुसार चिन्तन प्रक्रिया में अन्य शारीरिक क्रियाओं का कोई योगदान नहीं होता हैं। केन्द्रीय सिंद्धात के अनुसार किसी उत्तेजना (stimulus) से ग्राहक (receptor) उत्तेजित होता है। यह स्नायु प्रवाह (nerve impulse) पैदा होता है। यह

स्नायु प्रवाह संवेदी स्नायु (Sensory nerves) की सहायता से कॉर्टेक्स में पहुँचता है और वहाँ आन्तरिक क्रियाएँ प्रारम्भ हो जाती हैं। फलस्वरुप व्यक्ति के मस्तिष्क में भिन्न भिन्न प्रकार की प्रतिमाएँ एवं विचार उत्पन्न होने लगते हैं प्रत्यय (concept) तथा प्रतीक (Symbol) की सहायता से में विचार और प्रतिमाएँ सुसंगठित होने लगते हैं जिनके सहारे व्यक्ति समास्या का समाधान कर लेता हैं। इस प्रकार केन्द्रीय सिद्धांत के अनुसार समास्या की अनुभूति और उसके समाधान के बीच होने वाली सभी क्रियाएँ मस्तिष्क में होती हैं। संरचनावादी मनोवैज्ञानिकों तथा गेस्टाल्ट वादियों की विचार धाराओं के आधार पर ही चिन्तन के केन्द्रीय सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया है। संरचनावादियों ने चिन्तन में अन्तः निरीक्षण को महत्व देते हुए केन्द्रीय सिद्धांत की कल्पना की है गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों ने चिन्तन को मस्तिष्क का एक केन्द्रीय घटनाक्रम माना है और इसमें सूझ (insight) को विशेष महत्व दिया है।

केन्द्रीय सिद्धान्त की आलोचना:-

कुछ मनोवैज्ञानिकों ने चिन्तन के केन्द्रीय सिद्धांत की आलोचना इस प्रकार की हैः-

(i) चिन्तन का केन्द्रीय सिद्धांत एक पुराना सिद्धांत है जो कोई विशेष बात हमारे सामने नहीं लाता है इसके समर्थन में कोई प्रयोगात्मक सबूत उपलब्ध नहीं है। इस सिद्धांत से केवल यही स्पष्ट होता है कि चिन्तन एक आन्तरिक मानसिक क्रिया है। इस सिद्धांत से यह प्रमाणित नहीं होता कि चिन्तन का आधार कॉर्टेक्स कैसे है तथा इससे यह भी स्पष्ट नहीं होता है कि चिन्तन प्रक्रिया में कौन कौन सी संरचनाएँ (मेकेनिज्म) सम्मिलित होती हैं। फलस्वरुप मनोवैज्ञानिकों ने इस सिद्धांत को एक काम चलाऊ सिद्धांत कहा हैं, जिसकी व्याख्या के आधार पर किसी भी प्रकार का सामान्यीकरण नहीं किया जा सकता है।

(ii) इस सिद्धांत में शरीर के पेशीय अंगों द्वारा की गई क्रियाओं को स्वीकृति नहीं दी गई है। आज मनोवैज्ञानिकों के सामने अनेंक इस तरह के सबूत उपलब्ध है। जिनके आधार पर यह सिद्ध हो चुका है कि चिन्तन में मस्तिष्क के साथ साथ पेशीय क्रियाओं का भी महत्व होता है।

6.3.2 परिधीय या गति सिद्धान्त -

इस सिद्धांत के जन्मदाता विलियम जेम्स (1890) हैं। परन्तु इसें एक व्यवस्थित रुप देने का श्रेय वाटसन (1914) को दिया जा सकता है। विलियम जेम्स ने चिन्तन में केन्द्रीय मेकेनिज्म को महत्व न देकर परिधीय मेकेनिज्म को विशेषतः महत्वपूर्ण माना हैं। वाटसन ने चिन्तन को व्यवहारवादी जामा पहनाकर इसे संवेदी गतिवाही घटनाक्रम (Sensory motor phenomenon) के रुप में स्वीकार किया है। वाटसन जो व्यवहारवाद के जनक है, के अनुसार चिन्तन एक प्रकार की उपवाचिक बातचीत है। दूसरे शब्दों में चिन्तन में व्यक्ति धीरे धीरे स्वयं से ही बातचीत करता है। इस तरह से चिन्तन में वागीन्द्रियों में पेशीय क्रियाएँ होती हैं और व्यक्ति अपने आप से ही बातचीत करना प्रारम्भ कर देता हैं। बाद में वाटसन ने बताया कि चिन्तन में न केवल वागीन्द्रियों में क्रियाएँ होती

है बल्कि शरीर के अन्य अंगों जैसे हाथ एवं पैर की मांसपेशियों में भी क्रियाएँ होती है। जैसे एक बहरे एवं गूंगे व्यक्ति के चिन्तन प्रक्रिया में हाथ की अंगुलियों की मांसपेशियों में अधिक क्रियाएँ होती पाई गई।

इस तरह वाटसन (1914) ने कहा कि:-

'' हम लोग पूरे शरीर के सहारे चिन्तन क्रिया करते हैं।''

वाटसन के उपरोक्त विचारों से परिधीय सिद्धांत या गति सिद्धांत का प्रतिपादन हुआ। इस सिद्धांत के अनुसार जब व्यक्ति के सामने कोई उद्दीपक अथवा समास्या आती है तो सम्बंधित ज्ञानेन्द्रिय उत्तेजित होती है तो एक स्नायु प्रवाह उत्पन्न होता है जो कॉर्टेक्स तक जाता है फलस्वरुप कॉर्टेक्स में चयन संबंधी एक प्रतिक्रिया होती है कॉर्टेक्स एक रिलेस्टेशन के समान कार्य करता है। इस प्रतिक्रिया के कारण स्नायु प्रवाह उत्पन्न होता है जो सीधे उपयुक्त मांसपेशियों अथवा कर्मेन्द्रिय तक भेद दिया जाता है फलस्वरुप व्यक्ति कोई अनुक्रिया करता है। मांसपेशियों की इस अनुक्रिया से पुनः एक स्नायु प्रवाह उत्पन्न होता है जो कॉर्टेक्स मे वापस चला जाता हैं। इस स्नायु प्रवाह की पुनरावृत्ति तब तक होती रहती हैं। जब तक व्यक्ति समस्या के एक निश्चित समाधान तक नहीं पहुँच जाता। स्नायु प्रवाह के मांसपेशियों अथवा कर्मेन्द्रियों से वापसी प्रक्रिया को मनोवैज्ञानिकों ने पुनर्निवेशन (feedback) की संज्ञा दी है।

इस व्याख्या से स्पष्ट है कि परिधीय सिद्धांत में मस्तिष्क में होने वाली अन्तः क्रियाओं को भी प्रधानता दी गई है साथ ही साथ परिधीय सिद्धांत की व्याख्या केन्द्रीय सिद्धांत से भिन्न भी है। परिधीय सिद्धांत में पेशीय क्रियाओं को अधिक महत्वपूर्ण माना गया है।

परिधीय सिद्धांत से संबधित प्रयोग :-

जैकोबसन(1932) ने अपने प्रयोज्यों से कभी वायें हाथ से कभी दायें हाथ से 10 पौण्ड वजन उठाने की कल्पना करने को कहा। निर्देश देने के साथ साथ जैकोवेसन प्रयोज्यों के बायें हाथ और दायें हाथ की पेशीय क्रियाओं को विशेष उपकरण द्वारा रिकार्ड करते गये। उन्होनें पाया कि जब प्रयोज्य दायें हाथ से 10 पौण्ड वजन उठाने की बात सोचता था तो उसके दायें हाथ की मांसपेशियों की सक्रियता बढ़ जाती थी उसी प्रकार जब वायें हाथ से 10 पौण्ड वनज उठाने की बात सोचता था तो बायें हाथ की मांसपेशियों की सक्रियता बढ़ जाती थी इस शोध अध्ययन से यह स्पष्ट हो गया कि चिन्तन की प्रक्रिया में पेशीय क्रियाएँ होती हैं।

मैक्स (1937) ने गति सिद्धांत की जाँच के लिए एक प्रयोग किया उसमें 18 बहरे (डीफ) तथा 16 सामान्य (जो अच्छी तरह से सुन सकते थे) प्रयोज्य थे। इन दोनों तरह के प्रयोज्यों को ऐसी कल्पना करने को कहा गया कि वे अपने हाथों के सहारे भारी वजन उठा रहे हैं ऐसा सोचते समय इन सभी प्रयोज्यों की बाहों का भी रिकार्ड तैयार किया गया । परिणाम में देखा गया कि बहरे प्रयोज्यों के बाँह की माँसपेशीय क्रियाएँ सामान्य प्रयोज्यों की बाँह की माँसपेशीय क्रियाओं के लगभग बराबर थी। परिणाम से यह स्पष्ट है कि सामान्य व्यक्ति के समान बहरे व्यक्ति

के चिन्तन में भी माँसपेशीय क्रियाएँ होती है। अमूर्त चिंतन करते समय जैसे मन में जोड़, घटाना, गुणा, भाग करते समय बहरों में उनके बाहरी माँसपेशीय क्रियाएँ 4 प्रतिशत हुई जबकि इसी परिस्थिति में सामान्य व्यक्ति में ऐसी माँसपेशीय क्रियाएँ 31 प्रतिशत हुई इससे स्पष्ट है कि अमूर्त चिंतन करते समय बहरे व्यक्तियों में सामान्य व्यक्तियों की अपेक्षा पेशीय क्रियाएँ तीव्रता से होती है।

टोटैन(1935) ने एक अध्ययन किया जिसमें प्रयोज्यों को कुछ ज्यामितीय डिजाइनों के बारे में सोचने को कहा गया। ऐसा करने पर देखा गया कि प्रयोज्यों की आँख व पलकों की माँसपेशीयों में क्रियाएँ बढ़ गई।

उपरोक्त प्रयोगों से यह स्पष्ट है कि चिंतन करते समय पेशीय क्रियाएँ होती है। मनोवैज्ञानिकों ने यह भी दिखलाया है कि इस तरह की माँसपेशीयों में पुनर्निवोन(feedback) द्वारा इनकी सक्रियता का ज्ञान होता हैं। चूँकि पुनर्निवेशन आन्तरिक होता है अतः व्यक्ति को इसका स्पष्ट ज्ञान नहीं होता है।

इस तरह के पुनर्निवेशन प्रक्रम को जिम्बार्डो तथ रुक (1977) ने सर्वो में केनिज्म की संज्ञा दी।

सर्वोमेकेनिज्म:- सर्वोमेकेनिज्म के चार भाग होते हैं, जिसके द्वारा चिंतन में की गई माँसपेशीय क्रियाओं का ज्ञान व्यक्ति को होता है -

(i) संसाधन निवेश:- संसाधन निवेश का तात्पर्य ऐसे उद्दीपकों से है जो व्यक्ति में स्नायुप्रवाह उत्पन्न करते हैं।

(ii) श्रुपुट:- उद्दीपक से स्नायु प्रवाह उत्पन्न होकर श्रुपुट में पहुँचता है जिसे तन्त्रिकातन्त्र कहा जाता है। इन आवेगों को तन्त्रिका तन्त्र में संगठित किया जाता है।

(iii) निर्गत:- स्नायु प्रवाह तन्त्रिका तन्त्र में संगठित होने के बाद माँसपेशीयों को उत्तेजित करते हैं फलस्वरुप व्यक्ति माँसपेशीय क्रियाओं को करता है।

(iv) पुनर्निवेशन:- की गई माँसपेशीय क्रियाओं कि क्रमबद्धता का निर्धारण उन सूचनाओं के आधार पर होता है। जिनका पुनर्निवेशन व्यक्ति को पुनः होता हैं।

ये चारों प्रक्रियाएँ चिन्तन के प्रमुख चरण माने गये है।

पेशीय सिद्धान्त की आलोचना:-

कुछ मनोवैज्ञानिक ने पेशीय सिद्धांत की अलोचना की है। इस आलोचना में यह कहा गया है कि यद्यपि चिंतन में अव्यक्त पेशीय क्रियाएँ घटित होती हैं। परन्तु ये क्रियाएँ सदैव आवश्यक नहीं होती है। वे तो किसी व्यक्ति का आकस्मिक परिवाह (ओवरफ्लो) मानी जा सकती है।

विनाके (1952) के अनुसार:- अव्यक्ति प्रतिक्रिया को यदि चिन्तन में आवश्यक मान भी लिया जाय तो भी यह नहीं माना जा सकता कि अव्यक्त प्रतिक्रिया ही चिन्तन है। इसके ठीक विपरीत, **जैकोबसन (1930)**

का कथन है कि अव्यक्त प्रतिक्रिया के बिना चिन्तन सम्भव ही नहीं है। स्पष्ट है कि परिधीय सिद्धान्त की कोई भी आलोचना केवल एक अनुमान ही है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि प्रयोगात्मक अध्ययनों द्वारा उपस्थित किये गये तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता कि केन्द्रीय सिद्धान्त बिल्कुल गलत है।

औसगुड (1953) के अनुसार दोनों ही सिद्धान्त सही है। क्योंकि चिन्तन में संवेदी क्रियाएँ तथा पेशीय क्रियायें दोनों ही होती है। जैसे एक बच्चे के चिन्तन में पेशीय क्रियायें (मोटर एक्टिविटीस) अधिक होती है जबकि एक व्यस्क के चिन्तन में संवेदी क्रियाएँ (केन्द्रीय क्रियाएँ) अधिक होती है। चिन्तन प्रक्रिया कि स्वरूप को स्पष्ट करने के लिये भविष्य में और अधिक शोध किये जाने आवश्यकता है।

6.3.3 जीन पियाजे का सिद्धान्त -

बच्चों और व्यस्कों के चिन्तन में स्पष्ट भेद होते है। वस्तुतः बाल चिन्तन के स्वरूप विकास की विभिन्न अवस्थाओं में बदलते हुये व्यस्क चिन्तन का स्वरूप प्राप्त करते हैं । व्यस्क तो अपनी भाषा के द्वारा यह बता देते हैं कि उन्होंने किसी समस्या का समाधान किस प्रकार किया किन्तु छोटे बच्चे जिनकी भाषा विकसित नहीं हुई है। यह बता पाने में अस्मर्थ रहते हैं ।

इस कारण उनके चिन्तन का अध्ययन कुछ अप्रत्यक्ष विधियों द्वारा किया जाता है। बालकों के संज्ञानात्मक विकास पर स्विस मनोवैज्ञानिक जीन पियाजे (1896-1980) के कार्य बडी सम्मान की दृष्टि से देखे जाते है। पियाजे के सज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त की सबसे मुख्य बात यह है कि पियाजे के अनुसार बालकों में वास्तविकता के स्वरुप के बारे में चिन्तन करने तथा उसे खोज करने की शक्ति, बालकों के परिपक्वता स्तर तथा उनके अनुभवों इन दोनों की अन्तः क्रिया द्वारा निर्धारित होती है। स्पष्ट है कि संज्ञानात्मक विकास की व्याख्या में पियाजे द्वारा व्यक्त की गई विचारधारा एक अन्तः क्रिया वादी विचार धारा का उदाहरण है।

पियाजे के संज्ञानात्मक विकास की व्याख्या करने से पहले इस सिद्धांत के कुछ महत्वपूर्ण संम्प्रत्ययों की व्याख्या करना आवश्यक है -

(1) **अनुकूलन-** पियाजे का कथन है कि बालकों में वातावरण के साथ सामंजस्य करने की जन्मजात प्रवृत्ति को अनुकूलन कहा जाता है। अनुकूलन मुख्यतः दो प्रक्रियाओं से होकर गुजरता हैं - प्रथम आत्मसात्व करण है जिसमें बालक समास्या के समाधान के लिए या वास्तविकता से सामंजस्य बिठाने के लिए पूर्व में सीखी गई योजनाओं या मानसिक प्रक्रियाओं का सहारा लेता है जैसे किसी वस्तु को उठाकर मुँह में रख लेना आत्म सात्वकरण का उदाहरण है क्योंकि इसमें बालक किसी वस्तु को एक खाने की क्रिया के साथ आत्मसात कर रहा है। इसी प्रकार जब किसी नयी सूचना से पुराने मनोबन्ध में परिवर्तन हो जाता है तो मनोबन्ध मे परिवर्तन को समायोजन कहते हैं । जैसे बच्चा पहले यही जानता था कि बिल्ली एक सुंदर मुलायम खाल वाली

खेलने की चीज है जो म्याऊँ बोलती है। जब किसी संवेदी स्रोत से उसे यह सूचना मिली की बिल्ली काटती भी है तो उसका पुराना मनोबन्ध बदल गया।

(2) **साम्यधारण-** साम्सधारण का तात्पर्य एक ऐसी प्रक्रिया से है जिसमें बालक आत्मसात्करण तथा समायोजन की प्रक्रियाओं के बीच एक संतुलन कायम करता है। यह एक प्रकार से आत्म नियन्त्रक प्रक्रिया है। पियाजे का कथन है कि जब बालक के सामने कोई ऐसी समास्या आती है जिसका उसे अनभव नहीं हुआ था तो उसमें एक प्रकार का संज्ञानात्मक असंतुलन उत्पन्न लाने के लिए वह आत्मसाम्वकरण या समायोजन या दोनो ही प्रक्रियाएँ प्रारम्भ कर देता है।

(3) **संरक्षण-** पियाजे के सिद्वांत में यह सबसें महत्वपूर्ण सम्प्रत्यय है जिस पर मनोवैज्ञानिकों ने सबसे ज्यादा शोध किये हैं। पियाजे के अनुसार संरक्षण से तात्पर्य वातावरण में परिवर्तन तथा स्थिरता दोनो को पहचानने एवं समझने की क्षमता तथा किसी वस्तु के रुप रंग में परिवर्तन को उस वस्तु के तत्व में परिवर्तन से अलग करने की क्षमता से होता है।

(4) **संज्ञानात्मक संरचना-** किसी बालक के मानसिक संगठन या क्षमताओं को ही संज्ञानात्मक संरचना कहा जाता है संज्ञानात्मक संरचना के आधार पर ही एक 5 साल के बालक को तीन साल के बालक से भिन्न समझा जाता है ।

(5) **मानसिक संक्रिया-** जब बालक किसी समस्या के समाधान का प्रयास करता है तब वह मानसिक संक्रिया करते समझा जाता है।

(6) **स्कीम्स-** स्कीम्स मानसिक प्रक्रिया का अभिव्यक्म रुप है। इसमें व्यवहारों के संगठित पैटर्न को जिसे आसानी से दोहराया जा सकता है, स्कीम्स कहा जाता है।

(7) **स्कीमा-** पियाजे के अनुसार स्कीमा से तात्पर्य एक ऐसी मानसिक संरचना से होता है, जिसका सामान्यीकरण किया जा सकता है।

(8) **विकेन्द्रण-** पियाजे के अनुसार विकेन्द्रण से तात्पर्य किसी वस्तु या चीज के बारे में वस्तुनिष्ठ या वास्तविक ढ़ग से सोचने की क्षमता से होता है। इनका कथन था कि 3-4 महीने के उम्र के बालक में विकेन्द्रण की क्षमता नहीं होती है। वह किसी वस्तु या चीज के बारे में आत्मकेन्द्रित ढ़ंग से सोचता है परन्तु कुछ उम्र बीतने पर जब वह 24-25 महीने का हो जाता है, उसमें वस्तु के बारे में वस्तुनिष्ठ ढंग या वास्तविक ढंग से सोचने की क्षमता विकसित हो जाती है।

जीन पियाजे ने बालकों के चिंतन या संज्ञानात्मक विकास की व्याख्या करने के लिए चार अवस्था सिद्धांत का प्रतिपादन किया हैः-

1. संवेदी पेशीय अवस्था (Sensory motor stage)
2. प्राक्संक्रियात्मक अवस्था (preoperational stage)
3. ठोस संक्रिया की अवस्था (stage of concreat opration)
4. औपचारिक संक्रिया की अवस्था(State of formal operation)

1. **संवेदी पेशीय अवस्था (**Sensory motor stage**)-** यह अवस्था जन्म से 1 या 2 वर्ष तक रहती हैं।इस अवस्था में बच्चा प्रधानतः शारीरिक क्रियाओं एवं उनके संवेदी प्रभावों के बीच सम्बन्धों का बोध प्राप्त करता है जैसे शारीरिक रुप से चीजों को इधर उधर करना, वस्तुओं की पहचान का प्रयास करना किसी चीज को पकड़कर मुँह में डालने का प्रयास करना आदि प्रमुख हैं।

पियाजे ने बताया कि इस अवस्था में शिशुओं का संज्ञानात्मक विकास छह उप अवस्थाओं से होकर गुजरता है-

i) प्रतिवर्त क्रियाओं की अवस्था (State of reflex action)- यह अवस्था जन्म से 30 दिन तक की होती है। इस अवस्था में बालक मात्र प्रतिवर्त क्रियाएँ करता है, जिनमें चूसने का प्रतिवर्त सबसे प्रबल होता है।

ii) प्रमुख वृत्तीय क्रियाओं की अवस्था (State of major circular reaction) - यह अवस्था एक महीने से 4 महीने तक की अवधि की होती है। इस अवस्था में शिशुओं की प्रतिवर्त क्रियाएँ उनकी अनुभूतियों द्वारा कुछ हद तक परिवर्तित होती हैं, व दोहरायी जाती हैं और एक दूसरे के साथ अधिक समन्वित हो जाती है।

iii) गौण वृत्तीय प्रक्रियाओं की अवस्था (State of secondary circular)- यह अवस्था 4 से 8 महीने तक की अवधि की होती है। इस अवस्था में शिशु वस्तुओं को छूने तथा उलटने-पलटने पर अधिक ध्यान देता है न कि अपने शरीर की प्रतिवर्त क्रियाओं पर। इसके अलावा वह जानबूझकर कुछ ऐसी क्रियाएँ करता है जो देखने में रोचक व मनोरंजक होती है।

iv) गौण स्कीमैटा के समन्वय की अवस्था (Co-ordination stage of secondary schemata)- यह अवस्था 8 से 12 महीने की अवधि की होती है। इस अवधि में बालक किसी लक्ष्य तथा उस तक पहुँचने के साधनों के मध्य विभेद करना सीख लेता है। जैसे- यदि किसी वस्तु को छिपा दिया जाय तो वह अन्य वस्तुओं को हटाते हुए उस वस्तु की खोज करता है, इसके बाद वह व्यस्कों के कार्यों का अनुकरण भी प्रारम्भ कर देता है। इस अवस्था में शिशु स्कीमा सम्प्रत्यय का उपयोग भी करने लगते हैं।

v) तृतीय वृत्तीय प्रक्रियाओं की अवस्था (stage of tertiary circular reactions)- यह अवस्था 12 महीने से 18 महीने की अवधि की होती है। इस अवस्था में बालक वस्तुओं के गुणों को प्रयत्न एवं त्रुटि के द्वारा सीखने का प्रयास करता है। बालकों में उत्सुकता अभिप्रेरक तीव्र हो जाता है।

vi) मानसिक संयोग द्वारा नये साधनों की खोज की अवस्था (invention of new means through mental combination) यह अन्तिम अवस्था है जो 18 से 24 महीने तक की अवधि की होती है। यह वह अवस्था है जिसमें बालक वस्तुओं के बारे में चिंतन प्रारम्भ कर देता है। इस अवस्था में बालक उन वस्तुओं के प्रति भी अनुक्रिया करता है, जो प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देती। इसे वस्तु स्थायित्व का गुण कहा जाता है।

2. **प्राक्संक्रियात्मक अवस्था (preoprational stage)-** संज्ञानात्मक विकास की यह अवस्था 2 से 7 साल तक रहती है। यह प्रारम्भिक बाल्यावस्था की अवस्था होती है। पियाजे ने इस अवस्था को दो उपअवस्थाओं में बाँटा है-

i) प्राक्सम्प्रत्यात्मक अवधि (preconceptual period)- यह अवस्था 2 से 4 साल की होती है। इस अवस्था में बालक वस्तु, शब्द, प्रतिमा आदि के प्रति पहचान विकसित कर लेते हैं। वे संकेत तथा चिन्ह के आधार पर पहचान विकसित करते हैं। जैसे जब बालक माँ की आवाज सुनता है तो उसके मन में माँ की एक प्रतिमा बन जाती है तथा माँ द्वारा कहे गये शब्द चिन्ह का काम करते हैं।

ii) अन्तर्दर्शीय अवधि (इन्ट्यूटिव पीरियड)- यह अवस्था 4 से 7 साल तक की होती है। इस अवस्था में बालकों की चिन्तन व तर्क करने की क्षमता विकसित हो जाती है। वह जोड़, गुणा, घटाना, भाग आदि मानसिक क्रियाओं को कर लेता है किन्तु इनके पीछे छिपे नियमों को नहीं समझ पाता।

3. **ठोस संक्रिया की अवस्था (**stage of concreat opration**) -** यह अवस्था 7 से 12 वर्ष की आयु तक रहती है। इस अवस्था में बच्चे क्रियाओं के एक लम्बे क्रम को मानसिक स्तर पर देखने की योग्यता प्राप्त कर लेते हैं। जैसे- वे बिना चले हुए इस बात का बोध कर लेते हैं कि स्कूल पहुँचने में किन-किन रास्तों से कितनी-कितनी दूर चलना है। इसी अवस्था में बच्चों को मात्रा, संख्या, वजन आदि का भी बोध हो जाता है। दूसरों के दृष्टिकोण से किसी विषय को सोचने की योग्यता भी इसी अवस्था में प्रकट होने लगती है अर्थात् अपने चिन्तन में आत्मकेन्द्रित होने के लक्षण कम होने लगते हैं।

4. **औपचारिक संक्रिया की अवस्था (**State of formal operation**) -** यह अवस्था 11-12 साल से प्रारम्भ होकर वयस्कावस्था तक रहती है। इस अवधि में किशोरों की चिन्तन की प्रक्रिया में अधिक लचीलापन आ जाता है वे किसी भी विषय पर विभिन्न दृष्टिकोणों से सोचने और कई प्रकार के समाधान ढूँढने के योग्य हो जाते हैं। इस अवस्था में किशोरों में निगमनात्मक ढंग से सोचने की क्षमता का विकास हो

जाता है अर्थात् अब वे आधार वाक्यों की सत्यता जाँचे बिना केवल तार्किक नियमों के अनुसार निष्कर्ष निकाल लेते हैं। इस अवस्था में बालकों में विकेन्द्रण की क्षमता का विकास हो जाता है अर्थात् वे किसी भी विषय का चिन्तन वस्तुनिष्ठ तथा वास्तविक ढंग से करना प्रारम्भ कर देते हैं। औपचारिक संक्रिया की अवस्था किशोरों के शिक्षा के स्तर से सीधे प्रभावित होती है। जिन बालकों का शिक्षा स्तर काफी नीचा होता है, उनमें औपचारिक संक्रियात्मक चिंतन की क्षमता काफी कम होती है परन्तु जिस बालक का शिक्षा स्तर काफी अच्छा होता है, उनमें औपचारिक संक्रियात्मक चिंतन की क्षमता अधिक होती है।

पियाजे के सिद्धान्त का मूल्यांकन :-

यद्यपि बच्चों के संज्ञानात्मक विकास की व्याख्या में पियाजे के सिद्धान्त की महत्वपूर्ण भूमिका है, तथापि कतिपय विद्वानों ने निम्न बिन्दुओं के आधार पर इसकी आलोचना की हैं-

1) आलोचकों का मत है कि बालकों के व्यवहारों के प्रेक्षण (Observation) के लिये पियाजे द्वारा अपनायी गई तकनीक या विधि अधिक आत्मनिष्ठ (Subjective) है।
2) आलोचकों का यह भी कहना है कि संज्ञानात्मक विकास की विभिन्न अवस्थाओं को एक-दूसरे से पूर्णतः स्वतंत्र नहीं माना जा सकता।
3) कुछ आलोचकों का मानना है कि पियाजे अपने सिद्धान्त में इस बात को स्पष्ट नहीं कर पाये हैं कि किसी संज्ञानात्मक संरचना के विकास में अनुभव या परिपक्वता की मात्रा कितनी होनी चाहिये अर्थात् उस बालक के अनुभव या परिपक्वता का स्तर क्या होना चाहिये।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि यद्यपि मनोविज्ञानिकों ने अनेक आधारों पर पियाजे के सिद्धान्त की आलोचना की है, किन्तु इन सबके बावजूद बच्चों के संज्ञानात्मक या बौद्धिक विकास की संतोषजनक व्याख्या करने में पियाजे के सिद्धान्त के महत्व को नकारा नहीं जा सकता।

6.4 सारांश

- चिन्तन के विभिन्न सिद्धान्तों के माध्यम से इस बात का विवेचन किया गया है कि चिंतन प्रक्रिया में अर्थात्: समस्या उत्पन्न होने से लेकर उसका समाधान होने तक इसमें कौन -कौन सी प्रक्रियायें सम्मिलित होती हैं तथा किस प्रकार से उनकी व्याख्या की जा सकती है।
- चिंतन के संबंध में निम्न तीन प्रमुख सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया-

    1. केन्द्रीय सिद्धान्त 2. गति या परिधीय सिद्धान्त 3. जीन पियाजे का सिद्धान्त

1. केन्द्रीय सिद्धान्त -इसके अनुसार चिन्तन का मुख्य आधार मस्तिष्क है। चिन्तन में केन्द्रीय प्रक्रियाओं जैसे संवेदी प्रक्रियाओं (Sensory Processes) तथा मस्तिष्क प्रक्रियाओं (Brain Processes) की भूमिका मुख्य रूप से होती है।

2. परिधीय या गति सिद्धान्त- इस सिद्धान्त के अनुसार चिंतन में मस्तिष्क का नहीं वरन् माँसपेशीय अनुक्रियाओं का स्थान मुख्य रूप से होता है।
3. जीन पियाजे का सिद्धान्त-
    - चिंतन के संबंध में स्विस मनोवैज्ञानिक द्वारा जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया, वह बच्चों के संज्ञानात्मक विकास से संबंध रखता है।
    - पियाजे का सिद्धान्त अन्तःक्रियावादी विचारधारा का उदाहरण है।
    - क्योंकि पियाजे का मानना है कि बच्चों में वास्तविकता के बारे में सोचने एवं खोज करने की शक्ति उनके परिपक्वता के स्तर एवं अनुभवों, इन दोनों की अन्तःक्रिया के द्वारा निर्धारित होती है।

पियाजे के सिद्धान्त के महत्वपूर्ण सम्प्रत्यय-

1. अनुकूलन (Adaptation)
2. साम्यधारण (Equilibration processes)
3. संरक्षण (Conservation)
4. संज्ञानात्मक संरचना (Cognitive sturucture)
5. मानसिक संक्रिया (Mental operations)
6. स्कीम्स (Schemes)
7. स्कीमा (Schema)
8. विकेन्द्रण (Decentering)

पियाजे के अनुसार संज्ञानात्मक विकास की अवस्थायें-

1. संवेदी पेशीय अवस्था
2. प्राक्संक्रियात्मक अवस्था
3. ठोस संक्रिया की अवस्था
4. औपचारिक संक्रिया की अवस्था

- चिंतन की संबंध में जो भी सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये है, उनमें से किसी भी एक सिद्धान्त को पूर्णरूपेण श्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता। सभी सिद्धान्तों का अपना-अपना महत्व है एवं उनकी कुछ सीमायें हैं।
- बालकों के बौद्धिक विकास की संतोषजनक व्याख्या करने में जीन पियाजे के सिद्धान्त का महत्वपूर्ण योगदान माना जाता है।

6.5 शब्दावली

- **पेशीय क्रियायें:** माँसपेशियों से सम्बद्ध क्रियाकलाप।

- **प्रयोज्य:** किसी प्रयोग में जो व्यक्ति सम्मिलित किये जाते हैं।
- **संज्ञानात्मक विकास:** बौद्धिक विकास अर्थात्- चिन्तन, तर्क, विश्लेषण इत्यादि की क्षमताओं का विकास।
- **निगमनात्मक चिन्तन:** दिये गये तथ्यों के आधार पर किसी सही निष्कर्ष पर पहुँचने की कोशिश करना। जैसे- कि यदि किसी व्यक्ति से पूछा जाये कि 10 में 2 जोड़ देने पर क्या उत्तर आयेगा, तो इसका उत्तर देने में निहित चिन्तन निगमनात्मक चिन्तन का उदाहरण होगा।

6.6 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

नीचे कुछ कथन दिये गये हैं। जो कथन सही है उनके आगे सही का निशान तथा जो गलत है उनके आगे क्रांस का निशान लगायें-

1) केन्द्रीय सिद्धान्त के अनुसार मस्तिष्क ही चिन्तन का आधार है। ( )
2) गति सिद्धान्त को व्यवस्थित रूप देने का श्रेय विलियम जेम्स को है। ( )
3) वाटसन के अनुसार हम लोग पूरे शरीर के सहारे चिन्तन क्रिया करते हैं। ( )
4) परिधीय सिद्धान्त में पेशीय क्रियाओं को महत्वपूर्ण माना गया है। ( )
5) सर्वोमेकनिज्म केन्द्रीय सिद्धान्त से संबंधित है। ( )
6) सर्वो मैकनिज्म के छः भाग होते हैं। ( )
7) बच्चों के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त का प्रतिपादन जीन पिया थे द्वारा किया गया। ( )
8) पियाजे एक स्विस मनोवैज्ञानिक हैं। ( )
9) पियाजे का सिद्धान्त अन्तः क्रियावादी विचारधारा का उदाहरण नहीं है। ( )
10) पियाजे के अनुसार बालकों में वास्तविकता के स्वरूप के बारे में चिन्तन करने एवं खोज करने की शक्ति उनके अनुभव एवं परिपक्वता के स्तर दोनों पर निर्भर करती हैं। ( )
11) पियाजे ने बालकों के संज्ञानात्मक विकास की चार अवस्थायें बतायी है। ( )
12) पियाजे के अनुसार बच्चों के संज्ञानात्मक विकास की अंतिम अवस्था औपचारिक संक्रिया की अवस्था है।( )
13) चिन्तन के निम्नांकित में से किस सिद्धान्त में मस्तिष्क के कार्यों की भूमिका पर बल डाला गया है?
    i) परिधीय सिद्धान्त ii) केन्द्रीय सिद्धान्त
    iii) पुनर्निवेशन सिद्धान्त iv) उपर्युक्त में से किसी भी सिद्धान्त में नहीं।
14) गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगों के आधार पर निम्नांकित में से किस सिद्धान्त का समर्थन किया है?
    i) परिधीय सिद्धान्त ii) केन्द्रीय सिद्धान्त
    iii) पुनर्निवेशन सिद्धान्त iv) पियाजे का सिद्धान्त

15) वाटसन ने चिन्तन में निम्नांकित में से किसके महत्व पर अधिक बल डाला है?

i) मस्तिष्कीय क्रियाएँ ii) पेशीय क्रियाएँ

iii) अमूर्त क्रियाएँ iv) मेरुदंडीय क्रियाएँ

16) किसके सिद्धान्त में चिन्तन को एक उपवाचिक बातचीत कहा गया है?

i) वाटसन ii) पियाजे iii) औसगुड iv) वर्दाइमर

17) पियाजे ने संवेदी पेशीय अवस्था को कितने उपभागों में बाँटा है?

i) पाँच ii) तीन iii) चार iv) छः

18) पियाजे के सिद्धान्त में संवेदी पेशीय अवस्था की सही अवधि कौन सी है?

i) दो से चार साल ii) जन्म से दो साल

iii) 4 से 5 साल iv) 5 से 11 साल

19) पियाजे ने प्राक संक्रियात्मक अवस्था की दो अवस्थाओं का वर्णन किया है, जो निम्नांकित में से कौन-सा है?

i) प्रतिवर्त क्रियाओं की अवस्था तथा गौण स्कीमैटा के समन्वय की अवस्था

ii) औपचारिक संक्रिया की अवस्था तथा ठोस संक्रिया की अवस्था

iii) अन्तर्हशी अवस्था तथा प्राकसंप्रत्यात्मक अवस्था

iv) प्रमुख तृतीय प्रतिक्रियाओं की अवस्था तथा गौण वृत्तीय प्रतिक्रियाओं की अवस्था।

उत्तर: 1) सही 2) गलत 3) सह 4) सही 5) गलत 6) गलत

7) सही 8) सही 9) गलत 10) सही 11) सही 12) सही

13) ii 14) ii 15) ii 16) i 17) iv 18) ii 19) iii

6.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- सिंह, अरूण कुमार, (2006) उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान। मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड जवाहर नगर, दिल्ली।
- सिंह, अरूण कुमार, (2006) संज्ञानात्मक मनोविज्ञान। मोतीलाल बनारसीदास, बंगालो रोड, जवाहर नगर दिल्ली।
- अर्जीमुर्र रहमान, (2003) सामान्य मनोविज्ञान: विषय और व्याख्या।
- श्रीवास्तव, रामजी, आलम, आसिम (2004) आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान।
- श्रीवास्तव, रामजी। (2003), संज्ञानात्मक मनोविज्ञान।

- 17.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. चिन्तन के किस सिद्धान्त को आप अधिक उपयुक्त मानते हैं? अपने उत्तर का प्रयोगात्मक समर्थन दें।
2. बच्चों के चिन्तन की व्याख्या में पियाजे के योगदानों की व्याख्या प्रस्तुत करें।
3. चिन्तन के परिधीय सिद्धान्त का वर्णन करें।

इकाई-7 निगमनात्मक एवं आगमनात्मक तर्कना, समस्या समाधान के उपागम एवं चरण, कक्षा-कक्ष समस्या समाधान(Deductive and Inductive Reasoning, Approaches and Steps of Problem Solving, Classroom Problem Solving)

इकाई संरचना

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 तर्कणा

- 7.3.1 तर्कणा: अर्थ एवं स्वरूप
- 7.3.2 तर्कणा के प्रकार
- 7.3.3 तर्कणा में महत्वपूर्ण सोपान

7.4 समस्या समाधान उपागम

- 7.4.1 समस्या समाधान से क्या अभिप्राय है ?
- 7.4.2 समस्या समाधान की विधियाँ
- 7.4.3 समस्या समाधान को प्रभावित करने वाले कारक
- 7.4.4 समस्या समाधान के सिद्धान्त
- 7.4.5 समस्या समाधान के चरण

7.5 सारांश

7.6 शब्दावली

7.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

7.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

7.9 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों, इससे पूर्व की इकाईयों में आप जान चुके हैं कि चितंन क्या है, इसका स्वरूप क्या है, चिंतन के भिन्न - भिन्न कौन से प्रकार है तथा चितंन की प्रक्रिया किस प्रकार होती है, चिन्तन प्रक्रिया द्वारा समस्या समाधान में किन - किन कारकों का महत्व होता है, इत्यादि। अब इसी क्रम को आगे बढ़ाते हुये तर्कणा एवं

समस्या समाधान क्या है ? इस विषय पर चर्चा की जायेगी। इकाई के शीर्षक को पढ़ने के बाद से ही आपके मन में संभवतया अनेक प्रश्न उत्पन्न हो रहे होंगे। जैसे कि -

- तर्कणा का अर्थ क्या है ?
- क्या तर्कणा का चिन्तन से कोई संबध है ?
- तर्क करने से क्या किसी समस्या का समाधान होता है ?
- यदि समस्या का समाधान होता है तो किन - किन विधियों से।
- समस्या समाधान के विभिन्न सोपान क्या है ?
- समस्या समाधान के सम्बन्ध में किन - किन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है, इत्यादि

तो जिज्ञासु विद्यार्थियों, इस इकाई को पढ़ने - समझने के बाद अपनी जिज्ञासाओं का समाधान पा सकते है।

तर्कणा को मनोवैज्ञानिकों ने वास्तविक चिन्तन कहा है। वास्तव में तर्कणा एक माध्यम है, जिसमें व्यक्ति तर्क वितर्क करते हुए अपने चिन्तन को क्रमबद्ध बनाता है तथा समस्या का समाधान करता है। तर्कणा एक प्रकार का समस्या समाधान व्यवहार है जिसमें व्यक्ति प्रस्तुत समस्या के सम्भावित उत्तरों की जाँच तार्किक ढंग से करता है तथा इनकी आलोचनात्मक व्याख्या प्रस्तुत करता है। तर्कणा में व्यक्ति अपनी ओर से कुछ नये समाधान प्रस्तुत करता है अथवा दिये गये तथ्यों में से ही समस्या के समाधान तक पहुँचने का प्रयास करता है। अतः स्पष्ट है कि तर्कणा व्यक्ति की वह योग्यता है जिसका उपयोग करके व्यक्ति अपनी समस्या का समाधान प्राप्त कर लेता है।

विद्यार्थियों, यदि प्रस्तुत ईकाई का अध्ययन करते समय आप एक बार चिंतन के अर्थ को भी पुनः स्मरण कर लें तो प्रस्तुत विषय को अधिक अच्छे ढंग से समझ सकते हैं। तो
आइये सर्वप्रथम चर्चा करते हैं, तर्कणा के अर्थ एवं स्वरूप के संबध में।

7.2 उद्देश्य

पाठकों, प्रस्तुत ईकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप -

- तर्कणा के अर्थ को स्पष्ट कर सकेंगे।
- तर्कणा की विभिन्न परिभाषाओं का विश्लेषण कर सकेंगे।
- तर्कणा की विभिन्न विशेषताओं का वर्णन कर सकेंगे।
- तर्कणा एवं चिन्तन के पारस्परिक संबध को सपष्ट कर सकेंगे।
- तर्कणा के विभिन्न प्रकारों का विवेचन कर सकेंगे।
- तर्क के माध्यम से आप अपने व्यवहारिक जीवन में किस प्रकार समस्या का समाधान कर सकते हैं, इसका अध्ययन कर सकेंगे।

- समस्या समाधान के स्वरूप के स्पष्ट कर सकेंगे।
- समस्या समाधान के विभिन्न उपायों का अध्ययन कर सकेंगे।
- समस्या समाधान को प्रभावित करने वाले कारकों का विश्लेषण कर सकेंगे।
- समस्या समाधान के विभिन्न सिद्धान्तों का अध्ययन कर सकेंगे।
- समस्या समाधान के महत्वपूर्ण चरणों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

हम अपने दैनिक जीवन में किस प्रकार सरलतापूर्वक अपनी समस्याओं का समाधान कर सकते है, इसका अध्ययन कर सकेंगे।

7.3 तर्कणा

7.3.1 तर्कणा: अर्थ एवं स्वरूप -

प्रिय पाठकों, तर्कणा वस्तुतः एक प्रकार का वास्तविक या यर्थाथ चितंन है, जिसमें व्यक्ति अपनी चिन्तन प्रक्रिया को एक क्रमबद्ध रूप प्रदान करता है तथा तर्क - विर्तक के माध्यम से किसी निष्कर्ष या परिणाम पर पहुँचता है। तर्कणा एक मानसिक प्रक्रिया है, जो चिन्तन का ही एक जटिल रूप है।

रेबर (1985) ने तर्कणा के दो अर्थ बताए हैं -

सामान्य अर्थ में तर्कणा एक प्रकार का चिन्तन है जिसकी प्रक्रिया तार्किक तथा संगत होती है। विशिष्ट अर्थ में तर्कणा समस्या समाधान व्यवहार है जहाँ अच्छीतरह से नर्मित परिकल्पनाओं की क्रमबद्ध रूप से जाँच की जाती है तथा समाधान तार्किक ढंग से निगमित किया जाता है। रेबर के विचार से स्पष्ट है कि तर्कणा में व्यक्ति किसी घटना या विशय के पक्ष तथा विपक्ष में तर्क करते हुए एक परिणाम पर पहुँचता अतः हम कह सकते हैं कि तर्क कार्य कारण में सम्बन्ध स्थापित करके हमें किसी निष्कर्ष पर पहुँचने या किसी समस्या का समाधान करने में सहायता देता है।

स्कीनर के अनुसार - ''तर्क शब्द का प्रयोग कारण और प्रभाव के सम्बन्ध की मानसिक स्वीकृति व्यक्त करने के लिए किया जाता है। यह किसी अवलोकित कारण से एक घटना की भविश्यवाणी या किसी अवलोकित घटना के किसी कारण का अनुमान हो सकती है।''

अतः तर्कणा के स्वरूप के बारे में हमें निम्नलिखित तथ्य प्राप्त होते हैं -

- तर्कणा चिन्तन एक प्रक्रिया है।
- तर्कणा में क्रमबद्धता पायी जाती है।
- तर्कणा में व्यक्ति पक्ष विपक्ष में तर्क करते हुए एक निष्चित निष्कर्ष पर पहुँचता है।

तर्कणा संबधी रेबर के विचारों से स्पष्ट होता है कि तर्कणा में व्यक्ति किसी विषय अथवा घटना के पक्ष एवं विपक्ष दोनों में तर्क करते हुये किसी एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचता हैं ।

उदाहरण - उदाहरणार्थ मान लें कि हम अपनी कलम कहीं पर रखकर भूल जाते हैं। हम विचार करते हैं कि हमने उससे अन्तिम बार कहाँ लिखा था। इस प्रकार तर्क करके हम इस निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं कि कलम पढ़ने के कमरे में होगा। हम वहाँ जाते हैं और वह हमें मिल जाता है। है। इस प्रकार हमारी समस्या का समाधान हो जाता है।

स्वरूप - तर्कणा के उपर्युक्त परिभाषाओं का विश्लेषण करने के उपरान्त इसके स्वरूप के संबध में कुछ तथ्य प्राप्त होते हैं। जिनको निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत वर्णित किया जा सकता है-

- तर्कणा चिन्तन की एक जटिल मानसिक प्रक्रिया है।
- तर्कणा क्रमबद्ध होती है।
- तर्कणा में व्यक्ति पक्ष - विपक्ष में तार्किक चिन्तन करते हुये एक निश्चित परिणाम पर पहुँचता है।

अतः विद्यार्थियों, उपर्युक्त विवेचन से आप समझ गये हो या नहीं कि तर्कणा से हमारा क्या अभिप्राय है।

7.3.2 तर्कणा के प्रकार -

मनोविज्ञानिकों द्वारा तर्कणा को मुख्य रूप से चार भागों में वर्गीकृत किया गया है, जो निम्नलिखित है -

1. निगमनात्मक तर्कणा (Deductive reasoning)
2. आगमनात्मक तर्कणा (Inductive reasoning)
3. आलोचनात्मक तर्कणा (Evaluative reasoning)
4. सादृश्यवाची तर्कणा (Analogical reasoning)

इनमें से निगमनात्मक एवं आगमनात्क तर्कणा का विवेचन निम्नानुसार है –

1) **निगमनात्मक तर्कणा -** ऐसी तर्कणा जिसमें व्यक्ति पहले से ज्ञात नियमों एवं तथ्यों को आधार मानकर किसी निश्चित निष्कर्ष या परिणाम पर पहुँचता है। उसे निगमनात्मक तर्कणा कहते है।

इस प्रकार की तर्कणा मनुष्य एवं पशु दोनों द्वारा की जाती है।

उदाहरण -

सभी मनुष्य मरणशील है।
ममता एक मनुष्य है।
इसलिये ममता मरणशील है।

2) **अगमनात्मक तर्कणा -** अगनात्मक तर्कणा, तर्कणा का दूसरा प्रकार है। जिसमें व्यक्ति को जो तथ्य दिये हुये होते है। उनमें चिन्तन के आधार पर कुछ और नये तथ्यों को जोड़ता है। तथा उसके बाद किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचता है। इसमें उस समय तक समस्या का समाधान नहीं हो पाता है। जब तक कि व्यक्ति दिये गये तथ्यों में अपनी ओर से कुछ नये तथ्यों को नहीं जोड़ता।

''अगनात्मक चिन्तन में चिन्तक अपनी कल्पना के आधार पर कुछ ऐसी नयी चीजों को जोड़ता है।'' जो प्रस्तुत आँकडों से सीधे ज्ञात नहीं कर लिये जा सकते है। जो व्यक्ति रचनात्मक पृवृति के होते है, उनमें अगनात्मक चिन्तन की प्रवृति अपेक्षाकृत अधिक होती है।

7.3.3 तर्कणा में महत्वपूर्ण सोपान -

पाठकों, अब आपके मन में यह प्रश्न उत्पन्न हो रहा होगा कि तर्कणा के सोपान या चरण से हमारा क्या आशय है? तर्कणा के अर्थ को स्पष्ट करते हुये हमने आपको बताया था कि तर्कणा में क्रमबद्धता का गुण पाया जाता है अर्थात चिन्तक एक निश्चित दिशा की में क्रमबद्ध ढंग से सोचते हुये समस्या समाधान की ओर अग्रसर होता है। अतः तर्कणा के चरण (सोपान) से तात्पर्य उन अवस्थाओं से है, जिनसे एक तार्किक चिन्तन करता हुआ व्यक्ति क्रमशः गुजरता है। तर्कणा के ये महत्वपूर्ण सोपान निम्नानुसार है।

1. समस्या की पहचान (Recognition of a problem)
2. आँकड़ों पर पहुँचना (collection of data)
3. अनुमान पर पहुँचना (Drawing inference)
4. अनुमान के अनुसार प्रयोग करना (To do experiment according to inference)
5. निर्णय करना (decision making)

1) समस्या की पहचान - विद्यार्थियों, तर्कणा का प्रथम चरण समस्या की पहचान करना है।

- क्योंकि तर्कणा भी एक प्रकार का समस्या समाधान व्यवहार है।
- जब तक हमारे सामने किसी प्रकार की कोई समस्या ही उत्पन्न नहीं होगी तो उसके समाधान के बारे में सोचने का तो प्रश्न ही नहीं उठतां
- अतः समाधान से पूर्व समस्या की पहचान एक अनिवार्य आवश्यकता है।

उदाहरण - जैसे कोई व्यक्ति अपना चश्मा कहीं रख कर भूल जाता है तो उसके सामने एक समस्या उत्पन्न होती है कि उसने अपना चश्मा कहाँ रख दिया है ?

2) **आँकड़ों पर पहुँचना** - तर्कणा का यह दूसरा महत्वपूर्ण सोपान है। जिसमें व्यक्ति समस्या समाधान से संबधित विभिन्न तथ्यों को एकत्रित करता है।

- आँकड़ा संग्रहण में व्यक्ति अपनी पिछली अर्थात् गत अनुभूतियों की सहायता लेता है।

उदाहरण - जैसे उपर्युक्त चश्मा खो जाने की समस्या उत्पन्न होने पर इस दूसरे चरणपा में वह तथ्यों के संग्रहण की प्रक्रिया में याद करेगा कि वह अपना चश्मा कहाँ रखता है ? हो सकता है उसके परिवार के किसी सदस्य ने कहीं पर रख दिया हो। अतः उनसे भी पूछ लेना उचित होगा। इत्यादि

3) **अनुमान पर पहुँचना** - तर्कणा के तृतीय चरण में व्यक्ति एकत्रित आँकड़ों के आधार पर किसी न किसी अनुमान पर पहुँचता है।

उदाहरण - जैसे उपर्युक्त उदाहरण में व्यक्ति यह अनुमान लगा सकता है कि ''मैं अपना चश्मा अपने दोस्त के घर भूल आया हूँगा।''

4) **अनुमान के अनुसार प्रयोग करना -** तर्कणा का यह चौथा चरण है।

- इसमें व्यक्ति अपने अनुमान के आधार पर अपने आगे के कार्यो को करता है।

उदाहरण - जैसे प्रस्तुत उदाहरण में व्यक्ति इस अनुमान पर पहुँचता है कि वह अपने मित्र के घर अपना चश्मा भूल आया है तो, तर्कणा, के द्वारा इस चतुर्थ सोपान में वह अपने मित्र के घर जाकर इस संबध में पूछताछ करेगा।

5) **निर्णय करना -** यह तर्कणा का अंतिम चरण है।

- इसमें व्यक्ति एक निर्णय लेकर निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचता जाता है।
- किन्तु विद्यार्थियों, यहाँ यह ध्यान देना आवश्यक है कि यह कोई जरूरी नहीं कि व्यक्ति द्वारा जो निर्णय लिया गया है उससे उनकी समस्या का समाधान हो ही जायेगा। समस्या का समाधान हो भी सकता है और नहीं भी।
- यदि समस्या पूर्ववत् बनी रहती है तो वह एकत्रित तथ्यों के आधार पर फिर किसी नये अनुमान पर पहुँचता है। उसके अनुसार कार्य करता है और पुनः एक निर्णय लेता है। इस प्रकार जब तक समस्या का समाधान नहीं हो जाता, तब तक यह क्रम लगातार चलता ही रहता है।

उदाहरण - जैसे उपर्युक्त उदाहरण में उस व्यक्ति को अपने मित्र के बारे में घर जाने पर भी चश्मा नहीं मिलता है क्योंकि मित्र के कहने पर पता चलता है कि यहाँ से तो वे चश्मा लेकर गया था, तो वह पुनः एकत्रित तथ्यों के अनुसार एक नये अनुमान पर पहुँचेगा और उनके अनुसार कार्य करेगां

अतः प्रिय पाठकों अब आप समझ गये होंगे कि तर्कणा एक ऐसी चिन्तन प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति समस्या समाधान के लिये तर्क - विर्तक करते हुये क्रमबद्ध ढंग से सोचता है और उसके आधार पर किसी निश्चित परिणाम या निष्कर्ष पर पहुँचता है।

7.4 समस्या समाधान उपागम

7.4.1 समस्या समाधान से क्या अभिप्राय है ?

जब व्यक्ति किसी लक्ष्य तक पहुँचना चाहता है और किसी कारण वश नहीं पहुँच पाता है तो उसके सामने एक समस्या उत्पन्न हो जाती है जसका समाधान उसे खोजना होता है जैसे यदि व्यक्ति अपने परिवार के साथ कहीं बाहर घूमने जाना चाहता है और घुमने जाने के लिए उसके पास कोई साधन उपलब्ध नहीं है तो यह उसके लिए

एक समस्या होगी। यदि वह इस कठिनाई पर विजय प्राप्त करके लक्ष्य तक पहुँच जाता है तो वह समस्या का समाधान कर लेगा। इस प्रकार समस्या सामाधान का अर्थ है - कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करके लक्ष्य को प्राप्त करना।

'' समस्या समाधान में विभिन्न अनुक्रियाओं को करने या उनमें से चुनने का प्रयास सम्मिलित होता है। ताकि वांछित लक्ष्यों की प्राप्ति की जा सके।'' (बेरोन, साइकोलॉजी, पृ0सं0 - 267)

''समस्या समाधान का अथ्र होता है, बाधाओं को दूर करने तथा लक्ष्यों की ओर पहुँचने के लिये चिन्तन प्रक्रियाओं का उपयोग करना।'' (साइकोलॉजी एन इन्ट्रोडक्षन, 1984, पृ0सं0- 239)

समस्या समाधान के निम्न तीन महत्वपूर्ण पहलू है -

1. मौलिक अवस्था (original state)
2. लक्ष्य अवस्था (goal state)
3. नियम (rules)

1) मौलिक अवस्था -समस्या के सामने आने पर उत्पन्न होने वाली अवस्था।

2) लक्ष्य अवस्था - लक्ष्य अर्थात समस्या समाधान के बाद उत्पन्न होने वाली अवस्था।

3) नियम - वह प्रक्रिया, जिससे व्यक्ति समस्या की मौलिक अवस्था से लक्ष्य अवस्था तक पहुँचता है।

उदाहरण:- जैसे किसी व्यक्ति को 5 किमी की दूरी तय करके रेलवे प्लेटफार्म पर जाना है, तो इस उदाहरण में समस्या की मौलिक अवस्था यह सोचना है कि मुझे अभी 5 किमी तक जाना है। लक्ष्य अवस्था में व्यक्ति प्लेटफार्म तक पहुँच जाता है। नियम में वे साधन आयेंगे, जिसके माध्यम से वह प्लेटफार्म तक पहुँचता है।

पाठकों, किसी समस्या का समाधान कब और किस प्रकार से होगा, यह उस समस्या के स्वरूप पर निर्भर करता है। कुछ समस्यायें आसान होती है, जिनका समाधान आसानी से हो जाता है। किन्तु कुछ समस्याओं का स्वरूप अत्यन्त जटिल होने के कारण उनके समाधान में भी समय लगता है।

7.4.2 समस्या समाधान की विधियाँ

प्रिय पाठकों, अब आप सोच रहे होंगे कि कोई समस्या उत्पन्न होन पर उसका समाधान किस प्रकार से किया जाता है? क्या मनोविज्ञान के क्षेत्र में समस्या समाधान की विशिष्ट तकनीकें या उपाय है? जी हाँ। समस्या समाधान के क्षेत्र में मनोवैज्ञानिकों द्वारा अनेक शोध अनुसंधान किये गये और उनके आधार पर किसी भी समस्या का समाधान करने में निम्न दो बिधियों या उपायों को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया -

1. यादृच्छिक अन्वेषण विधि (Random search method)
2. स्वतः शोध अन्वेषण विधि (Heuristnc search method)

इनका विवेचन निम्नानुसार है-

1. **यादृच्छिक अन्वेषण विधि -**

- ❖ इस तकनीक में व्यक्ति प्रयत्न एवं त्रुटि उपायों का सहारा लेते हुये समस्या का समाधान करता है।
- ❖ यादृच्छिक अन्वेषण विधि को भी दो भागों में वर्गीकृत किया गया है -

i) अक्रमबद्ध यादृच्छिक अन्वेषण विधि तथा

ii) क्रमबद्ध यादृच्छिक अन्वेषण विधि

i) **अक्रमबद्ध यादृच्छिक अन्वेषण विधि** - इस विधि में व्यक्ति किसी समस्या का समाधान करने के लिये सभी संभावित अनुक्रियाओं को अक्रमबद्ध विधि से अपनाता है अर्थात् कार्यो का न तो कोई निश्चित क्रम होता है। और न वह पहले से अपनायी गयी क्रियाविधियों का कोई रिकार्ड ही रखता है।

ii) **क्रमबद्ध यादृच्छिक अन्वेषण विधि -** इस विधि में समस्या का समाधान एक निश्चित क्रम में किया जाता है तथा समाधानकर्ता पहले से की गई अनुक्रियाओं का एक रिर्काड भी रखता है। जिससे कि पहले हुयी त्रृटियों के पुनः होने की संभवना नहीं होती है। यद्यपि क्रमबद्ध विधि में अक्रमबद्ध विधि की तुलना में समय अधिक लगता है, किन्तु यह विधि (क्रमबद्ध यादृच्छिक अन्वेषण विधि) अधिक प्रभावी है।

2. **स्वत: शोध अन्वेषण विधि -**

- ❖ इस विधि के अन्तर्गत व्यक्ति समस्या के समाधान के लिये केवल उन्हीं विकल्पों का चयन करता है जो उसे संगत लगते है। सभी संभावित विकल्पों की खोज नहीं की जाती है।
- ❖ इस विधि में इस बात की काई गारंटी नहीं होती कि समस्या का समाधान निश्चित रूप से ही हो जायेगा, लेकिन है, समाधान हो की संभावना बहुत रहती है।
- ❖ यादृच्छिक अन्वेषण विधि की तुलना में इनमें समय कम लगता है।
- ❖ स्वतः शोध अन्वेषण विधि में निम्न प्रविधियों को शामिल किया गया है।

(i) साधन साध्य विष्लेषण (Means – ends analysis)

(ii) पश्चगामी अन्वेषण (Backward search)

(iii) योजना विधि (Planing or Strategy Method)

(i) साधन साध्य विष्लेषण -

- ❖ इस विधि में मुख्य समस्या को अनेक छोटी - छोटी समस्याओं अर्थात् उपसमस्याओं में बॉट दिया जा जाता है।
- ❖ जब इन उपसमस्याओं को समाधान होता जाता है तो मौलिक अवस्था एवं लक्ष्य अवस्था के बीच अन्तर कम होता जाता है। अर्थात् व्यक्ति समस्या समाधान के अत्यन्त निकट पहुँच जाता है। इस विधि का उपयोग

मुख्य रूप से शतरंज की समस्या के समाधान में, गणितीय समस्याओं को हल करने में, कम्प्यूटर द्वारा किसी समस्या के समाधान हेतु कार्यक्रम तैयार करने में, इत्यादि में किया जाता है।

(ii) पश्चगामी अन्वेषण -

- ❖ इसमें व्यक्ति समस्या समाधान के लिये क्रमशः लक्ष्य अवस्था से मौलिक अवस्था तक पहुँचने का प्रयास करता है।
- ❖ इस विधि का निम्न स्थितियों में प्रयोग किया जाता है-
  - जब समस्या की लक्ष्य अवस्था में मौलिक अवस्था की तुलना में अधिक सूचनायें उपलब्ध रहती है।
  - जब समस्या समाधान के लिये अग्रगामी एवं पश्चगामी दोनों दिशाओं में प्रयास संभव हो।

(iii) योजना विधि -

- ❖ इस विधि में मुख्य समस्या को दो भागों में वर्गीकृत कर दिया जाता है -

  1. साधारण पहलू 2. जटिल पहलू

- ❖ व्यक्ति सर्वप्रथम साधारण पहलू का समाधान करता है। उसके बाद जटिल पहलू के समाधान की दिशा में अग्रसर होता है।

प्रिय विद्यार्थियों, अब आप समझ गये होंगे कि किसी समस्या का समाधान करने की अनेक विधियाँ हो सकती है जिनको व्यक्ति उन समस्याओं के स्वरूप एवं अपनी योग्यता के आधार पर अपनाता है।

7.4.3 समस्या समाधान को प्रभावित करने वाले कारक -

प्रिय पाठकों, अब आप सोच रहे होंगे कि समस्या समाधान के कारकों का क्या अर्थ है। कारक का अर्थ यहाँ पर यह है कि जब हम किसी समस्या का समाधान करते है तो वह समस्या समाधान किन - किन व्यक्तियों, वस्तुओं अथवा घटनाओं से प्रभावित होता है।

मनोवैज्ञानिकों ने समस्या समाधान को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों का विवेचन निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत किया है -

1. कार्यात्मक अटलता
2. मानसिक वृत्ति
3. प्रशिक्षण
4. दुश्चिंता
5. उद्भवन
6. समस्या का स्वरूप
7. अवधान विस्तार

8. विक्षिप्तिकरण

7.4.4 समस्या समाधान के सिद्धान्त -

समस्या समाधान हेतु मनोवैज्ञानिकों ने दो तरह के सिद्धान्तों की व्याख्या की है जिनमें प्रथम है गेस्टाल्ट वादियों का अन्तर्दृष्टि सिद्धान्त तथा दूसरा है समस्या समाधान का व्यवहार वादी दृष्टि कोंण

1) सीखने का अन्तर्दृष्टि सिद्धान्त-

गेस्टाल्टवादी मनोवैज्ञानिक कोहलर ने सन् 1925 में बन्दरों की मनोयोग्यता नायक पुस्तक प्रकाशित की, जिसमे पशु अधिगम के सम्बन्ध में जितनी भी बातें थी वे सब की सब थॉर्नडाइक का सिद्धान्त हीमाना जाता था जिसके अनुसार (1) अधिगम प्रयत्न एवं भूल की देन होता है। (2) शुद्ध अनुक्रिया की स्थापना धीरे-2 होती है। (3) अधिगम बहुत सी छोटी-2 अनुक्रियाओं और उनसे प्राप्त अनुभवों के परिणाम स्वरूप होता है। कोहलर ने इनमें से प्रत्येक का खण्डन किया।

कोहलर ने बच्चों, जानवरों तथा बन्दरों पर प्रयोग करको यह निश्चय किया कि ये अपनी समस्या का समाधान अन्तर्दृष्टि द्वारा खोजते हैं। थॉर्नडाइकने अपने पशुओं को प्रयोगात्मक अवस्था में ऐसी जटिल स्थिति में रखा था कि वे सूझ का परिचय दे ही नहीं सकते थे। उनके लिए प्रयास और त्रुटि करना ही सम्भव था। परन्तु कोहलर का कथन है कि इन जानवरों ने भी अन्तर्दृष्टि द्वारा ही सीखा था भूल एवं प्रयारन द्वारा नहीं। थॉर्नडाइक ने अपने प्रयोग में सीखने का वक्र तैयार किया था। इस वक्र में गेस्टाल्टवादियों के अनुसार जो आकस्मिक उतार है वह अन्तर्दृष्टि का ही सूचक है। यदि प्रयोज्य समस्या को पूरी तरह से समझते नहीं तो यह उतार नहीं आ सकता था।

कोहलर ने अधिगम के अन्तर्दृष्टि सिद्धान्त की व्याख्या करने के लिए एक प्रयोग किया -

इस प्रयोग में चिम्पैंजी के पिंजड़े की हद में केला लटका दिया गया केला इतनी ऊचाई पर था कि उस तक हलाँग लगाकर नहीं पहुँचा जा सकता था। पिंजडे में एक बॉम्स रखाया जिस पर चढकर छलाँग लगाने से केले तक पहुँचा जा सकता था। सुल्तान जो एक बुद्धिमान चिम्पैंजी था। एक बार सीधे उछला और असफल रहा फिर वह बॉम्स खींचकर लाया और उससे छलाँग लगाकर केला प्राप्त कर लिया। अब केले की ऊँचाई कुछ बढ़ादी गयी और पिंजड़े में दो बॉम्स रख दिये गये। सुल्तान ने एक बॉम्स के ऊपर दूसरा बॉम्सरखकर छलाँग लगाई और केले प्राप्त करलिये।

एक दूसरे अध्ययन में सुलतान पिंजड़े में दो छड़ियाँ पडी थी। एक मोटी तथा खोखली और दूसरी पतली। कोई एक छडी केले तक नहीं पहुँचती थी। सुलतान पहले हाथ बढ़ाकर केला पकड़ना चाहा। पर असफल रहा। फिर बारी-बारी से दोनों छड़ियों से दोभिय की किन्तु असफल रहा। फिर बारी-बारी से दोनों छड़ियों को हाथ में लेकर घुमाने लगा संयोगवश एक सीध में आ जाने के कारण दोनों छड़ियाँ जुड़ गयी और उसने उनसे खींचकर

केला प्राप्त कर लिया। अतः बॉम्स पर चढ़कर छलाँग लगाने से केला प्राप्त किया जा सकता है उसी प्रकार दो छड़ियों को जोड़कर खींचने से भी आसानी से केला खींचा जा सकता है। बन्दर की सूझ के उदाहरण हैं। जो साधन और साध्य के प्रत्यक्षात्मक सम्बन्धों से सम्बन्धित है। अतः सम्बन्धों का यही प्रत्यक्षात्मक बोध सूझ अथवा अन्तर्दृष्टि है जो गेस्टाल्टवादियों के अनुसार अधिगम अथवा समस्या समाधान का आधार है।

अन्तर्दृष्टि सिद्धन्त के नियम -

औस्गुड द्वारा स्थापित अन्तर्दृष्टि के कुछ नियम इस प्रकार हैं -

1. लक्ष्य तक पहुँचने के लिए पशु सबसे सीधा रास्ता अपनाता है। उपरोक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि जबतक कोई अड़चन नहीं हो पशु सीधे ही अपना लक्ष्य प्राप्त कर लेना चाहता है। यदि इसमें कोई अड़चन हुई तो इसे छोड़कर कोई दुसरी सरल मार्ग अपनाता है।
2. प्राणी तथा लक्ष्य के बीच किसी प्रकार की बाधा आ जाने पर एक प्रकार का तनाव उत्पन्न हो जाता है। कोहलर के अनुसार तनाव की मात्रा दो बातों पर निर्भर करती है (क) लक्ष्य प्राप्त करने की इच्छा कितनी प्रबल है (ख) लक्ष्य पर कितना ध्यान दिया गया है।
3. मनोवैज्ञानिक क्षेत्र अवियोजित तनावों का एक प्रतिरूप होता है जो लक्ष्य की आकर्षक शक्ति और भौगोलिक क्षेत्र की अवरोधक शक्तियों से निर्धारित होता है। प्राणी जैसे-जैसे लक्ष्य के समीप होता जाता है। लक्ष्य की आर्कषक शक्ति क्रमशः बढ़ती जाती है। भौगोलिक क्षेत्र में प्राणी के स्थान परिवर्तन से आकर्षक व अवरोघक शक्तियों का रूप बदलता जाता है।
4. लक्ष्य तक जाने वाले किसी मार्ग का बोध होते ही सम्पूर्ण मनोवैज्ञानिक क्षेत्र का अकस्मात पुनर्गठन हो जाता है और उसका तनाव घट जाता है। मनोवैज्ञानिक क्षेत्र के इसी अवस्मात पुनर्गठन से अन्तर्दृष्टि उप्पन्न होती है। अधिगम के गेस्टाल्ट अपवा अन्तर्दृष्टि सिद्धान्त की यही प्रमुख बात है।

अन्तर्दृष्टि के निर्धारक - अन्तर्दृष्टि को कोहलर तथा अन्य गेस्टाल्ट वाडियों ने व्यवहार का एक उद्गामी नियम माना है। अन्तर्दृष्टि के कुछ निर्धारक तत्वों की चर्चा इस प्रकार है -

1. अन्तर्दृष्टि की उत्पत्ती मनोवैज्ञानिक क्षेत्र के तनाव की मात्रा पर निर्भर करती है। यदि सम्भावना ज्यादा होती है। बहुत अधिक या बहुत कम तनाव अन्तर्दृष्टि की उत्पत्ति में बाधक का कार्य करते हैं।
2. भौगोलिक क्षेत्र में इधर उधर घूमने से अन्तर्दृष्टि की उत्पत्ति में सुविधा होती है। इससे स्पष्ट है कि यद्यपि गेस्टाल्टवादी अधिगम में व्यवहारिक स्तर पर प्रयत्न एवं मुल का नियम स्वीकार नहीं करते हैं फिर भी उनके मनोवैज्ञानिक क्षेत्र का पुनर्गठन कुछ अशों में इन क्रियाओं पर निर्भर करता है।
3. यदि कोई नया मार्ग अथवा यन्त्र लक्ष्य प्राप्ति में सहायक होता है तो अन्तर्दृष्टि के पुनर्गठन में सुविधा होती है।

4. मनोवैज्ञानिक क्षेत्र में यन्त्र और लक्ष्य की दूरी जितनी कम होगी या मार्ग लक्ष्य की सीध में जितना अधिक होगा, अन्तर्दृष्टि का पुनर्गठन उतना ही शीघ्र होगा।
5. विकसित प्राणियों में अन्तर्दृष्टि शीघ्र होती है।
6. सीखने की आयु, अनुभव और बुद्धि का प्रभाव भी अन्तर्दृष्टि पर देखा गया है।

अन्तर्दृष्ट्यात्मक व्यवहार के लक्षण -

समस्या समाधान के अन्तर्दृष्ट्यात्मक सिद्धान्त की निम्नलिखित विशेषताएँ उल्लेखनींय हैं -

1. आकास्मिकता - अन्तर्दृष्ट्यात्मक अधिगम अचानक होता है, जो तीव्र हर्ष और उल्लास प्रकट करता है।
2. अधिक धारण एवं अन्तरण - अन्तर्दृष्टि से सीखा गया व्यवहार लगभग स्थायी होता है और इसका धनात्मक अन्तरण भी अधिक होता है।
3. अन्तर्दृष्टि क्रमिक होती है - कोहलर ने भूल की सम्भावना मानी है तथा अच्छी और बुरी भूल में विभेद किया है। अच्छी भूल लक्ष्य के अनुकूल होती है।
4. सहजता - अन्तर्दृष्ट्यात्मक अधिगम में समाधान बड़े सहज ढंग से हो जाता है।
5. शुद्ध क्रिया और समाधान के स्थान - अन्तर्दृष्ट्यात्मक अधिगम में समाधान पहले होता है और शुद्ध क्रिया बाद में होती है। अतः यह समाधान मानसिक स्तर पर पहले होता है।
6. समाधान और नवीनता - यदि परिस्थिति नभी हो और समस्या का अचानक और सहज ढंग से समाधन हो जाय तो इसे अन्तर्दृष्टि का द्योतक मानेंगे।

अन्तर्दृष्टि सिद्धान्त का मूल्यांकन -

अन्तर्दृष्टि सिद्धान्त में अनेंक गुण होने के बावजूद इसके कुछ स्पस्ट दोष भी हैं जिसपर चर्चा किया जाना आवश्यक है।

1. अधिगम की व्याख्या में कोहलर ने अनैक काल्पनिक प्रत्ययों का प्रयोग किया है जिसकी स्पस्ट व्याख्या नहीं की गयी है।
2. इस बात के प्रमाण उपलब्ध हैं अन्तर्दृष्टि अचानक उत्पन्न न होकर क्रमिक रूप से विकसित होती है।
3. अधिगम में पूर्व अनुभवों के महत्व को नकारा नहीं जा सकता क्योंकि पूर्वअनुभव अन्तर्दृष्टि के विकास में सहायक है।
4. अन्तर्दृष्टि सिद्धान्त अधिगम की सम्पूर्ण व्याख्या के लिए एक पर्याप्त सिद्धान्त नहीं है।
5. अन्तर्दृष्टि सिद्धान्त उच्च मानसिक क्षमताओं वाले प्राणियों की समस्याओं के समाधान का सिद्धान्त है।

2) समस्या समाधान का व्यवहारवादी सिद्धान्त -

जब कोई समस्या प्राणी के सामने आती है तो वह उसका समाधान करना चाहता है, जिसके लिए वह आसान उपाय अपनाता है जैसे कोहलर के सुल्तान नामक चिम्पैंजी ने सर्वप्रथम हाथ बढाकर केले को खींचना चाहा। इसी प्रकार थॅार्नडाइक के प्रयोग में बिल्ली ने अपने भोजन की प्राप्ति के लिए पिंजड़े की छडों को खरोचना या इधर उधर कूदने का सहारा लिया। हल कर विचार है कि प्राणी में लक्ष्य तक पहुँचाने वाले अनेक व्यवहार होते है, परन्तु इनकी सम्भावना अलग-अलग होती है। एक ही लक्ष्य तक पहुँचाने वाले व्यवहारों की उप्पष्टि संभावना में भेद इसलिए होता है कि अतीत में इन व्यवहारों से किसी से अधिक सफलता मिली है और किसी से कम।

इसी वस्तु स्थिति के कारण हल ने आदत परिवार पद सोपान (हैबिट फेमिली हाइरारकी) की बात कही है।

आदत परिवार पद सोपान की कल्पना - इस पद सोपान के अन्तर्गत किसी अनुक्रिया में लक्ष्य की ओर बढ़ने की सम्भावना अधिक होती है और किसी में कम। अधिक या कम संभावना प्राणी के पुर्व अनुभवों पर निर्भर करती है। जिस अनुक्रिया द्वारा प्राणी अपने लक्ष्य को प्राप्त करलेता है उससे उसकी समस्या का समाधान हो जाता है अर्थात वह सीख लेता है जैसे सुल्तान चिम्पैंजी ने छोटी छड़ी को बड़ी छडी से जोडकर अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लिया। तो फिर बाद में वैसी परिस्थिति आने पर वह उसी पद्धति से अपना लक्ष्य प्राप्त कर लेगा। व्यवहार वादियों का कथन है कि प्राणी प्रयास और त्रुटि के आधार पर समस्या समाधान कर लता है।

समस्या समाधान में जितना विलम्ब होता जाता है। प्राणी विविध प्रकार की नयी-नयी क्रियाएँ प्रदर्शित करने लगता है। किसी परिस्थिति में सबसे पहले अनुक्रिया पदानुक्रम की सब से ऊपर वाली अनुक्रिया प्रकट होती है। यदि उसमे सफलता नहीं मिल सकी तो उसके बाद वाली अनुक्रियाएँ बारी-बारी से दोहराई जाती है जब तक कि समस्या का समाधान नहीं हो जाता है। जब परिस्थिति बार-बार दोहराई जाती है तो पदानुक्रम की अनुक्रियाओं की शान्ति में परिवर्तन होता है।

हल ने लक्ष्य प्रवणता सम्बन्धी विचार प्रस्तुत करके समस्या समाधान के व्यवहारवादी सिद्धान्त को और भी स्पस्ट कर दिया है। वास्तव में लक्ष्य प्रवणता तथा आउत परिवार पद सोपान को मिलाने पर ही व्यवहारवादी दृष्टिकोंण स्पस्ट होता है। लक्ष्य प्रवणता नियम में हल ने दावा किया है कि प्राणी जैसेन्ट लक्ष्य के निकट होता जाता है उसका कौशल क्रमशः बढ़ता जाता है। इस नियम से यह बात स्पष्ट है कि प्राणी लक्ष्य तक पहुँचने के लिए सबसे आसान मार्ग चुनता है अतः प्रत्येक प्राणी में विभिन्न प्रकार की क्रियाओं की अलग-अलग संभावनाएँ स्थापित हो जाती हैं, जो आदत पदानुक्रम के रूप में प्राणी की स्थायी सम्पत्ति हो जाती हैं।

व्यवहारवादियों के अनुसार किसी समस्या का सामना होने पर प्राणी एक ही बार में आदत परिवार पद सोपसन से कोई शुद्ध और सीधा मार्ग नहीं चुन लेता है बल्कि अप्रकट प्रयत्न एवं भूल स्वरूप की क्रियाएँ होने के पश्चात ही कोई क्रिया चुनी जाती है। बहुत सी परिस्थितियों में प्राणी बिल्कुल नये ढंग से समस्या का समाधान

करता है। गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिक कोहलर का चिम्पैंजी अपनी सूझ द्वारा केले को छड़ी से खींचने में सफल हुआ। व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक इस प्रकार के व्यवहार की व्याख्या सामान्यीकरण के आधार पर करते हैं।

कक्षा में समस्या समाधान -

मरसेल का कथन है - समस्या समाधान की विधि का शिक्षा में सर्वाधिक महत्व है। मनुष्य के जीवन में पग-पग पर समस्याएँ आती हैं, जिनका उन्हे तत्काल पर समाधान करना होता है। यह कार्य वे व्यक्ति सरलता से कर लेते हैं, जो इस प्रक्रिया में प्रशिक्षित होते हैं। बच्चों को इस प्रक्रिया में प्रशिक्षित करने का कार्य शिक्षकों का होता है। समस्या समाधान को चिन्तन एवं तर्क की तरह एक कला कहा जाता है, जिसका प्रशिक्षिण समस्या समाधान विधि के प्रयोग से सही रूप में दिया जा कसता है। इस विधि के द्वारा प्रशिक्षण करने से बच्चे समस्या समाधान की विधि में ही प्रशिक्षित नहीं होते अपितु वे जो कुछ भी सीखते हैं वह भी स्पष्ट रूप से लीखते हैं। इस विधि से सीखा गया ज्ञान स्थायी होता है यह उनकी रूची को जाग्रत करती है। समस्या समाधान विधि का प्रयोग छात्रों में आत्म-विश्वास का जागरण करता है तथा उन्हें स्वयं कार्य करने के लिए प्रेरित करता है। यह उनकी समस्याओं का समाधान करने के लिए वैज्ञानिक विधियों के प्रयोग का अनुभव प्रदान करती है। यह उनक विचारात्मक और सृजनात्मक चिन्तन एवं तार्किक शक्ति का विकास करती है। यह उनके भावी जीवन की समस्याओं का समाधान करने का प्रशिक्षण करने का प्रशिक्षण देती है।

इन लाभों के कारण क्रो एवं क्रो का सुझाव है- शिक्षकों को समस्या समाधान की वैज्ञानिक विधि में प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। केवल तभी वे शुद्ध स्पष्ट और निष्पक्ष चिन्तन का विकास करने के लिए छात्रों का प्रदर्शन कर सकेंगे।

बालकों को समस्या समाधान में प्रशिक्षित करने के उपाय -

पूर्व में किये गये वर्णन से यह स्पष्ट है कि चिन्तन प्रक्रिया की शुरुआत समस्या की उपस्थिति से होती है। इसके लिए परिवार व विद्यालयों को संयुक्त प्रयास करने होंगे। बच्चों में चिंन्तन शक्ति के विकास और इसके द्वारा समस्या समाधान के लिए विद्यालयों को निम्नलिखित उपाय करने चाहिए इन उपायों में जहाँ और जितना सहयोग परिवार कह सकें। उन्हें करना चाहिए।

i) **भाषा विकास** - चिन्तन का मूल आधार भाषा है। भाषा एवं विचार का अटूट सम्बन्ध है। विभिन्न शोध अध्ययनों में यह देखा गया है कि जिन बच्चों का भाषा पर जितना अधिकार होता है। वे उतने ही अच्छे तरीके से चिन्तन करते हैं। अतः बच्चों की चिन्तन शक्ति बढ़ाने के लिए सर्वप्रथम उन्हें भाषा का स्पष्ट ज्ञान कराना चाहिए।

ii) **स्पष्ट ज्ञान का विकास -** बच्चों को जितना अधिक ज्ञान होगा और सही व स्पष्ट होगा वे उस ज्ञान के आधार पर उतने ही अधिक अच्छे रूप से चिन्तन कर सकेंगे। अतः आवश्यक है कि प्रारम्भ से ही बच्चों को

संवेदना तथा प्रत्यक्षीकरण के अवसर दिए जाएँ और उन्हें विभिन्न प्रत्ययों का स्पष्ट ज्ञान कराया जाय। ज्ञान के निरन्तर प्रयोग से ज्ञान स्पष्ट व स्थायी होता है।

iii) **समस्या समाधान विधि का प्रयोग -** चिन्तन की शुरूआत प्रायः समस्या की शुरुआत के साथ होती है और समाधान के साथ समाप्त हो जाती है। अतः आवश्यक है कि बच्चों में जैसे ही ज्ञान का विकास हो और उन्हें विभिन्न प्रत्यय स्पष्ट हों वैसे ही उन्हें समस्या समाधान विधि से पढ़ाया लिखाया जाय। इस विधि से सीखने पर उन्हें बलात् चिन्तन करना पड़ेगा और वे समस्या समाधान करने में सक्षमा होंगे।

iv) **प्रेरणा, रूचि एवं अवधान का प्रयोग -** बच्चों में सीखने के लिए अभिप्रेरणा एवं रूचि जाग्रत की जाय। बच्चों में चिन्तन शक्ति के विकास के लिए इन सबका विकास आवश्यक है।

v) **विचारात्मक प्रश्नों का प्रयोग -** शिक्षकों को बच्चों को कुछ भी पढ़ाते सिखाते समय विचारात्मक प्रश्न पूछने चाहिए, जिनका उत्तर देने के लिए वे बरबस विचार कहेंगे और इसप्रकार वे धीरे-धीरे चिन्तन की कला में प्रशिक्षित हो जायेंगे।

vi) **स्वतन्त्र अभिव्यक्ति के अवसर -** बच्चे अपने दिन प्रतिदिन के जीवन मे अनेक समस्याओं का सामना करते हैं, इन समस्याओं के सम्बन्ध में छात्रों को स्वयं सोचने के अवसर देने चाहिए। इससे उन्हें स्वतन्त्र चिन्तन का अवसर मिलता है, जिससे वे चिन्तन कला में प्रशिक्षित होते हैं।

vii) **रटने की आदत पर नियन्त्रण -** रटने की आदत पड़जाने से बच्चे चिन्तन करना नहीं सीख पाते। अतः शिक्षकों को बच्चों की इस आदत पर नियन्त्रण करना चाहिए, वे जो कुछ पढ़ें-सीखें, समझ के साथ पढ़े-सीखे।

viii) **सह पाढ्यचारी क्रियाओं का आयोजन -** कुछ पाढ्यचारी क्रियाएँ ऐसी होती हैं, जिसमें बच्चों की रूचि होती है और जिनमें भाग लेने से उनमें चिन्तन शक्ति का विकास होता है जैसे विचार-विमर्श और वाद विवाद प्रतियोगिता। इनका आयोजन किया जाए।

ix) **उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य -** यदि परिवार एवं विद्यालयों में बच्चों के ऊपर कुछ उत्तर दायित्व पूर्ण कार्य सौपे जाएँ जो उनकी क्षमता के अनुरूप हों, तो इन्हें पूरा करने में उनके सामने स्वाभाविक रूप से कुछ समस्याएँ आयेंगी, उन समस्याओं का समाधान वे स्वयं करेंगे यही तो चिन्तन की क्रिया है।

अतः उपरोक्त विधियाँ अपना कद शिक्षक विद्यार्थियों को समस्या समाधान हेतु प्रशिक्षित कर सकते हैं।

7.4.5 समस्या समाधान के चरण -

मनोवैज्ञानिकों ने समस्या समाधान हेतु सात पदों का उल्लेख किया है -

1. **समस्या के स्वरूप का ज्ञान -** समस्या समाधान की पहली अवस्था समस्या के स्वरूप् को समझने की होती है। इस अवस्था में समस्या को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया जाता है क्योकि समस्या को ठीक-ठीक समझे बिना उसका समाधान प्राप्त नहीं किया जा सकता।
2. **परिभाषा सत्यापन की अवस्था -** दूसरी अवस्था में परिभाषा का सत्यापन किया जाता है। यदि परिभाषा ही गलत समझी गयी तो सारा समस्या समाधान गलत हो जायेगा। इस अवस्था में यह जाँच की जाती है कि परिभाषा को ठीक-ठीक समझा गया है या नहीं।
3. **समस्या को अपने स्मरण में रखना -** समस्या समाधान कीतीसरी अवस्था में समस्या को सदैव अपनी स्मृति में रखा जाता है।
4. **परिकल्पनाओं का निर्माण -** समस्या समाधान की इस चौथी अवस्था में व्यक्ति परिकल्पनाओं का निर्माण करता है। उदाहरणार्थ यदि कोई विद्यार्थी विद्यालय में प्रथम स्थान प्राप्त करना चाहता है तो उसे यह निश्चय करना होगा कि उसे क्या-क्या करना चाहिए जिससे विद्यालय में प्रथम आ सके जैसे वह निश्चय करता है कि वह अनावश्यक बात चीत में समय नष्ट नहीं करेगा, इधर उधर नहीं घूमेगा, आवश्यक परीक्षापयोगी अध्ययन सामग्री एकत्र करेगा तथा तरीक्षा में आने वाले सम्भावित प्रश्नों का निर्माण करके उनके उत्तर ढूँढने का प्रयास करेगा।
5. **मुख्य परिकल्पना का चयन -** निर्मित परिकल्पनाओं में से मुख्य परिकल्पना पर ज्यादा ध्यान केन्द्रित किया जाता है। जिससे समस्या का समाधान आसानी से प्राप्त हो सके।
6. **चुनी गयी परिकल्पना का सत्यात्पन -** समस्या समाधान की छठवीं अवस्था में व्यक्ति चिन्तन करता है कि क्या सभी परिकल्पनाएँ जाँच ली गई हैं व सर्वश्रेष्ठ परिकल्पना का चयन किया गया है।
7. **चुनी गयी सर्वोत्तम परिकल्पना को कार्यान्वित करना -** यह अवस्था समस्या समाधान करलेने की होती है। अर्थात वह समस्या का समाधान कर लेता है।
8. **कार्यान्वित समाधान का मूल्यांकन करना -** इस अवस्था में व्यक्ति समस्या समाधान के परिणाम का मूल्यांकन करता है । इस अवस्था में व्यक्ति समस्या में सम्मिलित चरणों के गुण दोष परखता है तथा इन चरणों के महत्वपूर्ण तथ्यों को पुनः प्राप्ति संकेतों के रूप में संचित करके रखता है कि उनका उपयोग अन्य समस्याओं के समाधान में भविष्य में कर सके।

स्पष्ट हुआ कि समस्या समाधान के कई चरण होते है। इन कदमों या चरणों का यदि व्यक्ति ठीक ढंग से उपयोग करता है तो समस्या का समाधान करने में उसे काफी सफलता मिलती है।

7.5 सारांश

तर्कणा एक प्रकार का यर्थाथ एवं क्रमबद्ध चिन्तन, जिसमें व्यक्ति तर्क - विर्तक द्वारा अपनी समस्या का समाधान करता है।

तर्कणा के प्रकार - तर्कणा के मनोवैज्ञानिकों ने निम्न चार प्रकार बताये है -

1. निगमनात्मक तर्कणा
2. आगमनात्मक तर्कणा
3. आलोचनात्मक तर्कणा
4. सादृश्यवाची तर्कणा

तर्कणा के महत्वपूर्ण सोपान - तर्कणा के निम्न पाँच प्रमुख सोपान बताये गये है -

1. समस्या की पहचान
2. आँकड़ों की पहुँचना
3. अनुमान पर पहुँचना
4. अनुमान के अनुसार प्रयोग करना
5. निर्णय करना

समस्या समाधान - ''समस्या समाधान का आशय कठिनाईयों पर विजय प्राप्तर करके लक्ष्य को प्राप्त करना।''

समस्या समाधान को प्रभावित करने वाले कारक - मनोवैज्ञानिकों ने समस्या समाधान को प्रभावित करने वाले निम्न 8 कारक बताये है-

1. कार्यात्मक अटलता
2. मानसिक वृत्ति
3. प्रशिक्षण
4. दुश्चिंता
5. उद्भवन
6. समस्या का स्वरूप
7. अवधान विस्तार
8. विक्षिप्तिकरण

समस्या समाधान के सिद्धान्त - समस्या समाधान के लिये मुख्य रूप से निम्न दो सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है -

1. गेस्टाल्टवादियों का अन्तर्दृष्टि सिद्धान्त

2. समस्या समाधान का व्यवहारवादी दृष्टिकोण

7.6 शब्दावली

- **तर्कणा:** क्रमबद्ध रूप से चिन्तन या तर्क - विर्तक करना।
- **अवलोकित:** जो देखी गई है।
- **अन्तर्दृष्टि:** अन्तर्ज्ञान
- **पुनर्गठन:** फिर से निर्माण होना
- **पदानुक्रम:** क्रमशः अर्थात एक निश्चित क्रम
- **निर्मित:** बनायी गई।
- **सत्यापन:** किसी घटना या वस्तु को सत्य साबित करना।
- **अन्वेषण:** ढूढना, खोजना।
- **संग्रहण:** एकत्रित या इकट्ठा करना।

7.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

नीचे कुछ कथन दिये गये है। जो कथन सही है, उनके आगे (√) का तथा जो गलत है, उनके समाने गलत (**X**) का चिन्ह लगायें –

1) तर्कणा में क्रमबद्धता का गुण नहीं पाया जाता है। ( )
2) निर्णय करना तर्कणा का प्रथम सोपान है। ( )
3) समस्या की पहचान, तर्कणा का प्रथम सोपान है। ( )
4) निर्णय करना तर्कणा का अंतिम सोपान है। ( )
5) सृजनात्मक चिन्तक, आगमनात्मक चिन्तन का प्रयोग अधिक करते है। ( )
6) निगमनात्मक तर्कणा, मानव एवं पशु दोनों के द्वारा की जाती है। ( )
7) तर्कणा एक प्रकार का वास्तविक चिन्तन है। ( )
8) तर्कणा के दूसरे चरण में व्यक्ति किसी अनुमान पर पहुँचता है। ( )
9) तर्कणा के दूसरे सोपान में आँकड़ों का संग्रहण किया जाता है। ( )
10) तर्कणा के द्वितीय सोपान में अनुमान के अनुसार प्रयोग किया जाता है। ( )
11) समस्या समाधान का अर्थ है, कठिनाईयों पर विजय प्राप्त करके लक्ष्य को प्राप्त करना। ( )
12) बेरोन के अनुसार समस्या समाधान में विभिन्न अनुक्रियाओं को करने या उनमें से चुनने का प्रयास सम्मिलित होता है ताकि वांछित लक्ष्यों की प्राप्ति की जा सके। ( )

13) यादृच्छिक अन्वेषण विधि क्रमबद्ध एवं अक्रमबद्ध दो प्रकार की होती है। ( )

14) स्वतः शोध अन्वेषण विधि में व्यक्ति समस्या समाधान करने के लिये सभी विकल्पों को ढूढता है। ( )

15) पश्चगामी अन्वेषण में व्यक्ति समस्या का समाधान करने के लिये मौलिक अवस्था से अपना प्रयास प्रारंभ करता है। ( )

16) समस्या का स्वरूप समस्या समाधान को प्रभावित नहीं करता है। ( )

17) दुश्चिंता भी समस्या समाधान को प्रभावित करती है। ( )

18) व्यक्ति की मानसिक वृत्ति समस्या समाधान को प्रभावित करती है। ( )

19) व्यक्ति की मानसिक वृत्ति समस्या समाधान को प्रभावित नहीं करती है। ( )

20) अन्तर्दृष्टि सिद्धान्त का प्रतिपादन गेस्टाटटवादियों द्वारा किया गया। ( )

उत्तर : 1) गलत 2) गलत 3) सही 4) सही 5) सही

6) सही 7) सही 8) गलत 9) सही 10) गलत

11) सही 12) सही 13) सही 14) गलत 15) गलत

16) गलत 17) सही 18) सही 19) गलत 20) सही

7.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- सिंह, अरूण कुमार, (2006) उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान। मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड जवाहर नगर, दिल्ली।
- सिंह, अरूण कुमार, (2006) संज्ञानात्मक मनोविज्ञान। मोतीलाल बनारसीदास, बंगालो रोड, जवाहर नगर दिल्ली।
- अर्जीमुर्र रहमान, (2003) सामान्य मनोविज्ञान: विषय और व्याख्या।
- श्रीवास्तव, रामजी, आलम, आसिम (2004) आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान।
- श्रीवास्तव, रामजी। (2003), संज्ञानात्मक मनोविज्ञान।

7.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. तर्कणा का स्वरूप स्पष्ट करते हुए आगमनात्मक तथा निगमनात्मक तर्कणा में अन्तर स्पष्ट करें।
2. समस्या समाधान में गेस्टाल्टवादियों द्वारा प्रस्तुत सिद्धान्त की व्याख्या करें।
3. समस्या समाधान में व्यवहारवादी दृष्टिकोण की व्याख्या प्रस्तुत करें।
4. बच्चों के समस्या समाधान हेतु प्रशिक्षित करने की उपायों का वर्णन करें।
5. समस्या समाधान में प्रयुक्त चरणों का वर्णन करें।

इकाई-8 बुद्धि का स्वरूप एवं सिद्धान्त, मानसिक आयु का सम्प्रत्यय और बुद्धि लब्धि (Nature and Theories of Intelligence, Concept of Mental Age and Intelligence Quotient (IQ)

इकाई संरचना

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 बुद्धि
8.3.1 बुद्धि: अर्थ एवं परिभाषा
8.3.2 बुद्धि का स्वरूप
8.3.3 बुद्धि के सिद्धान्त
8.4 मानसिक आयु
8.5 बुद्धि लब्धि
8.5.1 बुद्धि लब्धि (IQ) से क्या आशय है?
8.5.2 बुद्धि लब्धि के मान तथा उसका अर्थ
8.6 सारांश
8.7 शब्दावली
8.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
8.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
8.10 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों इससे पूर्व की इकाइयों में आप मनुष्य की विभिन्न मानसिक क्षमताओं जैसे कि चिन्तन, तर्क करना, किसी समस्या का समाधान करना इत्यादि का अध्ययन कर चुके हो और उन्हें समझ चुके हो। प्रस्तुत इकाई में हमारे अध्ययन का विषय बुद्धि, इसके विभिन्न सिद्धान्त, मानसिक आयु तथा बुद्धि लब्धि है। ये सभी सम्प्रव्यय क्या है तथा किस प्रकार हमारे जीवन एवं नित्यप्रति के कार्यो को प्रभावित करते है। इसका अध्ययन प्रस्तुत इकाई में किया जायेगा।

बुद्धि व्यक्ति की जन्मजात मानसिक क्षमता है। बुद्धि एक ऐसा शब्द है, जिससे हम सभी परिचित हैं। पढ़े-लिखे हों या अनपढ़, हम सभी के जीवन में बुद्धि का महत्वपूर्ण स्थान है, यह ईश्वर-प्रदत्त वह योग्यता है, जो उसके

प्रत्येक कार्य में पायी जाती है। सामान्यतः बुद्धि को बुद्धिमान व्यक्ति के साथ सहसंबंधित करके जाना समझा जाता है, जो व्यक्ति जितनी ही सुगमता एवं कुशलतापूर्वक नित्यप्रति जीवन में घटित होने वाली घटनाओं एवं कार्यों का सामना कर लेता है, वह उतना ही बुद्धिमान माना जाता है अर्थात् उसकी बुद्धि उतनी ही तीव्र होती है; कुछ विद्वानों ने बुद्धि को तर्क, निर्णय एवं आत्मआलोचना करने की योग्यता माना है किन्तु परम्परागत रूप में बुद्धि विभिन्न मानसिक गुणों का समुच्चय है जो विभिन्न परिस्थितियों में सघन रूप से कार्य करती है तथा व्यक्ति की समस्याओं का समाधान करने तथा उद्देश्यों की प्राप्ति की ओर ले जाती है।

'बुद्धि' वस्तुतः क्या है, यह किन-किन गुणों का समुच्चय है, इसकी संतोषजनक एवं वैज्ञानिक व्याख्या करने के लिये मनोवैज्ञानिकों ने विभिन्न सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया तथा साथ ही तैथिक आयु के समान व्यक्तियों की एक मानसिक आयु भी होती है। इस धारणा का विकास हुआ। फिर एक और प्रश्न मनोवैज्ञानिकों के सामने उत्पन्न हुआ कि कौन व्यक्ति कितना बुद्धिमान है, इस बात का निर्धारण किस प्रकार से हो, तो विद्यार्थियों, फिर बुद्धिलब्धि के सम्प्रत्यय का विकास हुआ।

तो आइये, सबसे पहले हम चर्चा करते है कि बुद्धि से मनोवैज्ञानिकों का क्या आशय है? इसके विभिन्न आयाम क्या है प्राणी की कौन-कौन सी क्षमताओं को बुद्धि के अन्तर्गत शामिल किया जा सकता है।

8.2 उद्देश्य

प्रिय विद्यार्थियों, प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- बुद्धि क्या है? इसे स्पष्ट कर सकेंगे।
- बुद्धि के स्वरूप का विश्लेषण कर सकेंगे।
- बुद्धि के विभिन्न सिद्धान्तों का अध्ययन कर सकेंगे।
- मानसिक आयु के अर्थ को स्पष्ट कर सकेंगे।
- बुद्धिलब्धि क्या है? इसका वर्णन कर सकेंगे।

8.3 बुद्धि

8.3.1 बुद्धिः अर्थ एवं परिभाषा -

बुद्धि एक ऐसा सामान्य शब्द है,जिसका प्रयोग हम साधारण बोलचाल की भाषा में लगभग रोज ही करते है। बुद्धि को सामान्यतः सोचने समझने और सीखने एवं निर्णय करने की शक्ति के रूप में देखा समझा जाता है। परन्तु वास्तव में बुद्धि इससे कुछ अधिक होती है। बुद्धि के विषय में सर्वप्रथम भारतीय दार्शनिकों ने चिंतन किया था। प्राचीन भारतीय दार्शनिकों के अनुसार मनुष्य के अन्तःकरण के तीन अंग हैं मन ,बुद्धि, और अहंकार । इनमें मन वाह्य इन्द्रियों और बुद्धि के बीच संयोजक का कार्य करता है। मन के संयोग से बाहय इन्द्रियॉ क्रियाशील होती है

और मन के संयोग से ही बुद्धि क्रियाशील होती है। इनके अनुसार इन्द्रियों से प्राप्त ज्ञान मन के द्वारा बुद्धि तक पहुँचती है। बुद्धि इसमें कॉट-छॉट करके इसे अहं से जोड़ती है और अन्त में इसे सूक्ष्म शरीर पर पहुँचा देती है। जहॉ वह संचित हो जाती है। जब कभी प्राणी विशेष को इस ज्ञान की आवश्यकता होती है। तो उसकी बुद्धि उसे सूक्ष्म शरीर से मन पर पहॅुचा देती है औंर मन प्राणी को तदनुकूल क्रियाशील कर देती है।

बुद्धि क्या है? तथा इसका स्वरूप कैसा है? इस सन्दर्भ में आधुनिक मनोवैज्ञानिकों में सदा से ही मतभेद रहा है। अलग अगल मनोवैज्ञानिकों न बुद्धि के अपने-अपने ढंग से समझने का प्रयास किया है किन्तु सभी एकमत होकर अभी तक बुद्धि के वास्तविक स्वरूप को स्पष्ट नहीं कर सकें हैं। परन्तु यह सत्य है कि इस विवाद के बाद भी मनोवैज्ञानिक निरन्तर प्रयास करते हैं और बड़ी महत्वपूर्ण और उपयोगी जानकारी बुद्धि के संबंध में आज उपलब्ध है। सबसे पहले बोरिंग (1923) ने बुद्धि की एक औपचारिक परिभाषा दी और कहा कि ‘‘बुद्धि परीक्षण जो मापता है, वही बुद्धि है।‘‘

किन्तु इस परिभाषा से बुद्धि के स्वरूप के बारे में स्पष्ट ज्ञान प्राप्त नहीं होता है । बुद्धि मापन के बहुत सारे परीक्षण हैं। इनमें से किस परीक्षण द्वारा किये गये मापन को बुद्धि कहा जायेगा। बोरिंग के बाद अनेकों मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि को भिन्न - भिन्न ढंग से परिभाषित करने की कोशिश की है। इन परिभाषाओं के विश्लेषण के आधार पर इन परिभाषाओं को इस प्रकार श्रेणीगत किया जा सकता है:-

1) प्रथम श्रेणी की परिभाषाओं में बुद्धि सीखने की क्षमता का नाम है। तथा जो सीखा जा चुका है , उसे नई दशाओं में प्रयोग करने का गुण है । इस प्रकार मनोवैज्ञानिको का एक वर्ग, जिनमें बक्रिंघम, डारविन तथा एबिंगहास के नाम प्रमुख है, यह मानते है कि बुद्धि सीखने की क्षमता है।
2) द्वितीय श्रेणी की परिभाषाओं में बुद्धि को वातावरण के साथ समायोजन करने की क्षमता के रूप में परिभाषित किया गया है। जीवन की नई परिस्थितियों में व्यवस्थित होने तथा नई समस्याओं को सुलझाने में बुद्धि की क्षमता को कोल्विन,स्टर्न तथ पियाजे ने महत्व दिया है।
3) मनोवैज्ञानिकों का एक ऐसा समूह भी है जो अमूर्त चिंतन को ही बुद्धि का प्रधान लक्षण मानता है। इन मनोवैज्ञानिकों ने अपनी परिभाषाओं में बुद्धि को अमूर्त चिंतन करने की क्षमता के रूप में परिभाषित किया है । फ्रांस के मनोवैज्ञानिक बिने तथा अमेरिका के टरमन जैसे मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि के द्वारा अमूर्त चिंतन करने की क्षमता, या प्रतीको द्वारा किसी समस्या के समाधान को प्राप्त करने पर बल दिया है। इसी प्रकार गिलफोर्ड ,स्टोडर्ड तथा वेक्सलर के अतिरिक्त अन्य बहुत से मनोवैज्ञानिक हैं, जिन्होंने बुद्धि के किसी न किसी पक्ष को लेकर परिभाषायें निर्मित की हैं। यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा कि आज जितने मनोवैज्ञानिक हैं, बुद्धि की उतनी ही परिभाषाएँ हैं। इन कारणों से ही इसे विवादास्प्रद सम्प्रत्यय माना जाता है।

8.3.2 बुद्धि का स्वरूप -

बुद्धि के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए कुछ परिभाषाओं पर ध्यान दिया जाना आवश्यक प्रतीत होता है:-

वेक्सलर (1939) के अनुसार:- ''बुद्धि एक समुच्चय या सार्वजनिक क्षमता है, जिससे सहारे व्यक्ति उद्देश्य पूर्ण क्रिया करता है, विवेकशील चिंतन करता है तथा वातावरण के साथ प्रभावकारी ढंग से समायोजन करता है। ''

बकिंघम के अनुसार:-''बुद्धि एक सीखने की योग्यता हैं।''

स्टर्न के अनुसार:-''बुद्धि एक सामान्य योग्यता है,जिसके सहारे व्यक्ति नई परिस्थितियों में अपने विचारों को जानबूझकर समायोजित करता है।''

कोलविन के अनुसार:- ''यदि व्यक्ति ने अपने वातावरण के साथ सामंजस्य करना सीख लिया है या सीखता है, तो उसमें बुद्धि है।''

रॉबिन्स तथा रॉबिन्स (1965) के अनुसार:- ''बुद्धि से तात्पर्य संज्ञानात्मक व्यवहारों के सम्पूर्ण वर्ग से होता है जो व्यक्ति में सूझ द्वारा समस्या समाधान करने की क्षमता, नयी परिस्थितियों के साथ समायोजन करने की क्षमता, अमूर्त रूप से सोचने की क्षमता तथा अनुभवों से लाभ उठाने की क्षमता को दिखलाता है।

निसेर तथा उनके सहयोगियों (1996) के अनुसार:- '' बुद्धि जटिल विचारों को समझने, पर्यावरण के साथ प्रभावी ढंग से समायोजन करने अनुभवों से सीखने, विभिन्न तरह की तर्क में सम्मिलित होने और चिंतन द्वारा बाधाओं को दूर करने की क्षमता होती है।

स्टोटार्ड (1941) के अनुसार:- ''बुद्धि उन क्रियाओं को समझने की क्षमता है, जिसकी विशेषताएँ -

1. कठिनता
2. जटिलता
3. अमूर्तता
4. मितव्ययिता
5. किसी लक्ष्य के प्रति अनुकूलनशीलता
6. सामाजिक मान तथा
7. मौलिकता की उत्पत्ति होती है। और कुछ परिस्थिति में वैसी क्रियाओं को जो शक्ति की एकाग्रता तथा सांवेगिक कारकों के प्रति प्रतिरोध दिखलाता है, करने की प्रेरणा देती है।

थॉर्नडाइक के अनुसार:- ''उत्तम प्रतिक्रिया करने और नवीन परिस्थितियों में सामंजस्य करने की योग्यता बुद्धि है।''

बिने के अनुसार:-''बुद्धि इन चार शब्दों में निहित है- ज्ञान,आविष्कार,निर्देश और आलोचना।''

फ्रीमैन के अनुसार:-जिस अनुपात में व्यक्ति में अमूर्त चिंतन करने की योग्यता है, उसी अनुपात में व्यक्ति बुद्धिमान है। ‘‘ **बर्ट** के अनुसार:-‘‘बुद्धि जन्मजात मानसिक क्षमता है।‘‘

बुद्धि की उपरोक्त परिभाषाओं में वस्तुतः पारस्पारिक विरोध नहीं हैं वरन् इनकी एक विशेषता यह है कि ये सभी बुद्धि को किसी न किसी क्षमता के रूप में परिभाषित करती हैं । बुद्धि से संबंधित उपरोक्त सभी उदाहरण महत्वपूर्ण हैं। क्योंकि ये सभी विभिन्न दृष्टिकोणों से बुद्धि के स्वरूप पर प्रकाश डालते हैं और उनकी किसी न किसी रूप में व्याख्या करते है।

इन परिभाषाओं के आधार पर हमें बुद्धि की निम्नलिखित विशेषताओं का पता चलता है-

1) बुद्धि व्यक्ति की जन्मजात शक्ति हैं।
2) बुद्धि व्यक्ति को वातावरण के साथ प्रभावकारी ढंग सामंजस्य करने की क्षमता प्रदान करती है।
3) बुद्धि व्यक्ति को अमूर्त चिंतन करने की योग्यता प्रदान करती है।
4) बुद्धि व्यक्ति को उद्देश्य पूर्ण क्रियायेंक रने के लिए प्रेरित करती है जो व्यक्ति जितनी ही अधिक उद्देश्यपूर्ण क्रियायें करता है, उसे उतना ही अधिक बुद्धिमान समझा जाता है।
5) बुद्धि व्यक्ति को पूराने अनुभवों से लाभ उठाने की योग्यता प्रदान करती है।
6) एक से अधिक मानसिक गुणों का समूह बुद्धि है।
7) बुद्धि व्यक्ति को किसी भी समस्या के समाधान में अन्तर्दृष्टि प्रदान करती है।
8) बुद्धि की सहायता से ही व्यक्ति विवेकपूर्ण, तर्कपूर्ण एवं संगत ढंग से विभिन्न विषयों पर चिंतन कर पाता है।

उपरोक्त वर्णन से हमें बुद्धि के स्वरूप का पता चलता है। कुछ ऐसा है जिसे किसी एक क्षमता के आधार पर समझना संभव नहीं होता है। क्योंकि बुद्धि अलग-अलग क्षमताओं तथा मानसिक योग्यताओं का एक समुच्चय होती हैं।

8.3.3 बुद्धि के सिद्धान्त -

जिज्ञासु पाठकों, बुद्धि के विभिन्न सिद्धान्तों की व्याख्या करने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि बुद्धि के सिद्धान्त से हमारा क्या आशय है?

बुद्धि का स्वरूप क्या है और बुद्धि कैसे कार्य करती है? इस संबंध में भिन्न-भिन्न मनोवैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगों के आधार पर भिन्न -भिन्न निष्कर्ष निकाले है। इन निष्कर्षों को बुद्धि के सिद्धान्त कहा जाता है। ये सिद्धान्त बुद्धि के स्वरूप एंव उसकी कार्य विधि पर प्रकाश डालते है इन सिद्धान्तों को मुख्यतः दो श्रेणियों में विभांजित किया जा सकता है।

A) कारकीय सिद्धान्त
B) प्रक्रिया उन्मुखी सिद्धान्त

A) **कारकीय सिद्धान्तः-** कारकीय सिद्धान्त के अन्तर्गत दो प्रकार के मनोवैज्ञानिकों के समूह हैं। एक प्रकार के मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि सामान्य एवं संगठित क्षमता है। स्पीयरमैन इस समूह के अग्रणी मनोवैज्ञानिक हैं, जिनका मत है, कि किसी भी संज्ञानात्मक कार्य के निष्पादन का आधार प्राथमिक सामान्य कारक होता हैं इस समूह के मनोवैज्ञानिकों को पिण्डक कहा जाता है।

दूसरे प्रकार के मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि बुद्धि बहुत सारी पृथक मानसिक क्षमताओं, जो करीब - करीब स्वतंत्र रूप से क्रियाशील होते है, का योग होता है। इसमें थर्स्टन, गिलफोर्ड, गार्डनर, कैटेल, थॉनडाइक,वर्नर मनोवैज्ञानिकों के नाम प्रमुख हैं। इस समूह के मनोवैज्ञानिकों को विभाजक कहा जाता है। पिण्डक तथा विभाजक समूह के मनोवैज्ञानिकों के सिद्धान्तों का वर्णन इस प्रकार है-

1) **स्पीयरमैन का द्विकारक सिद्धान्तः-** द्विकारक सिद्धान्त का प्रतिपादन ब्रिटेन के मनोवैज्ञानिक स्पीयरमैन ने 1904 में किया। उनके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में दो प्रकार की बुद्धि होती हैं सामान्य तथा विशिष्ट अर्थात् इसमें दो कारक शामिल होते हैं। सामान्य कारक तथा विशिष्ट कारक।

(i) सामान्य कारक:- स्पीयरमैन ने सामान्य कारक को जी कारक की संज्ञा दी है। जी कारक से तात्पर्य यह होता है कि प्रत्येक व्यक्ति में कोई भी मानसिक कार्य करने की एक सामान्य क्षमता भिन्न -2 मात्रा में मौजूद होती है। इसकी कुछ प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार है।

- यह योग्यता सभी व्यक्तियों में कम या अधिक मात्रा में मौजूद होती है।
- यह मानसिक योग्यता जन्मजात होती है।
- जीवन की किसी भी अवधि में इसमें परिवर्तन संभव नहीं है। अर्थात् चह सदैव एक सी रहती है अर्थात् आदि का प्रभाव नहीं पड़ता है।

(ii) विशिष्ट कारक:- स्पीयरमैन ने विशिष्ट कारक को एस कारक की संज्ञा दी है। एस कारक से तात्पर्य यह होता है कि प्रत्येक मानसिक कार्य को करने मे कुछ विशिष्टता की जरूरत होती है ,क्योंकि प्रत्येक मानसिक कार्य एक दूसरे से कुछ न कुछ भिन्न होता है। इसकी कुछ प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार है-

- एस कारक की मात्रा भिन्न-2 कार्यो के लिए निश्चित नहीं होती है। एक कार्य के लिए एक व्यक्ति में एस कारक की मात्रा अधिक हो सकती है परन्तु उसी व्यक्ति में दूसरे कार्यो के लिए एस कारक की मात्रा कम हो सकती है, जैसे एक व्यक्ति में कविताएँ लिखने का एस कारक अधिक हो सकता है परन्तु उसी व्यक्ति में पेन्टिंग की क्रिया के लिए जिस एस कारक की जरूरत है, उसकी मात्रा कुछ कम हो सकती है।
- एस कारक पर व्यक्ति के प्रशिक्षण, पूर्व अनुभूतियों आदि का काफी अधिक प्रभाव पड़ता है। प्रशिक्षण देकर एस कारक की मात्रा को बढ़ाया जा सकता है।

- जिस व्यक्ति में जो योग्यता अधिक होती है उसी से संबंधित कुशलता में वह विशेष योग्यता प्राप्त करता है।
- ये योग्यताएँ भाषा,विज्ञान,दर्शन आदि में विशेष सफलता प्रदान करती है।

स्पीयरमैन के द्विकारक सिद्धान्त क उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि किसी भी व्यक्ति द्वारा किये जाने वाले कार्य में जी कारक तथा एस कारक दोनों ही मौजूद होते है। इन दोनों कारकों मे जी कारक क महत्व अधिक है। जी कारक कम होने से व्यक्ति को किसी भी बौद्धिक सिद्धान्त जी कारक सिद्धान्त कहा जाता है।

2) **थर्स्टन का समूह कारक सिद्धान्त:-** स्पीयरमैन के द्विकारक सिद्धान्त पर कई वर्षों तक कार्य करके थर्स्टन (1938) में समूह कारक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया थर्स्टनन ने बुद्धि की व्याख्या कई कारकों के आधार पर की। उन्होंने किसी भी बौद्धिक कार्य को करने में सामान्य कारक तथा विशिष्ट कारक के संम्प्रत्यय को अस्वीकृत करते हुए कहा कि मानसिक प्रक्रियाओं को करने का एक सामान्य प्रधान कारक होता है। जो इन सभी मानसिक प्रक्रियाओं को आपस में बॉधे रखता है। साथ ही इन मानसिक क्रियाओं को अन्य मानसिक प्रक्रियाएँ जिनका एक प्रधान कारक होता है। आपस में सहसंबंधित होती है। तथा एक साथ मिलकर एक समूह का निर्माण करती है। इस समूह का प्रतिनिधित्व करने वाले कारक को प्रधान क्षमता की संज्ञा दी जाती है।

इसी प्रकार दूसरे तरह की मानसिक प्रक्रियाओं को एक सूत्र में बॉधने वाला एक अन्य प्रधान कारक या क्षमता होती है इसी प्रकार तीसरी, चौथी, व पॉचवीं प्रकार की मानसिक प्रक्रियाओं को बॉधने वाली बुद्धि में मानसिक क्षमताओं के कई समूह होते हैं और प्रत्येक समूह का अपना प्रधान कारक होता है।

ऐसे प्रधान कारक एक दूसरे से स्वतंत्र होते है अर्थात् उनमें नाम मात्र का ही संबंध होता है। परन्तु किसी एक प्रधान कारक के अन्तर्गत आने वाले सभी तरह की मानसिक क्षमताओं आपस में काफी सहसंबंधित होती हैं।

इस सिद्धान्त के अल्पतंत्रीय सिद्धान्त कहा जाता है। क्योंकि इस सिद्धान्त के अनुसार बुद्धि सात प्रधान क्षमताओं का एक जमावड़ा होती है, इन सभी को एक में बॉधने वाली कोई सार्वभौम क्षमता नहीं होती है।

थर्स्टन ने अपने सिद्धान्त में सात प्रधान क्षमताओं का वर्णन किया जो इस प्रकार है-

(i) **शाब्दिक अर्थ क्षमता अथवा वी क्षमता:-** शब्दों तथा वाक्यों के अर्थ समझने की क्षमताओं को शाब्दिक अर्थ क्षमता कहा जाता है। इसे वी क्षमता भी कहते है।

(ii) **शब्द प्रवाह क्षमता अथवा डब्ल्यू क्षमता:-** दिये गये शब्दों में से असंबंधित शब्द को सोचना तथा अलग करने की क्षमता को शब्द प्रवाह कहा जाता है। इसे डब्ल्यू क्षमता भी कहा जाता है।

(iii) **स्थानिक क्षमता अथवा एस क्षमता:-** किसी दिये हुए स्थान में वस्तुओं का परिचालन करने की क्षमता ,उसकी दूरी का प्रत्यक्षण करने की क्षमता तथा आकारों की पहचान करने की क्षमता को स्थानिक क्षमता कहा जाता हैं। इसे एस क्षमता भी कहते है।

(iv) **आंकिक क्षमता अथवा एन क्षमता:-** परिशुद्धता तथा तीव्रता के साथ आंकिक परिकलन करने की क्षमता की आंकिक क्षमता कहा गया ,इसे अक्षर एन द्वारा संबोधित किया गया । इसे एन क्षमता भी कहते है।

(v) **तर्क क्षमता अथवा आर क्षमता:-** वाक्यों के समूह अक्षरों के समूह में छिपे नियम की खोज कने की क्षमता को तर्क क्षमता कहा जाता है। इसे आर क्षमता भी कहते है।

(vi) **स्मृति क्षमता अथवा एम क्षमता:-** किसी पाठ विषय या घटना को जल्द से जल्द याद कर लेने की क्षमता को स्मृति क्षमता कहते हैं। इसे एम क्षमता भी कहते है।

(vii) **प्रत्यक्ष ज्ञानात्मक गति क्षमता अथवा पी क्षमता:-** किसी घटना या वस्तु विस्तृता का तेजी से प्रत्यक्षण कर लेने की क्षमता को प्रत्यक्षण ज्ञानात्मक गति क्षमता अथवा पी क्षमता कहते है। इस प्रकार स्पष्ट है कि थर्स्टन ने सात प्रधान क्षमताओं के आधार पर अपने सिद्धान्त की व्याख्या की है।

3) **बहुकारक सिद्धान्त:-**बहु कारक सिद्धान्त का प्रतिपादन थॉर्नडाइक (1926) ने किया। थॉर्नडाइक ने बहुकारक सिद्धान्त प्रतिपादित करते हुए स्पीयरमैन के सिद्धान्त के विपक्ष में अपना मत प्रकाशित किया। इस सिद्धान्त के अनुसार बुद्धि अनेक तत्वों अर्थात् कारकों का योग है। प्रत्येक कारक एक विशिष्ट मानसिक क्षमता का प्रतिनिधित्व करता है जो आपस में स्वतंत्र होते है। किन्तु इनके योगदान से ही बुद्धि का निर्माण होता है। थॉर्नडाइक के इस विश्वास के कारण ही उनका बुद्धि संबंधी विचार बहुतत्व सिद्धान्त के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

थॉर्नडाइक ने स्पीयरमैन के सिद्धान्त का खण्डन करते हुए कहा कि व्यक्ति की संज्ञानात्मक क्रियाओं में सहसंबंध का कारण जी कारक नहीं होता है। बल्कि इन क्रियाओं के बीच कई उभयनिष्ठ तत्व पाये जाते है। संज्ञानात्मक क्रियाओं में जितने ही अधिक उभयनिष्ठ तत्व होंगे ,उनके बीच का सहसंबंध उतना ही अधिक होगा। उदाहरणार्थ किसी व्यक्ति का क तथा ख प्रकार के दो विभिन्न कार्य करने मे अलग -अलग 15-15 कारकों की जरूरत है। संभव है कि इन 15 में से 10 कारक ऐसे है जो क तथा ख दोनों प्रकार के कार्यो मे समान रूप से सहायक है तो इस प्रकार ऐसी स्थिति में उन दोनों कार्यो के बीच उच्च धनात्मक सहसंबंध होगा। जैसे -2 समान कार्यो की संख्या घटती जाएगी ,इनके बीच धनात्मक सहसंबंध भी कम होता जाएगा।

थॉर्नडाइक का यह भी विचार था कि कुछ मानसिक कार्य ऐसे होते हैं। जिनके तत्वों या कारकों में उभयनिष्ठता कम होती है। ऐसा इसलिए होता है कि प्रत्येक ऐसे मानसिक कार्य का स्वरूप भिन्न-2 होता है।

उदाहरणार्थ किसी व्यक्ति को क तथा ख कार्यों को करने में अलग-2 15-15 कारकों की जरूरत है। संभव यह है कि इन 15 कारकों में से 11 कारक ऐसे है, जो उभयनिष्ठ न हों । ऐसी स्थिति में उन कार्यों के बीच धनात्मक सहसंबंध की मात्रा कम होगी ।

इस प्रकार थॉर्नडाइक ने तत्वों या कारकों की संख्या के आधार पर दो प्रकार के बौद्धिक कार्यों में समता या विषमता की व्याख्या की। इस प्रकार की व्याख्या देकर थॉर्नडाइक ने स्पीयरमैन के एस कारक की भी आलोचना की है।

स्पीयरमैन तथा थॉर्नडाइक के सिद्धान्तों की तुलना करने पर उनके बीच कोई मौलिक अन्तर नहीं दिखाई पड़ता हैं। थॉर्नडाइक ने जी कारक को एक तरह से स्वीकार किया है। स्पीयरमैन ने जिसे जी कारक कहा थॉर्नडाइक उसे उभयनिष्ठ तत्व कहा है तथा स्पीयरमैन ने जिसे एस कारक कहा, थॉर्नडाइक ने उसे अउभयनिष्ठ तत्व कहा हैं। अगर इन दोनों सिद्धान्तों में अन्तर है तो सिर्फ इतना है कि स्पीयरमैन ने जी कारक को छोटी-छोटी इकाइयों में नहीं बॉटा है जबकि थॉर्नडाइक ने इसे अनेक छोटी-छोटी इकाइयों या उपकारकों का योग माना है।

4) **त्रिविमीय सिद्धान्त:-** इस सिद्धान्त का प्रतिपादन गिलफोर्ड (1967)ने किया। इस सिद्धान्त को बुद्धि संरचना सिद्धान्त भी कहा जाता है। गिलफोर्ड के अनुसार बुद्धि कुछ प्राथमिक बौद्धिक योग्यताओं की संरचना है। प्रत्येक बौद्धिक योग्यता अपने में अनूठी होती है। तथा प्रत्येक कार्य को करने के लिए कुछ बौद्धिक योग्यता की आवश्यकता होती है। गिलफोर्ड ने बुद्धि के सभी तत्वों को तीन विमाओं में सुसज्जित किया जो इस प्रकार हैं - 1. संक्रिय 2. विषयवस्तु 3. उत्पादन ।

i) संक्रिय (ऑपरेशन):- संक्रिय से तात्पर्य व्यक्ति द्वारा किये जंाने वाले मानसिक प्रक्रिया के स्वरूप से होता है। गिलफोर्ड ने संक्रिय के आधान पर मानसिक क्षमताओं को छह भागों में विभाजित किया - मूल्यांकन अभिसारी ,चिंतन ,अपसारी चिंतन ,स्मृति धारणा, स्मृति अभिलेख तथा संज्ञान। उदाहरणार्थ:- यदि व्यक्ति को पेन का अपरिमित उपयोग बताने के लिए कहा जाय तो इसके अन्तर्गत होने संक्रिया में अपसारी चिंतन का प्रयोग होगा इसी प्रकार यदि व्यक्ति को सह शिक्षा के बारे में विचार व्यक्त करने को कहा जाय तो इसमें मूल्यांकन का प्रयोग होगा ।

ii) विषय वस्तु (कॉन्टेन्ट) - इस विमा से तात्पर्य उस क्षेत्र से होता है। जिसके एकांशों या सूचनाओं के आधार पर संक्रिया की जाती है। गिलफोर्ड ने ऐसे एकांशों या सूचनाओं को 5 भागों में बॉटा है- दृष्टि श्रवण, सांकेतिक, शाब्दिक, व्यवहारपरक। उदाहरणार्थ -यदि व्यक्ति को देखी गयी खगोलीय घटना की विस्तृत जानकारी देने की कहा जाय तो वह दृष्टि विषयवस्तु के अन्तर्गत घटना की जानकारी प्रदान करेगा।

iii) उत्पादन (प्रोडक्ट्स) - इस विमा से तात्पर्य किसी विशेष प्रकार की विषयवस्तु द्वारा की गई संक्रिया के परिणाम से होता है। गिलफोर्ड ने परिणामों को छः भागों में विभजित किया - इकाई वर्ग ,संबंध, पद्धतियॉ, रूपान्तरण तथा आशय ।

उदाहरणार्थ:- प्रयोज्य द्वारा बताया गया ईट का असाधारण प्रयोग संबंध उत्पादन के अन्तर्गत आयेगा। इस प्रकार स्पष्टक है कि गिलफोर्ड न अपने सिद्धान्त की व्याख्या तीन विमाओं के आधार पर की । संक्रिया के छह भाग , विषयवस्तु के पॉच तथा उत्पादन के छः इस प्रकार बुद्धि के कुल 6.5.6 =180 कारक हुए ।

5) **कैटेल का सिद्धान्त:-** कैटेल (1963,1967) ने अपने बुद्धि के सिद्धान्त में बुद्धि को दो महत्वपूर्ण भागों में विभाजित किया - तरल बुद्धि ठोस बुद्धि। तरल बुद्धि (फलूड इन्टेलीजेन्स्) -तरल बुद्धि का निर्धारण आनुवंशिक तथ्यात्मक ज्ञान से होता है। ठोस बुद्धि में वे क्षमताएँ आती है, जिन्हें व्यक्ति अपनी जिन्दगी की अनुभूतियों में तरल बुद्धि का उपयोग करके अर्जित करता है।

कैटेल के अनुसार तरल बुद्धि विकास किशोरावस्था में अधिकतम होता है परन्तु ठोस बुद्धि का विकास वयस्कावस्था में भी होता रहता है।

6) **गार्डनर का बहुबुद्धि का सिद्धान्त:-** गार्डनर के बहुबुद्धि के सिद्धान्त के अनुसार बुद्धि का स्वरूप एकांकी न होकर बहुकारकीय होता है तथा सामान्य बुद्धि में सात प्रकार की क्षमताएँ या बुद्धि सम्मिलित होती है। जो एक दूसरे से स्वतंत्र होती है तथा जिंनका संचालन मस्तिष्क के द्वारा होता है।

(i) भाषाई बुद्धि- शब्दों तथा वाक्यों के अर्थ समझने की क्षमता तथा शब्दावली में शब्दों के क्रम तथा उनके मध्य संबंध पहचाने की क्षमता ।

(ii) तार्किक गणितीय बुद्धि-तर्क करने की क्षमता गणितीय समस्याओं का समाधान करने की क्षमता ,अंकों को क्रम में व्यवस्थित करने की क्षमता तथा सादृश्यता क्षमता ।

(iii) स्थानिक बुद्धि- किसी स्थान विशेष को पहचानने की क्षमता दिशा पहचानने की क्षमता, मानसिक धरातल या किसी स्थान विशेष का निर्माण कराने की क्षमता ,स्थानीक कल्पना करने की क्षमता ।

(iv) शारीरिक गतिक बुद्धि- अपनी शारीरिक गति पर नियंत्रण करने की क्षमता , वस्तुओं को सावधानी पूर्वक कौशल पूर्ण ढंग से उपयोग करने की क्षमता सम्मिलित है। इस प्रकार की बुद्धि का उपयोग एथलीट्स नर्तक, क्रिकेट खिलाड़ी टॉनिस खिलाड़ी न्यूरोसर्जन आदि करते है।

(v) संगीतिक बुद्धि- संगीत मे तारत्व तथा लय का प्रत्यक्षण करने की क्षमता, संगीत मे निपुणता विकसित करने की क्षमता । संगीतिक बुद्धि संगीत गाने वालों ने अधिक पाई जाती है।

(vi) व्यक्तिगत आत्म बुद्धि- अपने संवेगों को जानने की क्षमता उनमें विभेद करके उनका परिचालन करने की क्षमता । इसे अन्तराव्यैक्तिक बुद्धि भी कहते है।

(vii) व्यक्तिगत अन्य बुद्धि- दूसरे व्यक्तियों की प्रेरणाओं, इच्छाओं एवं आवश्यकताओं को समझने की क्षमता तथा उनकी मनोदशाओं एंव चित्तप्रकृति को पेक्षित करके व्यवहार का पूर्व कथन करने की क्षमता। इसे अन्तर्वैक्तिक बुद्धि भी कहते है।

गार्डनर के अनुसार सातों तरह की बुद्धि प्रत्येक व्यक्तियों मे विद्यामान होती है। किन्तु आनुवांशिक कारणों या अभ्यास के द्वारा व्यक्ति में किसी बुद्धि का विकास अधिक हो जाता है। ये सभी सात प्रकार की बुद्धि आपस में अन्तः क्रिया करती है। किन्तु मस्तिष्क में प्रत्येक बुद्धि का अपना विशिष्ट क्षेत्र होता है। जहाँ से यह संचालित होती है। एक तरह की बुद्धि का संचालन करने वाले मस्तिष्क क्षेत्र में आघात लगने पर उस बुद्धि की क्रिया रूक जांती है। किन्तु इससे अन्य प्रकार की बुद्धियों पर प्रभाव नहीं पड़ता है। उपरोक्त बुद्धियों मे जो बुद्धि व्यक्ति में अधिक होती है। उसी कार्य क्षेत्र में व्यक्ति सफलता अर्जित करता है।

B) प्रक्रिया उन्मुखी सिद्धान्त :- इस प्रकार के सिद्धान्त में बुद्धि की व्याख्या भिन्न-2 कारकों के रूप में न करके उन बौद्धिक प्रक्रियाओं के रूप में की गई है, जिसे व्यक्ति किसी समस्या का समाधान करने में या सोच विचार करने मे लगता है।

प्रक्रिया उन्मुखी सिद्धान्तों में बुद्धि के लिए संज्ञान तथा संज्ञानात्मक प्रक्रिया शब्द का प्रयोग अधिक किया गया हैं ।

1) **संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्तः-** पियाजे (1920,30) ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया तथा 1970 मे इस सिद्धान्त का विस्तृत रूप प्रस्तुत किया। संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त में बुद्धि को अनुकूली प्रक्रिया माना गया है जिसमें जैविक परिपक्वता तथा वातावरण के साथ होने वाली अन्तः क्रियायें सम्मिलित होती है। पियाजे का कथन है कि जैसे-जैसे बच्चों मे संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का विकास होता जाता है। वैसे -वैसे ही उनका बौद्धिक विकास भी होता ता जाता है। पियाजे ने इन संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का विकास चार अवस्थाओं के अन्तर्गत माना है।

(i) ज्ञानात्मक क्रियात्मक अवस्थाः- सेन्सरी मोटर स्टेज, संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के विकास का यह प्रथम चरण है जो जन्म से लेकर 2 वर्ष तक ही होती है। इसकी दो विशेषताएँ होती है प्रथम विशेषता में बच्चा अपने व्यवहारों तथा उनके परिणामों के बीच संबंध कायम करने का प्रयास करता है। जैसे:-जब बच्चा किसी आवाज सुनता है तो वह उस व्यक्ति तथा आवाज के मध्य संबंध स्थापित करता है इस तरह बच्चे में एक विशेष संज्ञानात्मक प्रक्रिया का विकास होता है। बच्चा उस व्यक्ति की आवाज सुनकर उसे पहचानने लगता है। दूसरी विशेषता यह है कि इस अवस्था में बच्चा अपने आपकों वातावरण की वस्तुओं से अलग करने की क्षमता विकसित कर लेता है। वह अपने आपकों वातावरण की वस्तुओं से भिन्न समझने लगता है। कुछ खास-खास क्रियात्मक व्यवहारों से उसे वस्तुओं के स्थानिक संबंधों को

ज्ञान भी हो जाता है। बच्चे उन व्यक्तियों की नकल भी उतारते हैं जो अनुपस्थित होते है। इस अवस्था का सबसे मुख्य गुण यह है कि इस अवस्था में बच्चों में वस्तु पनमानेन्टस का निगम विकसति हो जाता है अर्थात् बच्चे ये समझने लगते हैं कि नजरों के सामने न होने पर भी किसी वस्तुत का अस्तित्व है। वस्तु परमानेन्टस का गुण बच्चों 20-24 महीने की उम्र मे विकसित होता है।

(ii) प्राक् प्रचलनात्मक अवस्था:- (प्री ऑपरेशनल स्टेज) यह अवस्था 2 से 7 साल तक की होती है। प्राक् प्रचलानात्मक अवस्था दो भागों में विभाजित है- 2से 4 साल तक की प्राक् सम्प्रयात्मक अवधि तथ 4से7 साल तक की अन्तर्दर्शी अवधि। प्राक् सम्प्रयात्मक अवस्था मं बच्चा भिन्न -2 प्रकार के संकेत, प्रतिमाएँ, शब्द तथा उसके अर्थ को सीखता गृहण करता है। इस तरह से बच्चे में भाषा का विकास आरम्भ होने लगता है। इन प्रतिमाओं, संकेतों आदि के सहारे बच्चे को ठीक सोचने में सहायता मिलती है। इस अवधि में संज्ञानात्मक प्रतिक्रियाओं का विकास मुख्यतः अनुकरण तथा खेल द्वारा होता है। अन्तर्दशी अवस्था में बच्चे अन्तर्दर्शी चिंतन की ओर उन्मुख होते है। जिसमें क्रमबद्ध तर्क का अभाव होता है। इस अवधि में बच्चा गणितीय प्रश्न हल करना सीख लेता है, लेकिन इनके पीछे छिपे नियम नहीं समझ पाता है।

(iii) मूर्त्त प्रचलनात्मक अवस्था (कन्क्रीट ऑपरेशनल स्टेज):-यह अवस्था 7 से 11 साल तक की होती है। इस अवस्था में बच्चों में तार्किक चिंतन, उनके सोचने के ढंग में क्रमबद्धता, तथा जटिलता इत्यादि बढने लगते है। इस अवस्था में बच्चे वस्तुओं को विमाओं के आधार पर वर्गीकृत करना सीख जाते है अर्थात् वस्तुओं का आकार, ऊँचाई ,भार, रंग, आदि के आरधार पर उनमें विभेद कर लेते हैं।

(iv) औपचारिक प्रचलनात्मक अवस्था (फॉर्मल ऑपरेशनल स्टेज):- यह अवस्था 12 साल से 15 साल की होती है। इस अवस्था मे बच्चों में अमूर्त तथा अपसारी चिंतन आदि गुण विकसित हो जाते हैं। वे अब सामान्य नियम समझने लगते हैं तथा 15 वर्ष की उम्र मे वे वयस्क के समान तार्किक नियमों का प्रयोग सीख लेते है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त मे बुद्धि की भिन्न -भिन्न अवस्थाओं में होने वाले संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं में हुए परिवर्तन के रूप में व्याख्या की गई है।

2) **त्रितन्त्र सिद्धान्त:-** त्रितन्त्र सिद्धान्त का प्रतिपादन स्टर्नबर्ग (1985) ने किया। स्टर्नबर्ग ने अपने सिद्धान्त में बुद्धि को आलोचनात्मक ढंग से सोचने की क्षमता के रूप में प्रतिपादित किया। स्टर्नबर्ग ने सूचना संसाधन हेतु व्यक्ति द्वारा क्रियान्वित पॉच चरण बताये।

(i) कूटसंकेतन (इनकोडिंग):- इस चरण में व्यक्ति अपने मस्तिष्क मे संगत प्राप्य सूचनाओं की पहचान करता है।

(ii) अनुमान (इनफेरिंग):- प्राप्य सूचनाओं के आधार पर कुछ अनुमान लगता है।

(iii) व्यवस्था (मैपिंग):- इस चरण में व्यक्ति वर्तमान परिस्थिति का अतीत की परिस्थिति के साथ संबंध जोड़ता है।

(iv) उपयोग (एप्लिकेशन) :- इस चरण में व्यक्ति अनुमानित संबंध का वास्तविक उपयोग करता हैं।

(v) अनुक्रिया (रेस्पॉन्स) :-इस अंतिम चरण में व्यक्ति समस्या का संभावित सबसे उत्तम समाधान ढुँढता है। किसी मानसिक कार्य को सम्पादित करने के लिये जिस प्रकार से सूचनाओं को संसाधित करता है, उसे ध्यान में रखते हुए स्टर्नबर्ग ने तीन उप सिद्धान्तों के आधार पर बुद्धि के जिस सिद्धान्त को प्रतिपादित किया है, उसे त्रितन्त्र सिद्धान्त कहते है। वे तीन उपसिद्धान्त निम्न प्रकार है-

i) सन्दर्भात्मक उपसिद्धान्त:- सन्दर्भात्मक उपसिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति वातावरण को अपने अनुकूल निर्मित करता है, जिससे वह अपनी क्षमताओं का उत्तम उपयोग करते हुए समायोजन कर सके। व्यक्ति की इस क्षमता को संदर्भात्मक बुद्धि कहते है।

ii) अनुभवजन्य उपसिद्धान्त:- इस उपसिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति बदलते परिवेश तथा परिस्थितियों के साथ स्वयं मे परिवर्तन लाता है, जिससे वह अपनी क्षमताओं का अधिक से अधिक से अधिक उपयोग करते हुए समायोजन कर सके। इस प्रकार की क्षमता अनुभवजन्य बुद्धि कहलाती है।

iii) घटक उपसिद्धान्त:- इस उपसिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति की बुद्धि में अमूर्त चिंतन करने तथा सूचनाओं को संसाधित करने की क्षमता सम्मिलित होती है। इस प्रकार की क्षमता वाले व्यक्तियों की बुद्धि घटकीय बुद्धि कहलाती है। ऐसी बुद्धि वाले व्यक्ति आलोचनात्मक तथा विश्लेषणात्मक ढंग से सोचने मे निपुण होते हैं। इस प्रकार की बुद्धि वाले व्यक्तियों में शैक्षणिक उपलब्धि सर्वाधिक होती है। इस प्रकार उपरोक्त उपसिद्धान्तों से स्टर्नबर्ग के त्रितन्त्र सिद्धान्त की व्याख्या होती है।

8.4 मानसिक आयु

प्रिय पाठकों, आप सभी ने तैथिक आयु के बारे में तो सुना होगा, किन्तु यह मानसिक आयु क्या है? इस सम्बन्ध में जानने की आपकी जिज्ञासा हो रही होगी तथा यह स्वाभाविक भी है। निश्चित ही इस अनुच्छेद का जानने-समझने के बाद आपको अपने प्रश्नों का समाधान मिल जायेगा।

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने अपने शोध निष्कर्षो के आधार पर व्यक्ति की आयु को दो भागों में बॉटा है-

1. तैथिक आयु (क्रोनोलॉजिकल ऐज) - यह किसी व्यक्ति की वास्तविक आयु होती है, जिसका आरम्भ जन्म के दिन से ही होता है। तैथिक आयु से अभिप्राय है व्यक्ति के जन्म से लेकर अब तक का समय। जैसे:- किसी व्यक्ति का जन्म 20 वर्ष पहले हुआ तो उसकी तैथिक आयु 20 वर्ष होगी।

2. मानसिक आयु (मेन्टल ऐज) - मानसिक आयु का तात्पर्य किसी एक आयु में सामान्य मानसिक योग्यता को ग्रहण कर लेने से है। जैसे:- कोई 8 वर्ष का बालक 7 वर्ष की आयु के बालकों के लिए निर्धारित प्रश्नों के उत्तर ही दे पाता है तो उसकी मानसिक आयु 7 वर्ष होगी।

अर्थात् उसकी मानसिक योग्यता उतनी ही है जिनती कि 7 वर्ष के बालक की होगी । यदि यह 8 वर्ष का बालक 9 वर्ष के बालकों के लिए निर्धरित प्रश्नों के उत्तर दे देता है तो उसकी मानसिक आयु 9 वर्ष मान ली जाती है। यदि यह 8 वर्ष का बालक 8 वर्ष के बालकों के लिए निर्धारित प्रश्नों के उत्तर दे देता है तो उसकी मानसिक आयु 8 वर्ष मान ली जाती है। अतः स्पष्ट है कि मानसिक आयु, तैथिक आयु से कम, अधिक या बराबर कुछ भी हो सकती है। जब मानसिक आयु तैथिक आयु से कम होती है तब व्यक्ति मन्द बुद्धि माना जाता है। जब मानसिक आयु तैथिक आयु से अधिक होती है तो व्यक्ति बुद्धिमान समझा जाता है और जब मानसिक आयु तैथिक आयु के बराबर होती है तब व्यक्ति तीव्र बुद्धि का माना जाता हैं। इस प्रकार मानसिक आयु के आधार पर व्यक्ति की बुद्धि का अंदाजा लगाया जाता है। इस मानसिक आयु का बोध एक निश्चित समय के लिए ही होता है।

8.5 बुद्धि लब्धि

8.5.1 बुद्धि लब्धि (IQ) से क्या आशय है?

प्रिय विद्यार्थियों, आप में से प्रायः सभी ने IQ का नाम सुना होगा, जिस व्यक्ति का IQ स्तर जितना ज्यादा होता है, ऐसा माना जाता है कि वह व्यक्ति उतना ही अधिक बुद्धिमान होता है। यह IQ या बुद्धि लब्धि क्या है? इसको ज्ञात करने का तरीका क्या है। बुद्धि लब्धि के विभिन्न स्तर क्या है? बुद्धि लब्धि के विभिन्न स्तर बुद्धि की किन-किन श्रेणियों को व्यक्त करते हैं? तो आइये, आपकी इन्हीं विभिन्न जिज्ञासाओं का समाधान करते हैं, प्रस्तुत अनुच्छेद में।

बुद्धि का मापन करने के लिए सर्वप्रथम बुद्धि परीक्षण बिने तथा साइमन (1905) ने विकसित किया। उन्होंने बुद्धि का मापन मानसिक आयु को आधार मान कर किया। टरमैन (1916) ने बिने साइमन परीक्षण का संशोधन किया जिससे ''बुद्धि लब्धि'' के सम्प्रत्यय का जन्म हुआ तथा बुद्धि मापन में मानसिक आयु के स्थान पर बुद्धि लब्धि का प्रयोग होने लगा।

टरमैन ने मानसिक आयु तथा तैथिक आयु के अनुपात को 100 से गुणा करके बुद्धि लब्धि ज्ञात करने का नियम निकाला ।

$$\text{बुद्धि लब्धि} = \frac{\text{मानसिक आयु} \times 100}{\text{तैथिक आयु}}$$

$$IQ = \frac{MA \times 100}{CA}$$

उदाहरणार्थः-

यदि महेश की आयु 12 वर्ष है तथा उसकी मानसिक आयु 10 वर्ष है तो महेश की बुद्धि लब्धि निम्नलिखित होगी -महेश की बुद्धि लब्धि = 10×100/12 = 83.33

आधुनिक शोध निष्कर्षों के आधार पर यह स्पष्ट हो गया है कि उपरोक्त सूत्र से बुद्धिलब्धि का मापन 15-16 वर्ष की उम्र के बच्चों तक ही हो सकता है। क्योंकि इसके बाद व्यक्ति की मानसिक आयु सामान्यतः नहीं बढ़ती है।

8.5.2 बुद्धि लब्धि के मान तथा उसका अर्थ -

बुद्धि लब्धि के मान	अर्थ
140 या इससे अधिक	प्रतिभाशाली
120 से139 तक	अतिश्रेष्ठ
110 से119 तक	श्रेष्ठ
90 से 109 तक	सामान्य
80 से 89 तक	मन्द
70 से 79 तक	सीमान्त मन्द बुद्धि
60से 69 तक	मन्द बुद्धि
20से 59 तक	हीन बुद्धि
20 या इससे कम	जड़ बुद्धि

इस प्रकार स्पष्ट है कि बुद्धि लब्धि के आधार पर व्यक्ति के बौद्धिक स्तर का पता आसानी से लगाया जा सकता है।

8.6 सारांश

बुद्धि व्यक्ति की एक जन्मजात शक्ति है, जो उसे वातावरण के साथ प्रभावकारी सामंजस्य स्थापित करने तथा विवेकशील एवं अमूर्त चिन्तन करने में सहायता प्रदान करती है। बुद्धि विभिन्न क्षमताओं का सम्पूर्ण योग होता है।

बुद्धि के सिद्धान्त- बुद्धि के विभिन्न सिद्धान्तों में बुद्धि के स्वरूप एवं कार्यविधि पर प्रभाव डाला गया है।

बुद्धि के सिद्धान्तों का वर्गीकरण- दो श्रेणियाँ :-

- प्रथम श्रेणी - कारकीय सिद्धान्त
- द्वितीय श्रेणी - प्रक्रिया उन्मुखी सिद्धान्त इसमें निम्न छः सिद्धान्त हैं-

कारकीय सिद्धान्त-

1. स्पीयरमैन का द्विकारक सिद्धान्त
2. थर्स्टन का समूह कारक सिद्धान्त
3. बहुकारक सिद्धान्त
4. त्रिविमीय सिद्धान्त
5. कैटेल का सिद्धान्त
6. गार्डनर का बहुबुद्धि का सिद्धान्त

प्रक्रिया उन्मुखी सिद्धान्त-

इसमें निम्न तीन सिद्धान्त शामिल हैं-

1. संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त (पियाजे का सिद्धांन्त)
2. स्टर्नवर्ग का त्रितन्त्र सिद्धान्त
3. घटक उपसिद्धान्त

आयु- दो भेद-

1. तैथिक आयु/वास्तविक आयु
2. मानसिक आयु

तैथिक आयु- व्यक्ति की वास्तविक आयु, जिसका प्रारंभ जन्म से ही माना जाता है।

मानसिक आयु- किसी एक आयु में सामान्य मानसिक योग्यता को ग्रहण कर लेना।

बुद्धि लब्धि-वास्तविक आयु तथा मानसिक आयु का एक ऐसा अनुपात जिसमें 100 गुणा करके प्राप्त किया जाता है।

बुद्धि लब्धि (IQ) ज्ञात करने का सूत्र-

$$\text{बुद्धि लब्धि} = \frac{\text{मानसिक आयु} \times 100}{\text{तैथिक आयु}}$$

बुद्धि लब्धि के माध्यम से व्यक्ति के बौद्धिक स्तर का पता चलता है।

8.7 शब्दावली

- **जन्मजात:** जन्म से ही उत्पन्न होने वाली।
- **नित्यप्रति:** प्रतिदिन
- **संयोजक:** जो जोड़ने का कार्य करे।
- **मितव्ययिता:** कम खर्च करने की प्रवृत्ति
- **अमूर्त्तता:** ऐसी मानसिक क्षमता जिसके कारण व्यक्ति शाब्दिक एवं गणितीय संकेतों एवं चिन्हों के संबंधों को सरलता पूर्वक समझ जाता है तथा उसकी उचित व्याख्या कर पाने में सक्षम होता है।
- **तैथिक आयु:** तिथि से सम्बन्धित वास्तविक आयु
- **मानसिक आयु:** मानसिक योग्यता से संबंधित आयु।
- **बुद्धिलब्धि:** जिसके माध्यम से किसी व्यक्ति के बौद्धिक स्तर को ज्ञात किया जाता है।

8.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

नीचे कुछ कथन दिये गये हैं। जो कथन सही हैं, उनके आगे सही का तथा जो गलत है उनके आगे गलत का निशान लगायें-

1) भारतीय दर्शन के अनुसार मनुष्य के अन्तःकरण के मन, बुद्धि तथा अहंकार- ये तीन अंग हैं। ( )
2) इन्द्रियों एवं बुद्धि के बीच संयोजक का कार्य मन के द्वारा किया जाता है। ( )
3) थॉर्नडाइक के अनुसार बुद्धि परीक्षण जो मापता है वही बुद्धि है। ( )
4) बुद्धि की सर्वप्रथम परिभाषा बोरिंग ने दी। ( )
5) बिने के अनुसार बुद्धि ज्ञान, आविष्कार, निर्देश और आलोचना इन चार शब्दों में निहित है। ( )
6) बुद्धि व्यक्ति की जन्मजात शक्ति नहीं है। ( )
7) बुद्धि एक से अधिक मानसिक गुणों का समूह है। ( )
8) बुद्धि के सिद्धान्तों को कारकीय एवं प्रक्रिया उन्मुखी सिद्धान्त इन दो श्रेणियों में विभाजित किया गया है। ( )

9) द्विकारक सिद्धान्त का प्रतिपादन जीन पियाजे ने किया। ( )
10) समूह कारक सिद्धान्त के प्रणेता थॉर्नडाइक है। ( )
11) बहुकारक सिद्धान्त की गणना, प्रक्रिया, उन्मुखी सिद्धान्तों में की जाती है।
12) त्रिविजीय सिद्धान्त का प्रतिपादन गिलफोर्ड द्वारा किया गया।
13) कैटेल ने बुद्धि को तरल एवं ठोस, दो भागों में वर्गीकृत किया। ( )
14) कैटेल का सिद्धान्त बहुबुद्धि का सिद्धान्त है। ( )
15) संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त, प्रक्रिया उन्मुखी सिद्धान्त है। ( )
16) त्रितंत्र सिद्धान्त के प्रणेता स्टर्नबर्ग है। ( )
17) पियाजे ने संज्ञानात्मक विकास की छः अवस्थायें बतायी हैं। ( )
18) बकिंघम के अनुसार बुद्धि एक सीखने की योग्यता है। ( )
19) बुद्धि व्यक्ति को अमूर्ष चिन्तन करने की योग्यता प्रदान करती है। ( )
20) बुद्धि व्यक्ति को वातावरण के साथ प्रभावकारी ढंग से सामंजस्य करने की क्षमता प्रदान नहीं करती है। ( )
21) तैथिक आयु का अर्थ किसी व्यक्ति की वास्तविक आयु से होता है। ( )
22) प्रत्येक व्यक्ति की मानसिक आयु भिन्न-भिन्न होती है। ( )
23) तैथिक आयु, मानसिक योग्यता पर निर्भर करती है। ( )
24) मानसिक आयु के तैथिक आयु से अधिक होने पर व्यक्ति को मन्द बुद्धि माना जाता है। ( )
25) मानिसक आयु के तैथिक आयु से अधिक होने पर व्यक्ति को तीव्र बुद्धि माना जाता है। ( )
26) यदि किसी 10 साल के बच्चे की मानसिक आयु 12 साल की है तो उसकी बुद्धि लब्धि कितनी होगी?

i) 110 ii) 120 iii) 100 iv) 130

27) यदि बुद्धि लब्धि में स्थिरता के कारक को मान लिया जाता है तो इससे निम्नांकित में से किस कथन को समर्थन मिलता है।

i) बुद्धि का स्वरूप जन्मजात होता है।
ii) बुद्धि का स्वरूप अर्जित होता है।
iii) बुद्धि का स्वरूप अंशतः जन्मजात तथा अंशतः अर्जित होता है।
iv) बुद्धि का स्वरूप मापनीय होता है।

28) अगर 10 साल का एक बच्चा 7 साल के लिए बने सभी परीक्षणों पर सफल हो जाता है तथा 8 साल के बच्चों के लिए बने कुल परीक्षणों के आधे पर ही सफल होता है तो उसकी बुद्धिलब्धि क्या होगी?

i) 80 ii) 85 iii) 75 iv) 90

उत्तर: 1) सही 2) सही 3) गलत 4) सही 5) सही 6) गलत 7) सही 8) सही 9) गलत 10) गलत 11) गलत 12) सही 13) सही 14) गलत 15) सही 16) सही 17) गलत 18) सही 19) सही 20) गलत 21) सही 22) सही 23) गलत 24) गलत 25) सही 26) ii 27) i 28) iii

8.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- सिंह, अरूण कुमार। (2006), संज्ञानात्मक मनोविज्ञान। मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली।
- श्रीवास्तव, रामजी। (2003), संज्ञानात्मक मनोविज्ञान। मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड जवाहर नगर, दिल्ली।
- सुलेमान, मुहम्मद एवं तरन्नुम, रिजवान। (2005), मनोविज्ञान में प्रयोग एवं परीक्षण। मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली।
- सुलेमान, मुहम्मद। (2001), मनोवैज्ञानिक प्रयोग और परीक्षण। शुक्ला बुक डिपो, पटना।
- वर्मा, प्रीति एवं श्रीवास्तव, डी.एन. (1996), आधुनिक प्रयोगात्मक मनोविज्ञान। विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।
- भार्गव, महेश। (2001), आधुनिक मनोवैज्ञानिक परीक्षण एवं मापन।

8.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. बुद्धि से आप क्या समझते है? इसे परिभाषित करते हुये, बुद्धि के स्वरूप की व्याख्या करें?
2. बुद्धि लब्धि से क्या आशय है। बुद्धि लब्धि के विभिन्न मान एवं उसके अर्थ को स्पष्ट करें?

इकाई-9 संवेग का स्वरूप एवं सिद्धान्त, संवेग में होने वाले शारीरिक परिवर्तन, सांवेगिक बुद्धि(Nature and Theories of Emotion, Physical changes in Emotion, Emotional Intelligence)

इकाई संरचना

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 संवेग
9.3.1 संवेग का अर्थ एवं परिभाषाएँ
9.3.2 संवेग का स्वरूप
9.3.3 संवेग के विभिन्न सिद्धान्त
9.3.4 संवेग में शारीरिक परिवर्तन
9.4 सांवेगिक बुद्धि
9.4.1 अर्थ एवं परिभाषा
9.4.2 सांवेगिक बुद्धि का विकास
9.5 सारांश
9.6 शब्दावली
9.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
9.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
9.9 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों, इससे पूर्व की इकाईयों में आपने बुद्धि के अर्थ, स्वरूप, इसकी विभिन्न विशेषताओं तथा मानसिक आयु एवं बुद्धि लब्धि के बारे में अध्ययन किया है। अब बुद्धि के पश्चात हमारे अध्ययन का अगला विषय ''संवेग'' (Emotion) है। संवेग क्या है ? इसकी क्या - क्या विशेषताएँ है, भिन्न - भिन्न व्यक्तियों में किस प्रकार भिन्न - भिन्न प्रकार के संवेगों की उत्पत्ति होती है ? संवेंग उत्पन्न होने पर किस प्रकार के परिवर्तन होते है ? संवेग के संबध में विभिन्न विद्वानों ने किन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है, तथा भावनात्मक बुद्धि क्या है, इत्यादि।

संवेग एक ऐसा पद है जिससे हम सभी परिचित हैं तथा जिसका अर्थ हम सभी समझते हैं। हममें से प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में संवेग का अनुभव करता है। क्रोध, भय, खुशी, हमारे जीवन के प्रमुख संवेगों में से है। संवेगों की उपस्थिति हमारे जीवन में अति आवश्यक है, क्योंकि इन्हीं से हमारे व्यवहार का निर्धारण होता है। संवेग का निर्माण तीन प्रकार के तत्वों के मिलने से होता है जो इस प्रकार है - दैहिक तत्व, संज्ञानात्मक तत्व, व्यवहारात्मक तत्व। संवेग का स्पष्ट ज्ञान प्राप्त करने के लिए संवेग के इन तीनों तत्वों को समझना आवश्यक है। संवेग में भावनाओं का अति महत्वपूर्ण स्थान है। प्रत्येक संवेग में कोई न कोई भावना अवश्य ही छिपी हुई होती है। भय की स्थिति में दुःखद भावना की अनुभूति तथा खुशी में सुखद भावना की अनुभूति होती है। यही बात अन्य संवेगों की स्थिति में भी दृष्टिगोचर होती है। संवेग एक ऐसा गतिशील आन्तरिक समायोजन है, जो सभी के संतोष, सुरक्षा तथा कल्याण के लिए कार्य करता है।

तो आइये अब हम सबसे पहले यह जानते है कि संवेग है क्या ? इसकी क्या विशेषताएँ है? इसका स्वरूप क्या है?

9.2 उद्देश्य

जिज्ञासु पाठकों ईकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप -

- संवेग के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- संवेग के विभिन्न प्रकारों का अध्ययन कर सकेंगे।
- संवेग के विभिन्न सिद्धान्तों का विश्लेषण कर सकेंगे।
- संवेग के कारण होने वाले परिवर्तनों को स्पष्ट कर सकेंगे।
- संवेगात्मक बुद्धि के अर्थ का अध्ययन कर सकेंगे।
- संवेगात्मक बुद्धि के विकास की प्रक्रिया को स्पष्ट कर सकेंगे।

9.3 संवेग

9.3.1 संवेग का अर्थ एवं परिभाषाएँ -

प्राणी की रागात्मक क्रियाओं में संवेग का महत्मपूर्ण स्थान है। संवेग एक ऐसा पद है जिसे हम सभी अपने दिन-प्रतिदिन के जीवन में अनुभव करते हैं। हम कभी सुख, कभी दुःख, कभी भय, कभी प्रेम, कभी क्रोध, कभी चिन्ता और कभी आश्चर्य का अनुभव करते हैं इस प्रकार की बहुत सी अनुभूतियाँ हैं जो संवेग कहलाती हे। संवेग का निर्माण मुख्यतः तीन प्रकार के तत्वों के मिलने से होता है। दैहिक तत्व, संवेगात्मक तत्व तथा अवस्थाओं में परिवर्तन होता है, जिनके कारण वह संवेग का अनुभव करता है- इनमें हृदय की गति, श्वासगति नाड़ी की गति, रक्तचाप में परिवर्तन आदि प्रमुख आन्तरिक दैहिक परिवर्तनों के उदाहरण हैं। संज्ञानात्मक तत्व में व्यक्ति किसी

घटना या परिस्थिति का प्रत्यक्षण करके उसे समझता है तथा इसी के अनुरूप वह संवेग अनुभव करता है जैसे यदि व्यक्ति रात में किसी रास्ते में पड़ी रस्सी को साँप् समझ बैठता है तो वह डर जायेगा इससे उसमें भय का संवेग उत्पन्न हो जायेगा। व्यवहार परक तत्व में संवेग वाह्य अभिव्यक्ति के रूप में व्यक्त होते हैं उदाहरणस्वरूप चेहरे के हावभाव में परिवर्तन शारीरिक मुद्रा, शरीर में कंपन, आवाज में उतार-चढाव आदि से व्यक्ति में संवेग द्वारा उत्पन्न होने वाले व्यवहारपरक तत्व का ज्ञान मिलता है।

संवेग के स्वरूप समझने की प्रक्रिया में इन तीनों तत्वों पर ध्यान दिया जाना अत्यधिक आवश्यक है। मनोवैज्ञानिक ने संवेग के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए अपने-2 ढंग से अलग-2 परिभाषाएँ दी है किन्तु क्योंकि यह एक जटिल अवस्था है अतः मनोवैज्ञानिकों के बीच किसी एक परिभाषा को लेकर पूर्ण सहमत नहीं है।

वुडवर्थ के अनुसार, *''संवेग प्राणी की उत्तेजितावस्था है।''*

इंगलिश तथा इंगलिश(1958) के अनुसार,- *''संवेग एक जटिल भाव की अवस्था होती है, जिसमें कुछ खास-2 शारीरिक एवं ग्रन्थीय क्रियायें होती हैं।''*

बेरोन, बर्न तथा केन्टोविज (1980) के अनुसार -*''संवेग से तात्पर्य एक ऐसे भाव की अवस्था से होता है जिसमें कुछ शारीरिक उत्तेजना पैदा होता है और फिर जिसमें कुछ खास-खास व्यवहार होते हैं।*

क्रो एवं क्रो के अनुसार - *''संवेग गतिशील आन्तरिक समायोजन है, जो व्यक्ति के संतोष सुरक्षा बौर कल्यान के लिए कार्य करता है।''*

ड्रेवर के अनुसार- *''संवेग प्राणी की जटिल दसा है,जिसमें कुछ सारीरिक परिवर्तन तथा प्रबल भावना के कारण उत्तेजित दसा और एक निसिचत प्रकार का व्यवहार करने की प्रवृत्ति निहित रहती है।''*

सैन्ट्रोक (2000) के अनुसार- *''हम लोग को भाव जिसमें दैहिक उत्तेजन, चेतन अनुभूति तथा व्यवहारत्मक अभिव्यक्ति सम्मिलित होते हैं, के रूप में परिभाषित करते हैं।''*

जरसील्ड के अनुसार, *'' किसी भी प्रकार के आवेस आने पर भड़क उठने तथा उत्तेजित हो जाने की अवस्था को संवेग कहते हैं''।*

9.3.2 संवेग का स्वरूप -

उपरोक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से हमें संवेग की निम्नलिखित विशेषताओं का पता चलता है-

1) संवेग और भावनायें- किसी भी प्रकार के संवेग की उत्पत्ति के लिए किसी न किसी प्रकार की भावना का होना आवश्यक है। अतः हर संवेग के पीछे कोई न कोई भावना कार्यरत होती है।

2) तीव्रता- संवेग में तीव्रता पाई जाती है और यह व्यक्ति में एक प्रकार का तुफान उत्तन्न कर देता है।

3) शारीरिक परिवर्तन- संवेग के परिणाम सवरूप् व्यक्ति में अनेक प्रकार के वाह्य तथा आन्तरिक सारीरिक परिवर्तन परिलक्षित होते हैं जैसे नाड़ी की गति का बढ़ जाना रक्त चाप में परिवर्तन , स्वसन गति हृदय गति में परिवर्तन, चेंीरे के हाव-भाव , मुख मुद्रा, सारीरिक मुद्रायें अंगों में कंपन आदि।

4) मानसिक दशा में परिवर्तन- संवेग के समय व्यक्ति की मानसिक दसा में निम्नलिखित क्रम में परिवर्तन होते हैं-(क) किसी वस्तु या स्थिति का ज्ञान, स्मरण या कल्पना । (ख) ज्ञान के कारण सुख या दुख की अनुभूति (ग) उत्तेजना के कारण कार्य करने की प्रवृत्ति।

5) व्यवहार में परिवर्तन- संवेग के समय व्यक्ति के सम्पूर्ण स्वरूप में परिवर्तन हो जाता है। उदाहरणार्थ- दया से ओत प्रोत व्यक्ति का व्यवहार उसके सामान्य व्यवहार से बिल्कुल अलग होता है इसी प्रकार क्रोध की अवस्था में व्यक्ति का व्यवहार सामान्य व्यवहार से बिल्कुल अलग होता है।

6) विशाल क्षेत्र - संवेग का क्षेत्र बहुत ही विसाल होता है यह विकास की प्रत्येक अवस्था में दिखाई देता है। नवजात सिशु से लेकर वृद्ध तक सभी में संवेगों की उत्पत्ति होती है।

7) व्यापकता- निम्नतर प्राणियों से लेकर उच्चतर तक सभी में संवेग उपस्थित होते हैं। उदाहरणार्थ बिल्ली को उसके बच्चे से दूर करने पर बच्चे से उसका खिलौना छीनने पर तथा मनुष्य को उसकी आलोचना करने पर क्रोध आ जाता है।

8) अभिप्रेरणात्मक प्रवृत्ति- प्रायः यह देखा जाता है कि संवेग की प्रवृत्ति अभिप्रेरणात्मक होती है। जब व्यक्ति में कोई तीव्र संवेग उत्नप्प होती है तो उसका व्यवहार किसी खास जक्ष्य की ओर अभिप्रेरित होता है। जैसे- यदि कोई व्यक्ति किसी परिस्थिति में काफी डर गया है तो ऐसी हालत में वह या तो वहाँ से भाग जायेगा या अपने आप को किसी ऐसी जगह छिपा लेगा जिससे डर उत्पन्न करने वाला उद्दीपक से दिखाई ही न पड़े।

9) संचयी प्रवृत्ति- संवेग की प्रवृत्ति संचयी होती है जब काई संवेग एक बार उत्पन्न हो जाता है तो थोड़ी देर के लिए वह उत्तरोत्र स्वतः ही बढ़ता चला जाता है। ऐसा संवेग द्वारा एक खास प्रकार की मानसिक तत्परता उत्पन्न कर दिये जाने के कारण होता है।

10) निरन्तरता- संवेग में निरन्तरता का गुण पाया जाता है। जब भी किसी उद्दीपक के कारण संवेग उत्पन्न होता है, उस उद्दीपक के हट जाने के बाद भी व्यक्ति में कुछ देर तक वह संवेग बना रहता है। उदाहरणार्थ - यदि व्यक्ति के सामने कोई जंगली जानवर आ जाये तो उसे देखकर व्यक्ति में भय का संवेग उत्पन्न हो जायेगा। वह जानवर व्यक्ति को देखकर डर जाता हे और कहीं छिप जाता है या दूर चला जाता है, तब भी व्यक्ति में भय का संवेग कुछ समय तक बना रहंगा। सभी संवेगों में निरन्तरता का गुण उपस्थित होता है।

उपरोक्त पणर्न से स्पष्ट हो जाता है कि संवेग की कुछ सामान्य विसेषताएँ होती है जिनके आधार पर संवेग के स्वरूप को भली भाँति समझा जा सकता है। संवेगों का संबंध मूल प्रवृतियों से होता है। चौदह मूल प्रवृतियों के चौदह ही संवेग हैं जो इस प्रकार हैं-

भय (फियर)	क्रोध (एंगर)
घृणा (डिस्गस्ट)	वात्सल्य (टेन्डरमोसन)
क्रूणा व दुःख (डिस्ट्रेस)	कामुकता(लस्ट)
आस्चर्य(वॉण्डर)	आत्महीनता(निगेटिव सेल्फफीलिंग)
आत्मभिमान(पॉजिटिवसेल्फ फीलिंग)	एकाकीनप(लोनलीनेस)
भूख (हंगर)	अधिकार भावना(फीलिंग ऑफ ओनरथिज)
कृतिभाव (क्रियेटिवनेस)	आमोद (एमूसमेन्ट)

9.3.3 संवेग के विभिन्न सिद्धान्त -

जिज्ञासु पाठको, अब आपके मन में अनेक प्रकार के प्रश्न उत्पन्न हो रहे होंगे। जैसे कि संवेग के अनुभव और व्यवहार किस प्रकार होते हैं? संवेगात्मक अनुभव और व्यवहार में क्या संबंध हैं? संवेग परिधीय अंगों से ही होता है या मस्तिष्क का भी इसमें कुछ महत्व है? संवेग प्राणी के जीवन के लिए उपयोगी हैं या नहीं? संवेग के संबंध में इस ढंग के और भी बहुत से प्रश्न हैं जिन पर सभी विद्वान एक मत नहीं हैं, इन्हीं मतभेदों के कारण संवेग के अनेक सिद्धांतों का प्रतिपादन हुआ है। इनमें से कुछ प्रमुख सिद्धांत का वर्णन इस प्रकार है-

1) जेम्स लाँजे का सिद्धान्त
2) कैनन बार्ड का सिद्धान्त
3) स्कैकटर सिंगर सिद्धान्त
4) संज्ञानात्मक मूल्यांकन सिद्धान्त
5) लिंडस्ले संकियण सिद्धान्त
6) विरोधी प्रक्रिया सिद्धान्त

1) जेम्स लांजे सिद्धांत-

इस सिद्धांत का प्रतिपादन दो वैज्ञानिकों विलियम जेम्स तथा कार्ल लान्जे द्वारा स्वतंत्र रूप से 1880 में किया गया । इन दोनों वैज्ञानिकों के विचार संवेग के बारे में एक दूसरे से काफी समानता रखते थे, इसलिये इस सिद्धांत का नाम दोनों के नाम पर रखा गया जो आज जेम्स लॉजे सिद्धांत के रूप में प्रसिद्ध है। इस सिद्धान्त का अधार जैविक या दैहिक है। इस सिद्धान्त की मूल धारण यह है कि पहले हमें संवेगात्मक अनुभव होता है उनके पश्चात संवेगात्मक व्यवहार होता है। इसलिये जब हम कोई भय उत्पन्न करने वाली घटना या

परिस्थिति का सामना करते है, तो डर जाते हैं इसलिये भाग जाते हैं। जेम्स लान्जे की धारण इसके ठीक विपरीत थी। जेम्स लान्जे के इस सिद्धांत के अनुसार पहले संवेगात्मक व्यवहार होता है उसके पश्चात संवेगात्मक अनुभव होते हैं। अर्थात जब हम कोई भय उत्पन्न करने वाली घटना या परिस्थिति देखते हैं, तो हम भाग जाते हैं, इसलिए डर जाते हैं। जेम्स लांजे सिद्धांत संवेग की व्याख्या तीन चरणों में की गई है -

i) प्रथम चरण - सबसे पहले व्यक्ति संवेग उत्पन्न करने वाले उद्दीपक का सामना करता हे तो इसके द्वारा ज्ञानेन्द्रियों में उत्पन्न तंत्रिका आवेग पथ (संख्या) से होता मास्तिष्क में पहुँचता है जिससे व्यक्ति को उद्दीपक का प्रत्यक्षण होता है। उदाहरणार्थ- व्यक्ति साँप को अपने सामने होने का प्रत्यक्षण करते हैं।

ii) द्वितीय चरण - किसी उद्दीपक का प्रत्यक्षण होने से षरीर के भीतर अंगों एवं वाह्य अंगों की क्रियाशीलता में परिवर्तन हो जाता है फलस्वरूप व्यक्ति संवेगात्मक व्यवहार कर देता है। तंत्रिका आवेग मस्तिष्क से निकलकर शरीर के अन्तरावयवों जैसे हृदय, फफड़े, ऐड्रिनल ग्रन्थि , वृक्क आदि को उत्तेजित करता है तथा साथ ही साथ शरीर के बाहरी अंगों यानी हाथों, पैरों की मांसपेशियाँ को क्रियाशील कर देता है। उदाहरणार्थ साँप् तेजी से चलने लगती है तथा ऐड्रिनल ग्रन्थि से एड्रिनैलिन निकलकर खुन में मिलने लगता है। इन सबका परिणाम यह होता है कि व्यक्ति में तीव्र शारीरिक वरिवर्तन होता है। परिणामस्वरूप वह साँप देख कर भाग जाता है अर्थात संवेगात्मक व्यवहार करता है।

iii) तृतीय चरण - संवेगात्मक व्यवहार के उपरान्त मस्तिष्क का यह सूचना प्राप्त होती है कि अमुक व्यवहार किया गया है। शरीर के भीतरी अंगों से तथा शरीर के बाह्य अंगों से मस्तिष्क को अमुक सांवेगिक व्यवहार की सूचना प्राप्त होती है। जेम्स लान्जे ने बताया कि इस व्याख्या से दो बातें पता चलती है- प्रथम तो कि संवेगात्मक व्यवहार पहले होता है तथा संवेगात्मक अनुभूति बाद में। द्वितीय यह कि संवेगात्मक अनुभव का होना संवेगात्मक व्यवहार पर निर्भर होता है। संवेगात्मक व्यवहार न होने पर संवेगात्मक अनुभूति भी नहीं होती । यदि व्यक्ति साँप को देखकर नहीं भागता है तो डरता भी नहीं है। जब भागने की सूचना मस्तिष्क को मिलती हैं तब हममें संवेगात्मक अनुभूति होती है अर्थात हम भयभीत हो जाते हैं।

2) कैनन बार्ड सिद्धांत -

यह सिद्धांत कैनन(1927) द्वारा प्रतिपादित किया गया था। बाद में बार्ड (1934) ने इसका अपने अध्ययनों के आधार पर समर्थन किया। दोनों मनोवैज्ञानिकों के नाम से इस सिद्धांत का नाम कैनन बार्ड सिद्धांत प्रसिद्ध हुआ।

कैनन बार्ड सिद्धांत के अनुसार संवेग से होने वाले सांवेगिक व्यवहार तथा सांवेगिक अनुभव दोनों एक दूसरे से स्वतंत्र होते हैं तथा दोनों की उत्पत्ति एक साथ होती है। कैनन बार्ड सिद्धांत को निम्नलिखित चरणों के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है-

- संवेग की उत्पत्ति के लिए किसी उद्दीपक द्वारा ज्ञानेन्द्रिय का उत्तेजित होना आवश्यक है।
- ज्ञानेन्द्रिय से तन्त्रिका आवेग हाइपोथैलेमस से होता हुआ सेरिब्रल कॉर्टेक्स में पहुँच जाता है।
- सेरिब्रल कॉर्टेक्स हाइपोथैलेमस पर से अपना नियंत्रण कम कर देता है एवं कुछ विशिष्ट परिस्थिति में ऐसे तंत्रिका आवेग को भी हाइपोथैलेमस में भेजता है, जिसकी उत्पत्ति विकल्प में हुई होती हे।
- इसके कारण हाइपोथैलेमस पूर्णतः क्रियाशील हो जाता है।
- जब हाइपोथैलेमस क्रियाशील हो जाता है तब तंत्रिका आवेग दो दिशा में यानी ऊपर की दिशा में अर्थात सेरिब्रल कॉर्टेक्स की ओर तथा नीचे की दिशा में अर्थात आन्तरिक तथा बाहरी शारीरिक अंगों की मांसपेशियों की ओर एक साथ जाते हैं। तंत्रिका आवेग के सेरिब्रल एवं पहुँचने पर संवेग की अनुभूति होती है। तथा अन्तरांग एवं मांसपेशियों में तंत्रिका आवेग के पहुँचने पर सांवेगिक व्यवहार होता है।

कैनन (1927) तथा बार्ड (1934) के द्वारा कई प्रयोग कुत्ते तथा बिल्लियों पर किये ।इन प्रयोगों में हाइपोथैलेमस में छोटा घाव कर देने पर संवेगों में कमी तथा हाइपोथैलेमस को काटकर निकाल देने पर संवेगों का पूर्णतः ह्रास देखा गया। अतः स्पष्ट है कि हाइपोथैलेमस संवेगों का उद्गम स्थान हे। इसी कारण कैनन बार्ड सिद्धांत को हाइपोथैलेमस थ्योरी के नाम से भी जाना जाता है।

3) स्कैकटर सिंगर सिद्धांत-

संवेग के इस सिद्धांत को स्कैटर तथा सिंगर (1962) द्वारा प्रतिपादित किया गया। यह सिद्धांत संज्ञानात्मक सिद्धांत तथा संज्ञानात्मक शारीरिक सिद्धांत के नाम से भी जाना जाता है। इस सिद्धांत की मान्यता है कि संवेग उत्पन्न करने वाले उद्दीपक का वयक्ति पहले प्रत्यक्षण करता है, इस प्रत्यक्षण के बाद शारीरिक परिवर्तन होता है। स्कैकटर के अनुसार एक ही प्रकार के शारीरिक परिवर्तन विभिन्न संवेग उत्पन्न करने की सामर्थ्य रखते हैं। इसके बाद व्यक्ति अपने पूर्व अनुभवों के परिप्रेक्ष्य में इन परिवर्तनों को स्पष्ट करता है, जो एक संज्ञानात्मक प्रक्रिया के अन्तर्गत आते हैं। इस वयाख्या के फलस्वरूप वह समझ जाता है कि संवेग किस प्रकार का है? अतः यह कहा जा सकता है कि इस सिद्धांत में संवेग का ज्ञान होना संवेगात्मक कारक तथा शारीरिक परिवर्तनों की व्याख्या पर निर्भर करता है। अतः इस सिद्धांत के अनुसार संवेग को तीन चरणों के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है-

- सर्वप्रथम पहले व्यक्ति संवेग उत्पन्न करने वाले उद्दीपक का प्रत्यक्षण करता है।

इस प्रत्यक्षण के परिणामस्वरूप व्यक्ति में कुछ आन्तरिक शारीरिक परिवर्तन होते हैं जो अस्पष्ट होते हैं।

स्वयं की पूर्व अनुभूतियों के संदर्भ में व्यक्ति इन शारीरिक परिवर्तनों को स्पष्ट करता है जो एक संज्ञानात्मक मूल्यांकन की प्रक्रिया है। व्यक्ति में कौन सा संवेग उत्पन्न हो रहा है, वह इसी स्पष्टीकरण पर निर्भर

करता है। व्याख्या के अनुसार व्यक्ति जिस तरह का आशय लगाता है , उसे वैसी ही संवेगात्मक अनुभूति होती है।

स्कैकटर तथा सिंगर ने अपने सिद्धांत की पुष्टि के लिए अनेक प्रयोग किये इनमें से एक अत्यन्त प्रसिद्ध प्रयोग इस प्रकार है- इस प्रयोग में तीन प्रयोगात्मक समूह बनाये गये। तीनों समूहों को एड्रिनेलिन का इन्जेक्शन दिया गया। यह इन्जेक्शन देते समय यह कहा गया कि सुप्रोक्सिन जो एक प्रकार का विटामिन्स है, वह उन्हें दिया जा रहा है।

इन तीनों प्रयोगात्मक समूह में एक सूचित समूह था। द्वितीय असूचित तथा तृतीय गलत सूचित समूह था। सूचित समूह को ऐड्रिनेलिन से उत्पन्न होने वाले सांवेगिक लक्षण जैसे- हाथ मैकम्पन, हृदय की गति में तीव्रता, चेहरे का लाल होना आदि सही-2 बता दिये गये। असूचित समूह को ऐड्रिनेलिन के प्रभाव की गलत सूचना दी गयी। इन्जेक्शन देने के तुरन्त बाद तीनों प्रयोगात्मक समूहों के कुछ प्रयोज्यों को उल्लास की स्थिति में तथा कुछ प्रयोज्यों को क्रोध उत्पन्न करने वाली स्थिति में रखा गया। उल्लास की स्थिति वाले प्रयोज्यों में प्रयोकर्त्ता का एक सहकर्मो हँसी पैदा करने की प्रयास करता था तथा क्रोध की अवस्था वाले प्रयोज्यों के साथ सहकर्मी ऐसा व्यवहार करता था कि उनमें क्रोध की उत्पत्ति हो।

परिणाम में पाया गया कि सूचित समूह पर सहकर्मी द्वारा किये गये किसी भी व्यवहार का प्रभाव नहीं पड़ा क्योंकि वह समूह अपने अन्दर उत्पन्न संवेग का कारण इन्जेक्शन को ही समझता था। असूचित समूह तथा गलत सूचित समूह के सदस्यों को उल्लास की स्थिति में खुशी का अनुभव हुआ तथा क्रोध की स्थिति में इन लोगों में क्रोध उत्पन्न होते हुये पाया गया। अतः स्पष्ट है कि ऐड्रिनेलिन के इन्जेक्शन से तीनों प्रयोगात्मक समूहों में जो शरीर में परिवर्तन हुए वे एकसमान थे। परन्तु जिन्हें उल्लास की अवस्था में रखा गया उन्हें खुशी का अनुभव हुआ तथा जिन्हें क्रोध की स्थिति में रखा गया उन्हें क्रोध इस कारण हुआ क्योंकि उनका प्रत्यक्षण उस विशिष्ट परिस्थिति में होने वाले घटनाक्रमों द्वारा प्रभावित हो रहा था। अतः संवेग का अनुभूति केवल शारीरिक परिवर्तनों से ही नहीं होती है, वरन् उसकी संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के आधार पर भी होती है।

स्कैक्टर सिंगर सिद्धांत से यह स्पष्ट है कि व्यक्ति दैहिक उततेजन की व्याख्या करने के लिए वाह्य संकेतों का उपयोग करता हे और तब संवेग का नामकरण करता है।

4) संज्ञानात्मक मूल्यांकन सिद्धांत-

संज्ञानात्मक मूल्यांकन सिद्धांत का प्रतिपादन रिचार्ड लेजारस (1970) द्वारा किया गया। इस सिद्धांत की मान्यता है कि वातावरण की भिन्न-2 वस्तुओं तथा शरीर के अन्दर से मिलने वाली सूचनाओं का जब प्राणी ठीक-2 मूल्यांकन करता है, तो उसे संवेगात्मक अनुभूति होती है। अतः इसे संज्ञानात्मक सिद्धांत के नाम से जाना जाता है। व्यक्ति में संवेग की उत्पत्ति तब होती है जब वह यह अनुभव करता है कि किसी घटना या परिस्थिति तथा

किये गये व्यवहार का एक विशेष अर्थ होता है तथा यह हमारी वर्तमान अच्छाइयों एवं दीर्घकालीन लक्ष्यों के लिए लाभकारी या नुकसानदायक हो सकता है। इस प्रक्रिया को मूल्यांकन कहते है, इसमें केवल सूचनाओं का संग्रहण ही नहीं होता वरन् इस बात निर्णय लेते है कि व्यक्ति के लिए इन सूचनाओं का क्या अभिप्राय है। हमारा संवेग किसी वस्तुनिष्ठ परिवर्तन जिसमें व्यक्ति अन्तःक्रिया करता है, का परिणाम नहीं होता है वरन् उस स्थिति का स्वयं की आवश्यकताओं, इच्छाओं एवं साधनों के संदर्भ में किये गये मूल्यांकन का परिणाम होता है।

लेजारस के अनुसार मूल्यांकन दो प्रकार का होता है-

- प्राथमिक मूल्यांकन
- गौण मूल्यांकन

प्राथमिक मूल्यांकन वह होता है जिसमें व्यक्ति परिस्थिति या घटना की गंभीरता का मूल्यांकन करता है। यहाँ वह इस बात का मूल्यांकन करता है कि जो घटना घट रही है, उससे वह कितना प्रभावित हो रहा है। जिस समय प्राथमिक मूल्यांकन की प्रक्रिया निष्पन्न हो जाती है तो उसके उपरान्त गौण मूल्यांकन की प्रक्रिया की शुरूआत होती है। इसमें प्राणी उस घटना या स्थिति से निपटने की स्वंय की सामर्थ्य एवं साधनों का आंकलन करता है।
प्राणी में अनुभव किया गया संवेग प्राथमिक मूल्यांकन तथा गौण मूलयांकन के बीच सन्तुलन के परिणामस्वरूप उत्पन्न होता है। उस समय व्यक्ति इस बात का मूल्यांकन करता है कि परिस्थिति की गंभीरता ज्यादा है तथा उससे निपटने की सामर्थ्य तथा साधन कम है तो इसके कारण संवेग की तीव्रता ज्यादा होती है। किन्तु, इसके विपरीत परिस्थिति हाने पर संवेग की तीव्रता कम होती है।
उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि इस सिद्धांत में संवेग का मुख्य आधार भिन्न-2 प्रकार की सूचनाओं का मूल्यांकन है।

5) लिडंस्ले का सक्रियण सिद्धांत -

लिंडस्ले (1951) ने संवेग के सक्रियण सिद्धात का प्रतिपादन किया। इस सिद्धांत की मान्यता है कि संवेग सेरिब्रल कॉर्टेक्स के सक्रियण स्तर पर निर्भर करता है। लिंडस्ले ने सक्रियण स्तर के चार प्रकार बताये है -

1. शून्य स्तर
2. निम्न स्तर
3. उच्च स्तर
4. मध्यम स्तर

सक्रियण का शून्य स्तर मृत्यु के उपरान्त होता है। निम्न स्तर नींद के दौरान होता है। क्रोध, डर आदि तीव्र संवेगों में सेरीब्रल कॉर्टेक्स का सक्रियण स्तर उच्च होता है। सामान्य क्रियाओं जैसे- पढने-लिखने, खाने-पीने आदि के दौरान सरीब्रल कॉर्टेक्स का सक्रियण स्तर मध्यय होता है।

लिंडस्ले का सक्रियण सिद्धांत इलेक्ट्रोइन्सिफेलोग्राम अथवा ई.ई.जी से सम्बद्ध रखता है। इलेक्ट्रोइन्सिफेलोग्राम से कई तरह के मास्तिष्क तरंगों का अध्ययन किया जाता है इनमें एल्फा तथा बीटा मस्तिष्कीय तरंगें प्रमुख हैं। तब व्यक्ति आराम की स्थिति में होता है तो उस समय ई.ई.जी द्वारा रिकार्ड की गई मस्तिष्क तरंगें एल्फा तरंगें कहलाती हैं, इनकी ऊँचाई अधिक तथा नियमित होती है और यह प्रति सेकण्ड 8 से 12 चक्र की दर से उत्पन्न होती है । तीव्र संवेग की स्थिति में सेरी ब्रलकॉटेक्सि का सक्रियण स्तर में वृद्धि हो जाती है। तब उल्फा तरंगों की जगह बीटा तरंगें निकलने लगती है। इन तरंगों ऊँचाई कम तथा अनियमित होती है। जो प्रतिसेकण्ड 18 से 30 चक्र की दर से निकलती है।

लिंडस्ले का यह सिद्धांत अत्यधिक विस्तु है एवं इसके अनुसार संवेग की उत्पत्ति एवं उसकी अनुभूति में मस्तिष्क के अनेक भागों यथा रेटिकुलर फॉर्मषन, थैलमस, हाइपोथैलेमस तथा सेरीब्रल कॉर्टेक्स की संयुक्त रूप से भूमिका होती है। लिंडस्ले का कहना है कि जब प्राणी संवेग की उत्पत्ति करने वाले उद्दीपक का प्रत्यक्षण करता हे तो इससे उत्पन्न होने वाला स्नायुप्रवाह रेटिकुलर फॉर्मेषन में पहुँचने के बाद उसमें उत्तेजन उत्पन्न कर देता हैं। इसके परिणामस्वरूप रेटिकुलर फॉर्मेषन स्नायुप्रवाह को थैलमस तथा हाइपोथैलमस में भेज देता है, इससे उन दोनों में उत्तेजन हो जाता है तथा वे स्नायु प्रवाह को सेरिब्रल कॉर्टेम्स में भेजने का कार्य करते है। जब स्नायु प्रवाह कार्टेक्स में पहुँचता है तो व्यक्ति को संवेग की अनुभूति होती है। अतः लिंडस्ले के अनुसार संवेग तथा उससे उत्पन्न सक्रियता का आधार रेटिकुलर फॉर्मेषन है। यदि रेटिकुलर फॉर्मेषन में किसी कारण से उत्तेजन नहीं होता है तो प्राणी में संवेग भी उत्पन्न नहीं होता और ना ही किसी प्रकार की क्रियाशीलता की उत्पत्ति होती है।

लिंडस्ले ने सिद्धांत की व्याख्या पाँच प्रमुख परिकल्पनाओं के आधार पर की-

- संवेग में ई.ई.जी एक विशिष्ट संक्रियता पैटर्न को बताता है। इसमें एल्फा तरंगें समाप्त होकर उसके स्थान पर कम ऊँचाई की तीव्र बीटा तरंगें निकलती है।
- ई.ई.जी में संवेग में जो सक्रियता पैटर्न होता है उसे मस्तिष्क स्तंभ के रेटिकुलर फॉर्मेषन में उत्तेजन को उत्पन्न करके प्राप्त किया जा सकता है।
- जब व्यक्ति के डाइन्सेफलॉन जिसमें मूल रूप से थैलमस तथा हाइपोथैलमस आते है, को विनष्ट कर देते है, तो सेरिब्रल कॉरैअम्स में सक्रियण खत्म हो जाता है, और उसमें एल्फा तरंगें फिर से बननी शुरू हो जाती है।
- प्राणी के हाइपोथैलेमस तथा थैलेमस को नष्ट कर देने के कारण जो सांवेगिक व्यवहार होते हैं वे हाइपोथैलमस तथा थैलमस के उत्तेजित होने से उत्पन्न सांवेगिक व्यवहार से ठीक अलग होते हैं। जब हापोथैलेमस तथा थैलेमस घायल या नष्ट हो जाता है तो प्राणी में सुस्ती, निद्रालुता, उदासीनता स्तब्धि आदि अधिक हो जाती हैं।

- डाइन्सेफलॉन एवं निम्न मस्तिष्क स्तंभ के रेटिकुलर फॉर्मेषन के प्रक्रम ई.ई.जी. के सक्रियता प्रक्रम के या तो समान होते हैं या परस्पर व्यापी होते हैं।

अतः स्पष्ट है कि लिंडस्ले का सक्रियण सिद्धांत काफी प्रमुख सिद्धांत है तथा मनोवैज्ञानिकों के मध्य इस सिद्धांत की मान्यता अत्यधिक है।

विरोधी प्रक्रिया सिद्धांत (ओपोनेन्ट प्रॉसेस थ्योरी) -

विरोधी प्रक्रिया सिद्धांत में संवेग के गत्यात्मक गुणों की व्याख्या की गई है। सोलोमन तथा कॉरबिट (1974) तथा सोलोमन (1980) ने इस सिद्धांत को स्पष्ट करते हुए बताया है कि प्रत्येक संवेग उत्पन्न करने वाला उद्दीपक दो तरह की प्रक्रियाएँ व्यक्ति में उत्पन्न करता है-प्रथम को प्राथमिक प्रक्रिया तथा द्वितीय को विरोधी प्रक्रिया माना जाता है। प्राथमिक प्रक्रिया संवेगक की उत्पत्ति करने वाले उद्दीपक के प्रति एक अनार्जित तथा स्वतः प्रतिक्रिया होती है। यह सुखद या असुखद कुछ भी हो सकती है। प्राथमिक प्रक्रिया की यह विशेषता है कि यह अतिशीघ्र अधिकतम तीव्रता के बिन्दु पर पहुँच जाती है एवं उद्दीपक के हटते ही तुरन्त इसकी तीव्रता अत्यधिक कम हो जाती है।

संवेग उत्पन्न करने वाले उद्दीपक से एक दूसरी प्रक्रिया उत्पन्न होती है। यह पहली प्रक्रिया के विपरीत होती है। इसे विरोधी प्रक्रिया कहते है। इसके कारण प्राथमिक स्थिति के विपरीत सांवेगात्मक अवस्था प्राणी में उत्पन्न होती है। इस विरोधी प्रक्रिया का प्रारम्भ धीरे-2 होता है तथा क्षय भी धीरे-2 होता है। विरोधी प्रक्रिया प्राथमिक प्रक्रिया से कम तीव्र होती है किन्तु जब प्राणी के समक्ष उस उद्दीपक को बार-2 लाया जाता है तो पुनः विरोधी प्रक्रिया की तीव्रता में धीरे-2 वृद्धि होने लगती है।

जब संवेग उत्पन्न करने वाला उद्दीपक प्रथम बार व्यक्ति के समक्ष आता है तो प्राथमिक स्थिति की प्रबलता अधिक होती हे, क्योंकि वह बहुत तीव्रता से अपनी तीव्रता के अधिकतम बिन्दु पर पहुँच जाता है, समय बीतने के साथ - साथ विरोधी प्रक्रिया तीव्रता के अधिकतम बिन्दु पर पहुँचने लगती है क्योंकि कुल प्रभाव अर्थात प्राथमिक एवं विरोधी प्रक्रिया का संयुक्त रूप से पड़ने वाला प्रभाव धीरे-2 कम होने लगता है।

कई बार ऐसा भी होता है कि जब उद्दीपक एकदम से प्राणी के सामने से हट जाता है तो प्राथमिक स्थिति अचानक से शून्य बिन्दु पर आ पहुँचती है लेकिन विरोधी प्रक्रिया की तीव्रता अत्यधिक धीरे-2 घटती है। इस स्थिति में प्राथमिक अवस्था के न होने पर विरोधी स्थिति सक्रिय होती है और अनुभव किया गया संवेग (दोनों स्थितियों का बीज गणितीय योग) मूल रूप से विरोधी स्थिति का ही होता है। इसे प्रतिक्रिया प्रभाव (रिबाउण्ड इफेक्ट) के नाम से जाना जाता है।

इस प्रकार हम कह सकते है कि भौतिक विज्ञान का क्रिया प्रतिक्रिया का नियम संवेग पर भी लागू होता है। प्रत्येक प्रकार की सांवेगिक क्रिया से एक प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है तथा इस क्रम का हमारे व्यवहार पर अत्यधिक सार्थक प्रभाव पड़ता है।

9.3.4 संवेग में शारीरिक परिवर्तन -

संवेग में शारीरिक परिवर्तनों का महत्वपूर्ण स्थान होता है। कुछ परिवर्तनों का ज्ञान बाहर से देखने पर हो जाता है किन्तु कुछ परिवर्तनों की जानकारी के लिए यन्त्रों की सहायता ली जाती है। संवेग के सभी सिद्धांतों में संवेग से होने वाले षरीरिक परिवर्तनों का महत्व स्वीकार किया गया है। मनोवैज्ञानिकों ने अपने शोध निष्कर्षों के आधार पर संवेग से होने वाले शारीरिक परिवर्तनों को दो प्रमुख भागों में विभाजित किया है-

- वाह्य शारीरिक परिवर्तन
- आन्तरिक शारीरिक परिवर्तन
- वाह्य शारीरिक परिवर्तन

संवेग में होने वाले वाह्य शारीरिक परिवर्तनों से अभिप्राय ऐसे परिवर्तनों से है, जिन्हें स्पष्ट रूप से व्यक्ति द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है तथा जिन्हें बिना किसी उपकरण की सहायता से आँखों से देख सकते है। जैसे- क्रोध की अवस्था में व्यक्ति के चेहरे का लाल हो जाना, होंठ काँपना तथा आँखों को बढा-2 कर बोलना आदि-आदि। भय के संवेग की अवस्था में व्यक्ति का चेहरा सूखा दिखाई देता है एवं वह परिस्थिति से भाग जाता है। क्योंकि इन शारीरिक परिवर्तनों को कोई भी व्यक्ति आसानी से देख सकता है, अतः इस प्रकार के शारीरिक परिवर्तनों को वाह्य शारीरिक परिवर्तन कहा जाता है।

मनोवैज्ञानिकों ने वाह्य शारीरिक परिवर्तनों को तीन भागों में विभाजित किया है-

(1) मुखाभिव्यक्ति में परिवर्तन (Changes in facial expressions)

(2) स्वर अभिव्यक्ति में परिवर्तन (Changes in vocal expression)

(3) शारीरिक मुद्रा में परिवर्तन (Changes in bodily postures)

इन परिवर्तनों का विवेचन निम्न प्रकार है-

1) **मुखाभिव्यक्ति में परिवर्तन -** संवेग के समय होने वाले वाह्य शारीरिक परिवर्तनों में मुखाभिव्यक्ति के परिवर्तन सर्वाधिक स्पष्ट होते हैं।

डार्विन (1872) ने अपनी पुस्तक मनुष्य एवं पशु में संवेगों की अभिव्यक्ति में दावा किया कि संवेगों से स्वतः एक निश्चित प्रकार की मुखाकुति उत्पन्न हो जाती है। ये मुखाकृतियाँ जन्मजात होती हैं तथा इनका एक जैविक महत्व होता है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार चेहरे में अति संवेदनशील तथा छोटी - छोटी अनेक मांसपेशिया पायी जाती है। जो संवेग की उत्पत्ति के समय फैलना और सिकुड़ना आरम्भ कर देती हैं। अतः चेहरे में संवेग की स्थिति में

बहुत शीघ्र परिवर्तन दिखाई देता है। इजार्ड (1970,1990) के अनुसार चंहरे के द्वारा छः प्रमुख संवेगों की स्पष्ट अभिव्यक्ति होती है- खुशी, उदासी, आश्चर्य, डर, क्रोध एवं घृणा। इस दिशा में सर्वाधिक महत्वपूर्ण अध्ययन लैन्डिस (1924) ने किया। इसके अन्तर्गत प्रयोज्यों को विभिन्न प्रकार के संवेग उत्पन्न करने वाले कार्य करने के लिये कहा गया। कार्य के दौरान उनके मुखाभिव्यक्ति की तस्वीर ली गई। अध्ययन में पाया कि भिन्न-2 प्रयोज्य समान संवेग उत्पन्न करने वाले कार्य को करने पर भिन्न - भिन्न मुखाभिवयक्ति करते हैं। अतः मात्र मुखाभिव्यक्ति के आधार पर संवेग का निर्णय करना कठिन कार्य है। फेलेकी (1922) ने कुछ लोगों को मुखाभिव्यक्ति इस प्रकार करने को कहा जिससे कुछ विशिष्ट संवेग दिखलाई दें। कुछ प्रयोज्यों को इन मुखाभिवयक्तियों को ध्यान से देखकर यह बतलाने को कहा गया कि उससे किस तरह का संवेग उत्पन्न हो रहा है। प्रयोज्यों में मुखाभिव्यक्ति के आधार पर संवेग का निर्णय करने में काफी सहमति पाई गई। सेकिम, गुर तथा साउसी,1978 ने अपने शोध अध्ययन के आधार पर बताया कि किसी संवेग की अभिव्यक्ति में चेहरे के दायें भाग का योगदान बायें भाग की अपेक्षा अधिक होता है, इसका मुख्य कारण यह है कि दायें भाग का नियंत्रण मस्तिष्क के बायें गोलार्द्ध द्वारा किया जाता है।

एकमैन और उनके सहयोगी(1971) ने संवेग के अन्तर सांस्कृतिक अध्ययनों में पाया गया कि प्राथमिक संवेगों की मुखाकृतियाँ सभी में समान होती है यद्यपि स्थानीय रीति रिवाज के कारण उनमें कुछ विशिष्टताएँ भी आती हैं। यथा जापानियों के लिए आवश्यक है कि वे सभी परिस्थितियों में थोड़ा मुस्कुरायें। पाश्चात्य देशों में आँखों का अधिक खुलना आश्चर्य में चीनी लोग अपनी जिभ मुँह से बाहर निकाल लेते हैं। हमारे देश में कान खुजलाना संकोच प्रदर्शित करता है और चीनीयों में यह हर्ष का चिन्ह है। बक एवं सेविन (1972) के अनुसार, मुखाकृति को देखकर एक पुरूष दूसरे पुरूष के संवेग को जितना पहचानता है, उससे कहीं अधिक एक महिला में दूसरी महिला के संवेग को पहचानने की क्षमता होती है। मुखाकृतिक परिवर्तनों में पुतली के परिवर्तनों का महत्वपूर्ण स्थान है। पुतलियों का आकार संवेगों का अत्यधिक संवेदनशील सूचक है। मुखाभिव्यक्ति द्वारा संवेग की सही-2 पहचान तीन कारकों द्वारा अवरूद्ध हो जाती है-

i. प्रथम, प्रायः लोग संवेग को छिपाना सीख लेते हैं। प्रायः समाज में ऐसे लोग होते हैं, जो क्रोधित होने पर भी, जिससे वे क्रोधित हैं हँसकर अच्छी - अच्छी बातें करते हैं, उनके चेहरे को देखकर पता नहीं चल पाता कि वे क्रोधित हैं।

ii. दूसरा, कई बार ऐसा होता है कि व्यक्ति कई संवेग एक ही साथ व्यक्त करता है। ऐसी स्थिति में मुखाभिव्यक्ति इतनी अस्पष्ट तथा मिश्रित होती है कि उससे निश्चित रूप से किसी विशिष्ट संवेग के बारे में अनुमान लगाना अत्यधिक कठिन होता है।

iii. तीसरा, केवल चेहरा देखकर संवेग का निर्णय करना ठीक नहीं है, क्योंकि जब तक उस परिस्थिति के विषय में ज्ञान नहीं होता जिसमें व्यक्ति ने आनन की अमुक अभिव्यक्ति की है, संवेग का ठीक - ठीक निर्णय लेना कठिन हो जाता है।

2) स्वराभिव्यक्ति में परिवर्तन-

संवेगावस्था में व्यक्ति की आवाज में परिवर्तन हो जाता है जिसे सुनकर आसानी से उसमें उत्पन्न संवेग का पता चल जाता है। किसी व्यक्ति की आवाज की तीव्रता, उसके बोलने का तरीका, स्वर विराम तथा स्वर आरम्भ इत्यादि के आधार पर व्यक्ति के संवेग का पता चल जाता है। जैसे- यदि व्यक्ति बहुत जोर-जोर से चिल्लाकर तथा जल्दी-जल्दी बोलता है तो इससे उसके क्रोध का पता लग जाता है। फेयरबैक्स तथा प्रोनोमोस्ट (1939) ने विभिन्न शोध अध्ययनों के आधार पर बताया कि संवेगावस्था में व्यक्ति की आवाज में परिवर्तन आ जाता है। डुसेनवरी तथा नोरर (1939) ने विभिन्न संवेगात्मक आवाजों को रिकॉर्ड करके कुछ प्रयोज्यों को सुनवाया, अधिकतर प्रयोज्यों ने इन संवेगों की सही पहचान की।

अतः स्पष्ट है कि संवेगों से व्यक्ति की आवाज में परिवर्तन हो जाता है।

3) शारीरिक मुद्रा में परिवर्तन-

विभिन्न शोध अध्ययनों से यह सिद्ध हो चुका है कि संवेग व्यक्ति में एक खास शारीरिक मुद्रा उत्पन्न करते हैं। विभिन्न प्रयोगों के आधार पर यह ज्ञात हो चुका है कि प्रत्येक संवेग में व्यक्ति का हाथ, पैर, सिर आदि विशेष स्थिति में होते हैं। इसी कारण जब हम फिल्मों में किसी नायक या नायिका की मूक प्रस्तुति देखते हैं, जिसमें वे अपनी बात को केवल हाथ व पैरों की सहायता से बिना कुछ कहे कहते हैं, तो हम मात्र उनके अंगों का संचालन देखकर उनके संवेग पहचान लेते हैं। जैसे-यदि वह अपने सिर के बाल नोचता है तथा व्याकुलता व्यक्त करता है तो इससे स्पष्ट हो जाता है कि वह तनाव तथा चिन्ता की अवस्था में है। यदि व्यक्ति पैर पटक-पटक कर तथा हाथ झटकते हुए चलता है तो इससे उसके क्रोध में होने का पता चलता है। जब व्यक्ति अत्यधिक तनाव में होता है अथवा उत्पन्न किसी तीव्र संवेग को दबाने का प्रयास करता है तब उसके दोनों हाथों की मुट्ठियाँ बंद हो जाती हैं। आश्चर्य की स्थिति में तथा प्रसन्न अवस्था में दोनों हाथों की हथेलियाँ खुल जाती हैं।

विभिन्न संस्कृतियों में शारीरिक मुद्राओं में भिन्नता देखने को मिलती है। कुछ खास-खास संवेगों जैसे- किसी को शुभकामना देना, अलविदा कहना, अपमान करना आदि में संवेग को अभिव्यक्त करने के सभी तरीकों में समानता पायी जाती है। कुछ संस्कृतियों में हाथ के अंगूठे एवं तर्जनियों की सहायता से नाक को पकड़ते हुए बोलना घृणा एवं अपमान सूचक माना जाता है।

कई मनोवैज्ञानिकों जैसे बैरोन, बर्न तथा कैन्टोविज (1980) का मानना है कि केवल शारीरिक मुद्रा के आधार पर संवेग की पहचान करना एक कठिन कार्य है क्योंकि विभिन्न संवेगों से उत्पन्न शारीरिक मुद्राओं में

बहुत अधिक अन्तर नहीं होता है। अतः केवल शारीरिक मुद्रा के आधार पर संवेग को आसानी से नहीं समझा जा सकता है।

आन्तरिक शारीरिक परिवर्तन-

1. रक्तचाप में परिवर्तन
2. रक्त में रासायनिक परिवर्तन
3. श्वसन गति में परिवर्तन
4. हृदय एवं नाड़ी गति में परिवर्तन
5. पाचन क्रिया में परिवर्तन
6. ग्रन्थीय स्त्राव में परिवर्तन
7. गैल्वेनिक त्वक् अनुक्रिया में परिवर्तन
8. आँख की पुतली की अनुक्रिया में परिवर्तन
9. मस्तिष्कीय तरंगों में परिवर्तन

संवेगावस्था में बाह्य शारीरिक परिवर्तनों के साथ-साथ व्यक्ति में कुछ आन्तरिक परिवर्तन भी होते हैं जिन्हें आँखों से देखकर पहचाना नहीं जा सकता है। इन संवेगों की पहचान करने के लिए विशेष यंत्रों की आवश्यकता होती है। व्यक्ति के रक्तचाप में परिवर्तन, रक्त में रासायनिक परिवर्तन, आँखों की पुतली में परिवर्तन, मस्तिष्कीय तरंगों में परिवर्तन, हृदय गति में परिवर्तन, नाड़ी की गति में परिवर्तन, श्वसन गति में परिवर्तन, गैल्वेनिक त्वचा अनुक्रिया में परिवर्तन, पाचन प्रक्रिया में परिवर्तन आदि कुछ विशेष परिवर्तन हैं जिन पर मनोवैज्ञानिकों ने विभिन्न शोध किये हैं। इन आन्तरिक शारीरिक परिवर्तनों का वर्णन निम्न प्रकार है-

(1) रक्तचाप में परिवर्तन- विभिन्न संवेगावस्था में व्यक्ति के रक्तचाप में या तो कमी आ जाती है अथवा अभिवृद्धि हो जाती है। इसका मापन स्फिग्नोमैनोमीटर नामक एक विशेष यंत्र द्वारा किया जाता है। सामान्यतः क्रोध, भय और हर्ष में व्यक्ति का रक्तचाप बढ़ जाता है तथा दुःख की अवस्था में व्यक्ति का रक्तचाप कम हो जाता है। एक्स (1953) द्वारा एक शोध कॉलेज के छात्रों पर किया जिसमें क्रोध की अवस्था में छात्रों के रक्तचाप में वृद्धि पायी गयी। टाइगरस्टेड (1926) ने 13 छात्रों के रक्तचाप का मापन परीक्षा प्रारम्भ होने के पहले तथा बाद में किया। परिणाम में पाया कि परीक्षा प्रारम्भ होने से पहले छात्रों का रक्तचाप अधिक था तथा खत्म होने के बाद रक्तचाप में कमी आ गयी। वोल्फ तथा वोल्फ (1943) ने अपने अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष बताया कि क्रोध में स्त्री तथा पुरूष दोनों के ही रक्तचाप में वृद्धि हो जाती है तथा भय के संवेग में दोनों का ही रक्तचाप कम हो जाता है।

(2) रक्त में रासायनिक परिवर्तन- विभिन्न शोध अध्ययनों के आधार पर यह स्पष्ट हो चुका है कि संवेगावस्था में व्यक्ति के रक्त में उपस्थित रासायनिक तत्वों में परिवर्तन हो जाते हैं। संवेगावस्था में एड्रीनल ग्लैण्ड से स्रावित हॉर्मोन एड्रिनेलिन की मात्रा बढ़ जाती है। इसके परिणामस्वरूप व्यक्ति में सक्रियता तथा फुर्ती का स्तर बढ़ जाता है। इस प्रकार संवेगात्मक स्थिति में एड्रिनेलिन के रक्त में मिल जाने से व्यक्ति भय, क्रोध आदि संवेग द्वारा उत्पन्न आपात स्थिति में ठीक ढंग से व्यवहार कर पाता है तथा वह स्वयं को इस स्थिति में ठीक ढंग से समायोजित कर लेता है। यही कारण है कि इसे एमरजेन्सी हार्मोन भी कहा जाता है। सक्रियता बढ़ने के साथ, श्वसन गति तथा हृदय की गति बढ़ जाती है और पाचन क्रिया स्थगित हो जाती है। खून में ग्लूकोस की मात्रा भी बढ़ जाती है। इन सभी शारीरिक परिवर्तनों का परिणाम यह होता है कि सांवेगिक रूप से सजग होकर व्यक्ति परिस्थिति का सामना कर पाता है। सांवेगिक अवस्था में व्यक्ति के रक्त में सिम्पैथिन नामक रासायनिक तत्व की मात्रा बढ़ जाती है इससे सांवेगिक उद्दीपक हट जाने के बाद भी व्यक्ति काफी देर तक सांवेगिक अवस्था में बना रहता है। सांवेगिक अवस्था में व्यक्ति के लाल रक्तकणों में भी परिवर्तन देखा गया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि सांवेगिक स्थिति में व्यक्ति के रक्त में रासायनिक तत्वों में भी अत्यधिक परिवर्तन हो जाता है।

(3) आँखों की पुतली की अनुक्रिया में परिवर्तन- आँख की पुतली ऑटोनोमिक नर्वस सिस्टम के नियन्त्रण में होती है। मनोवैज्ञानिकों ने विभिन्न शोध अध्ययनों के आधार पर बताया कि संवेग की अवस्था में आँख की पुतली में भी परिवर्तन होते हैं। बेन्डर (1933) के अनुसार, तीव्र संवेग जैसे- हर्ष, प्रसन्नता, आश्चर्य आदि अवस्थाओं में आँख की पुतली फैल जाती है। एम्स (1953) के अध्ययन के अनुसार, दुःख तथा विरक्ति के संवेग में आँख की पुतली सिकुड़ जाती है।

(4) मस्तिष्कीय तरंगों में परिवर्तन- शरीरक्रिया मनोवैज्ञानिकों ने विभिन्न शोध निष्कर्षों के आधार पर यह स्पष्ट किया है कि संवेगावस्था में मस्तिष्कीय तरंगों में भी परिवर्तन होते हैं। मस्तिष्कीय तरंगों को इलेक्ट्रोइन्सिफैलोग्राम (ई.ई.जी.) की सहायता से मापा जाता है। जब व्यक्ति शान्त तथा प्रसन्न मनःस्थिति में होता है, उस समय मस्तिष्क से एल्फा तरंगों का उत्सर्जन होता है इसकी बारंबारता प्रति सेकण्ड 8 से 12 मानी जाती है। जब व्यक्ति चिन्ता, तनाव या सांवेगिक उत्तेजन की अवस्था में होता है उस समय बीटा तरंगों का उत्सर्जन बढ़ जाता है। इनकी बारंबारता प्रति सेकण्ड 18 से 30 मानी जाती है।

(5) हृदय की गति तथा नाड़ी की गति में परिवर्तन- सांवेगात्मक अवस्था में व्यक्ति के हृदय की गति एवं नाड़ी की गति में भी परिवर्तन हो जाता है।

लेफ्रानकोईस (1983) के अनुसार- ''क्रोध तथा प्यार की अवस्था में हृदय की गति बढ़ जाती है।''
शेपार्ड(1962) के अनुसार- ''चिन्ता की अवस्था में हृदय तथा नाड़ी की गति तीव्र हो जाती है।''

(6) **श्वसन गति में परिवर्तन-** संवेगों का व्यक्ति की श्वसन गति पर भी प्रभाव पड़ता है। कुछ संवेगों के उत्पन्न होने पर श्वसन प्रक्रि

स्कैग्स (1930) के अनुसार- ''मानसिक कार्य करते समय साँस की गति तेज किन्तु अनियमित होती है। दुःख, अवसाद तथा मानसिक अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति में साँस की गति धीमी हो जाती है। क्रोध की अवस्था में साँस की गति तीव्र हो जाती है।''

(7) पाचन क्रिया में परिवर्तन- संवेगों से पाचन क्रिया भी प्रभावित होती है। तीव्र संवेगों जैसे- भय, क्रोध, चिन्ता आदि में पाचन क्रिया अत्यधिक धीमी हो जाती है। तीव्र संवेगात्मक स्थिति में व्यक्ति में या तो कब्ज की (कॉन्स्टीपेशन) या दस्त (लूज मोशन) की समस्या उत्पन्न हो सकती है। इसी कारण प्रायः परीक्षा के समय बच्चों को लूज मोशन की शिकायत हो जाया करती है।

कैनन (1915) ने अपने प्रयोग के आधार पर यह निष्कर्ष दिया कि जब बिल्ली के सामने कुत्ते को लाया जाता था तो बिल्ली में तीव्र डर का संवेग उत्पन्न हो जाता था।

(8) ग्रन्थीय स्राव में परिवर्तन- संवेगों के दौरान व्यक्ति की लार ग्रन्थियों तथा एड्रीनल ग्रन्थि में महत्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं।

बेन्गर तथा इलिंगटन (1943) के अनुसार- ''तीव्र संवेग की स्थिति में व्यक्ति की लार ग्रन्थि से स्राव कम निकलता है।''

फलतः उसे मुँह के अन्दर सूखा-सूखा अनुभव होता है। संवेग की अवस्था में एड्रीनल ग्लैण्ड से एड्रिनेलिन काफी मात्रा में स्रावित होता है जिसके रक्त में मिलने से व्यक्ति में महत्वपूर्ण परिवर्तन होते है। ऐसे कुछ महत्वपूर्ण शारीरिक परिवर्तन निम्नानुसार है-

- एड्रिनेलिन के रक्त में मिलने से व्यक्ति सक्रियता का अनुभव करता है।
- एड्रिनेलिन के रक्त में मिलने से रक्त में जमने की प्रवृत्ति अधिक बढ़ जाती है।
- एड्रिनेलिन के रक्त में मिलने से रक्तचाप बढ़ जाता है। लाल रक्त कणों की संख्या में वृद्धि तथा रक्त में ग्लूकोस की मात्रा में वृद्धि हो जाती है।

(9) गैल्वेनिक त्वक् अनुक्रिया में परिवर्तन- संवेग उत्पन्न होने की स्थिति में गैल्वेनिक त्वक् अनुक्रिया या जी.एस.आर. में भी अनुक परिवर्तन होने लगते है।

एक्स (1953) के अनुसार- ''क्रोध में जी.एस.आर. में कमी हो जाती है।''

शॉक तथा कूम्बस (1937) के अनुसार- ''काफी सुखद तथा काफी दुःखद संवेग में जी.एस.आर. लड़कियों में लड़कों की अपेक्षा अधिक होता है।''

9.4 सांवेगिक बुद्धि

संवेगात्मक बुद्धि से क्या आशय है ?

सांवेगिक बुद्धि पद का प्रतिपादन सर्वप्रथम 1970 में हावर्ड गार्डनर, पीटर सैलोवी तथा जॉन जैक मायर द्वारा किया गया। इसकी सैद्धान्तिक व्याख्या गोलमैन (1995) ने अपनी पुस्तक इमोशनल इन्टेलीजेन्सः व्हाई इट कैन मैटर मोर दैन आई.क्यू. में किया। सांवेगिक बुद्धि का तात्पर्य व्यक्ति की उस क्षमता से है जिसमें वह अपने संवेगों को सकारात्मक तथा संरचनात्मक ढंग से प्रत्यक्षित, नियंत्रित तथा मूल्यांकित करता है। सांवेगिक बुद्धि के द्वारा व्यक्ति अपनी तथा दूसरों की सांवेगिक अवस्थाओं की पहचान करता है। कुछ शोधकर्ताओं के अनुसार, सांवेगिक बुद्धि सीखी जा सकती है जबकि कुछ अन्य के अनुसार यह एक जन्मजात क्षमता है।

9.4.1 अर्थ एवं परिभाषा -

गोलमैन के अनुसार- ''सांवेगिक बुद्धि दूसरों एवं स्वयं के भावों को पहचानने की क्षमता तथा अपने आप को अभिप्रेरित करने एवं अपने तथा अपने सम्बन्धों में संवेग को प्रबंधित करने की क्षमता है।''

पीटर सैलोवी तथा जॉन डी मॉयर (1990) के अनुसार -''सांवेगिक बुद्धि सामाजिक बुद्धि का एक भाग है जो अपनी तथा दूसरों की भावनाओं को पहचानने तथा उनमें विभेद करने की क्षमता रखती है तथा जिसके द्वारा व्यक्ति अपने चिन्तन तथा क्रियाओं को निर्देशित करता है।''

9.4.2 सांवेगिक बुद्धि का विकास -

पाँच मुख्य कौशलों के प्रयोग द्वारा सांवेगिक बुद्धि को विकसित किया जा सकता है-

1. तनाव को शीघ्रता से कम करने की क्षमता- जब हम स्वयं में दिन-प्रतिदिन के जीवन में आने वाले तनावों को कम करने की क्षमता विकसित कर लेते हैं, तब इसके द्वारा हम सांवेगिक बुद्धि का विकास कर सकते हैं।
2. अपने संवेगों को पहचानने तथा उनका प्रबन्धन करने की क्षमता- सांवेगिक बुद्धि के विकास हेतु आवश्यक है कि हम अपने भीतर उत्पन्न होने वाले संवेगों को पहचान कर उनका कुशल प्रबन्धन कर सकें।
3. अभाषिक वार्तालाप का प्रयोग- सांवेगिक बुद्धि के विकास हेतु आवश्यक है कि हम अभाषिक वार्तालाप करने में सक्षम हों।
4. चुनौतियों का सामना करने में मस्तिष्कीय कौशल का प्रयोग - सांवेगिक बुद्धि के विकास हेतु आवश्यक है कि व्यक्ति चुनौतियों का सामना करने तथा उनका समाधान करने में बौद्धिक क्षमताओं का प्रयोग करें। वह सही तथा गलत का प्रेक्षण करके ही व्यवहारों का निर्देशन करे।
5. अन्तर्द्वन्द्वों का सकारात्मक निपटारा- जब व्यक्ति अन्तर्द्वन्द्वों का सकारात्मक निपटारा करता है तब वह निश्चित रूप से सांवेगिक बुद्धि का विकास करने में सफल होता है।

इस प्रकार सांवेगिक बुद्धि व्यक्ति की एक अति महत्वपूर्ण क्षमता है तथा उसकी सभी प्रकार की सफलताओं का एक मुख्य आधारबिन्दु भी।

सांवेगिक बुद्धि को निर्धारित करने वाले कारक -

सैलोवी तथा मॉयर ने अपने मॉडल में सांवेगिक बुद्धि को निर्धारित करने वाले चार कारकों का वर्णन किया है-

1. संवेगों का प्रत्यक्षण
2. संवेगों का उपभोग करने की क्षमता
3. संवेगों को समझने की क्षमता
4. संवेगों का प्रबन्धन करने की क्षमता

सांवेगिक क्षमताएँ -

डेनियल गोलमैन ने चार सांवेगिक क्षमताओं का वर्णन किया है, जो व्यक्तियों को एक दूसरे से भिन्न करता है-

1. आत्म अवगतता- अपने संवेगों को पहचानना तथा कैसे वे हमारे विचारों तथा व्यवहार को प्रभावित करते हैं, का पता लगाने की क्षमता, अपनी शक्तियों तथा कमजोरियों को समझने की क्षमता आदि सम्मिलित होते हैं।
2. आत्म प्रबन्धन- आवेगी भावनाओं तथा व्यवहारों को नियंत्रित करने की क्षमता, अपने संवेगों को स्वस्थकर ढंग से प्रबन्धित करने की क्षमता, प्रारंभ करने, वादे करने तथा उन्हें निभाने की क्षमता तथा बदलती परिस्थितियों के साथ सामंजस्य करने की क्षमता सम्मिलित होती है।
3. सामाजिक चेतना- इसमें दूसरे लोग क्या कह रहे हैं, या अनुभव कर रहे हैं और क्यों कह रहे हैं और कैसा अनुभव कर रहे हैं, को समझने की क्षमता सम्मिलित होती है।
4. सामाजिक कौशल- इसमें इस ढंग से व्यवहार करने की क्षमता सम्मिलित होती है, जिसके माध्यम से व्यक्ति दूसरों से वांछित परिणाम प्राप्त करने में सफल होता है और इस तरह वह व्यक्तिगत लक्ष्यों की प्राप्ति कर लेता है।

सांवेगिक बुद्धि के द्वारा व्यक्ति अपने सम्बन्धों का प्रबन्धन करने में भी सफल होता है, वह स्वस्थ सम्बन्ध विकसित करता है तथा उन्हें बनाये रखता है। वह दूसरों से प्रभावित होता है तथा दूसरों को प्रभावित करता है, समूह में कार्य करने पर उसका निष्पादन उत्तम होता है, वह अन्तर्द्वन्द्वों का कुशल प्रबन्धन करने की क्षमता रखता है।

9.5 सारांश

संवेग- एक ऐसी जटिल भाव की अवस्था, जिसमें शरीर में उत्तेजना पैदा होती है। ग्रन्थियों में क्रियायें होती है, तथा कुछ विशिष्ट प्रकार के व्यवहार होते है।

प्रमुख संवेग - मनोवैज्ञानिकों के अनुसार प्राणियों में अनेक प्रकार के संवेग पाये जाते है, किन्तु इनमें से प्रमुख निम्न प्रकार है।

संवेग के प्रकार -

1) भय
2) घृणा
3) करूणा व दुःख
4) आश्चर्य
5) आत्मभिमान
6) भूख
7) कृतिभाव
8) क्रोध
9) वात्सल्य
10) कामुकता
11) आत्महीनता
12) एकाकीपन
13) अधिकार भावना
14) आमोद

संवेग के मुख्य तत्व - तीन तत्व

1. दैहिक (Physical)
2. संज्ञानात्मक (Cognitive)
3. व्यवहारपरक (Behavioral)

संवेग के प्रमुख सिद्धान्त -

1. जेम्स लाँजे का सिद्धान्त
2. कैनन बार्ड का सिद्धान्त
3. स्कैकटर सिंगर सिद्धान्त
4. संज्ञानात्मक मूल्यांकन सिद्धान्त
5. लिंडस्ले संकियण सिद्धान्त
6. विरोधी प्रक्रिया सिद्धान्त

संवेग में शारीरिक परिवर्तन - दो प्रकार के परिवर्तन

1. वाह्य शारीरिक परिवर्तन
2. आन्तरिक शारीरिक परिवर्तन

सांवेगिक बुद्धि- संवेगों का सकारात्मक एवं संरचनात्मक ढंग से प्रत्यक्षण, नियंत्रण एवं मूल्यांकन करने की क्षमता

संवेगिक बुद्धि को निर्धारित करने वाले कारक-

- संवेगों का प्रत्यक्षण
- संवेगों का उपयोग करने की क्षमता
- संवेगों को समझने की क्षमता
- संवेगों का प्रबन्धन करने की क्षमता

संवेगिक क्षमताएँ (डेनियल गोलमेन के अनुसार)-

- आत्म अवगतता
- आत्म प्रबन्धन
- सामाजिक चेतना
- सामाजिक कौशल

संवेगिक बुद्धि को विकसित करने के उपाय-

- तनाव को शीघ्रता से कम करने की क्षमता
- अपने संवेगों को पहचानने एवं प्रबंधन करने की क्षमता
- अभाषिक वार्तालाप का प्रयोग
- चुनौतियों का सामना करने में मस्तिष्कीय कौशल का प्रयोग
- अन्तर्द्वन्द्वों का सकारात्मक निपटारा

9.6 शब्दावली

- **अन्तरावयव:** आन्तरिक अंग
- **उदद्दीपक:** जो उत्तेजित करने का कार्य करता है।
- **संज्ञानात्मक:** जिसका संबध मानसिक प्रक्रियाओं से है। जैसे - सोचना, समझना, निर्णय लेना, तर्क - विर्तक करना इत्यादि।
- **प्रयोज्य:** जिन पर कोई प्रयोगात्मक या शोध अध्ययन किया जाता है। अर्थात् शोध कार्य में शामिल हाने वाले प्रतिदर्श

- **त्वक्:** त्वचा
- **प्रत्यक्षित:** प्रत्यक्षण करना
- **मूल्यांकित:** मूल्यांकन करना
- **अभासिक वार्तालाप:** जिस वार्तालाप में भाषा या शब्दों का प्रयोग नहीं होता है।
- **अन्तर्द्वन्द:** एक प्रकार की मानसिक समस्या जिसमें व्यक्ति उचित विकल्प का चयन करने उचित निर्णय लेने में स्वयं को असमर्थ महसूस करता है।

9.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. व्यक्ति भालू को देखकर भाग जाता है, इसलिए डर जाता है, जैसी उक्ति का संबंध निम्नांकित में से किस सिद्धान्त में से है -

   (अ) जेम्स लांगे सिद्धान्त (ब) कैनन बार्ड सिद्धान्त

   (स) स्कैकटर सिंगर सिद्धान्त (द) लिंडस्ले सिद्धान्त

2. निम्नांकित में से किस सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति में संवेगात्मक अनुभूति तथा संवेगात्मक व्यवहार एक ही साथ में उत्पन्न होते हैं-

   (अ) स्कैकटर सिंगर सिद्धान्त (ब) जेम्स लांगे सिद्धान्त

   (स) लिंडस्ले सिद्धान्त (द) इनमें से किसी भी सिद्धान्त द्वारा नहीं।

3. निम्नांकित में से कौन एक प्राथमिक संवेग का उदाहरण नहीं है -

   (अ) घृणा (ब) क्रोध (स) विरक्ति (द) आत्माभिमान

4. निम्नलिखित में से कौन संवेग का केन्द्र माना गया है-

   (अ) थैलेमस (ब) एमिगडैला

   (स) हाइपोथैलेमस (द) लिम्बिक तंत्र

5. निम्नांकित में से किसे संवेग की विशेषता में शामिल नहीं किया जा सकता है-

   (अ) संवेग विकीर्ण होता है। (ब) संवेग प्रेरणात्मक होता है।

   (स) संवेग संचयी होता है। (द) संवेग में सातत्य नहीं होता है।

6. संवेग की उत्पत्ति में निम्नांकित में से कौन से तंत्र की भूमिका अहम् होती है ?

   (अ) अनुकम्पी तंत्रिका तंत्र (ब) उपअनुकम्पी तन्त्रिका तंत्र

   (स) कायिक तन्त्रिका तंत्र (द) केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र

नीचे कुछ कथन दिये गये है। जो कथन सही है उनके आगे सही का तथा जो गलत है, उनके आगे गलत का चिन्ह लगायें –

7. सांवेगिक बुद्धि की सैद्धान्तिक व्याख्या हावर्ड गार्डनर द्वारा की गई। ( )
8. सांवेगिक बुद्धि की सैद्धान्तिक व्याख्या डैनियल गालमैन द्वारा की गई। ( )
9. "Emotion intelligence why EI matter than IQ" पुस्तक के लेखक जोन जैक मायर है। ( )
10. सैलोबी तथा मायर ने सांवेगिक बुद्धि को निर्धारित करने में चार कारकों की भूमिका को स्वीकार किया है। ( )
11. डेनियल गोलमैन के अनुसार सांवेगिक बुद्धि दूसरों एवं स्वयं के भावों को पहचानने की क्षमता तथा स्वयं को अभिप्ररित करने एवं अपने संबधों में संवेग को प्रबधित करने की क्षमता है। ( )
12. सांवेगिक बुद्धि पद का सर्वप्रथम पतिपादन 1970 में किया गया। ( )
13. संवेगिक बुद्धि पद का सर्वप्रथम प्रतिपादन 1972 में किया गया। ( )
14. अपने संवेगों को सकारात्मकएवं संरचनात्मक ढंग से प्रत्यक्षित नियंत्रित एवं मूल्यांकित करने की क्षमता ही संवेगात्मक बुद्धि है। ( )
15. सांवेगिक बुद्धि की सैद्धान्तिक व्याख्या 1990 में की गई। ( )
16. "Emotion intelligence why EI matter than IQ" डेनियल गौलमेन की रचना है। ( )

उत्तर: 1) अ 2) द 3) स 4) स 5) द 6) अ 7) गलत
8) सही 9) गलत 10) सही 11) सही 12) सही
13) गलत 14) सही 15) गलत 16) सही

9.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- सिंह, अरूण कुमार, (2006) उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान। मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड जवाहर नगर, दिल्ली।
- सिंह, अरूण कुमार, (2006) संज्ञानात्मक मनोविज्ञान। मोतीलाल बनारसीदास, बंगालो रोड, जवाहर नगर दिल्ली।
- अर्जीमुर्र रहमान, (2003) सामान्य मनोविज्ञान: विषय और व्याख्या।
- श्रीवास्तव, रामजी, आलम, आसिम (2004) आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान।
- श्रीवास्तव, रामजी। (2003), संज्ञानात्मक मनोविज्ञान।

9.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. संवेग का स्वरूप स्पष्ट करते हुए इसकी विशेषताओं का वर्णन करें।
2. जेम्स लांगे सिद्धान्त का वर्णन करें।

3. संवेग में होने वाले शारीरिक परिवर्तनों का वर्णन करें।
4. संवेग के लिंडस्लेम सिद्धान्त की व्याख्या करें।
5. संवेग में होने वाले आंतरिक शारीरिक परिवर्तनों का वर्णन करें।
6. संवेगात्मक बुद्धि से आप क्या समझते है ? सांवेगिक बुद्धि को किस प्रकार से विकसित किया जा सकता है?

ईकाई-10 उत्तेजना एवं समस्थिति, अन्तर्नोद ह्रास सिद्धान्त, अर्जित निस्सहायता (Arousal and Homeostasis, Drive Reduction Theory, Learned Helplessness)

इकाई संरचना

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 उत्तेजना

10.3.1 उत्तेजना: अर्थ एवं परिभाषा

10.3.2 उत्तेजना: स्रोत

10.4 समस्थिति

10.4.1 समस्थिति: अर्थ एवं परिभाषा

10.4.2 समस्थिति के प्रकार

10.4.3 समस्थिति का प्रेरणा से संबंध

10.5 अन्तर्नोद सिद्धान्त

10.5.1 अन्तर्नोद सिद्धान्त क्या है?

10.5.2 सिद्धान्त का मूल्यांकन

10.6 अर्जित निस्सहायता

10.6.1 अर्जित निस्सहायता से क्या आशय है?

10.6.2 अर्जित निस्सहायता के प्रभाव या परिणाम

10.7 सारांश

10.8 शब्दावली

10.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

10.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

10.11 निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों, इससे पूर्व की ईकाइयों में आप चितंन की प्रक्रिया, इसके विभिन्न प्रकार एवं सिद्धान्त, तर्कणा, बुद्धि, बुद्धि लब्धि, संवेग तथा संवेग के प्राणी शरीर पर पड़ने वाले प्रभावों इत्यादि विषयों का अध्ययन कर चुके हैं।

प्रस्तुत इकाई में इसी क्रम को आगे बढ़ाते हुये कुछ नये विषयों जैसे उत्तेजना, समस्थिति, अन्तर्नोद का सिद्धान्त अर्जित निस्सहायता इन चार बिन्दुओं पर क्रमशः चर्चा की जायेगी।

उत्तेजना का तात्पर्य व्यक्ति की बढ़ी हुई सक्रियता से है। सामान्य स्तर पर सक्रियता सभी के लिए आवश्यक है क्योंकि यह हमें अपने कार्यो को सुचारू रूप से करने की शक्ति प्रदान करती है, किन्तु इसका निम्न एवं बढ़ा हुआ स्तर हानिकारक होता है क्योंकि निम्न उत्तेजना में व्यक्ति अपने किसी भी कार्य को ठीक ढंग से नहीं कर पाता और बढ़ी हुई उत्तेजना में उसका स्वयं पर नियन्त्रण कठिन हो जाता है। उत्तेजना के मध्यमस्तर को समस्थितिकी के साथ जोड़ सकते हैं क्योंकि इसमें व्यक्ति के मन, शरीर, प्राण, इन्द्रियाँ सभी में तालमेल होता है तथा सभी सुचारू रूप से अपने कार्य करते हैं। उत्तेजना के बढ़ जाने पर व्यक्ति अत्यधिक तनाव महसूस करता है तथा इसके समाधान हेतु प्रयास करता है किन्तु उत्तेजना का निम्न स्तर व्यक्ति को निष्क्रिय कर देता है, उसे लगता है कि वह कोई काम नहीं कर सकता है; वह स्वयं को निस्सहाय महसूस करता है। अतः उत्तेजना का होना हम सभी के लिए आवश्यक है, उत्तेजना प्रत्यक्ष रूप से अभिप्रेरण से सम्बन्धित है।

अतः स्पष्ट है कि उत्तेजना, समस्थिति, अन्तर्नोद एवं निस्सहायता चारों एक दूसरे से सम्बद्ध है।

पाठकों निश्चित ही आपके मन में इनकी विस्तृत जानकारी प्राप्त करने की जिज्ञासा उत्पन्न हो रही होगी। प्रस्तुत ईकाई के अध्ययन के उपरान्त हमें आशा है कि आप अपनी जिज्ञासाओं का समाधान करने में समर्थ होंगे।

10.2 उद्देश्य

प्रस्तुत ईकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप -

- उत्तेजना के अर्थ को स्पष्ट कर सकेंगे।
- उत्तेजना के विभिन्न स्तरों का अध्ययन कर सकेंगे।
- उत्तेजना के विभिन्न स्रोतों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- उत्तेजना के प्राणियों पर पड़ने वाले प्रभावों को स्पष्ट कर सकेंगे।
- समस्थिति से क्या आशय है? इसे स्पष्ट कर सकेंगे।
- समस्थिति के विभिन्न प्रकारों का विश्लेषण कर सकेंगे।
- समस्थिति एवं प्रेरणा के पारस्परिक संबंध को स्पष्ट कर सकेंगे।

- उत्तेजना एवं समस्थिति के आपसी संबंध का अध्ययन कर सकेंगे।
- अन्तर्नोद के अर्थ को स्पष्ट कर सकेंगे।
- अन्तर्नोद से किस प्रकार तनाव दूर होता है, इसका विश्लेषण कर सकेंगे।
- अर्जित निस्सहायता के अभिप्राय को स्पष्ट कर सकेंगे।
- प्राणी में निस्सहायता की भावना किस प्रकार से विकसित होती हैं इसका अध्ययन कर सकेंगे।
- अर्जित निस्सहायता के प्राणी के व्यक्तित्व पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण कर सकेंगे।
- उत्तेजना, समस्थिति, अन्तर्नोद एवं अर्जित निस्सहायता के पारस्परिक संबंधों को स्पष्ट कर सकेंगे।

10.3 उत्तेजना

10.3.1 उत्तेजना: अर्थ एवं परिभाषा -

प्रिय विद्यार्थियों, अब आपके मन में जिज्ञासा उत्पन्न हो रही होगी कि यह उत्तेजना आखिर है क्या ? हम अपनी नित्यप्रति की जिन्दगी में अनेक बार स्वयं को उत्तेजित होता हुआ अनुभव भी करते हैं, किन्तु आखिर प्राणी की किस मनः स्थिति को उत्तेजना की संज्ञा दी जाती है? यह जानने-समझने का विषय है। तो आइये, जानने की कोशिश करते हैं कि उत्तेजना से मनोवैज्ञानिकों का क्या अभिप्राय है?

उत्तेजना किसी प्राणी की उत्तेजित होने की सामान्य अवस्था है। उत्तेजना से अभिप्राय व्यक्ति की सामान्य जागृति और अनुक्रियात्मकता से है। उत्तेजना को कई नामों से पुकारते हैं जैसे सचेत, जागा हुआ, चौंकना आदि। वस्तुतः जीवन में कोई भी कार्य सक्रिय हुए या उत्तेजित हुए बिना पूरा नहीं हो सकता।

सामान्यता उत्तेजना का अर्थ प्राणी की सक्रियता का बढ़ जाना है। एक सामान्य स्तर पर किसी भी कार्य को सम्पादित करने के लिये सक्रियता अनिवार्य रूप से आवश्यक है किन्तु आवश्यकता से अधिक या कम उत्तेजना प्राणी के लिये हानिकारक सिद्ध होती है, क्योंकि निम्न उत्तेजना के कारण प्राणी किसी भी कार्य को भलीभाँति नहीं कर पाता है और अत्यधिक उत्तेजित होने पर वह स्वयं पर नियंत्रण खो देता है, जिससे भी कार्य सुचारू रूप से सम्पन्न नहीं हो पाता। अतः उत्तेजना का स्तर मध्यम होना चाहिये जिससे कि, कार्य भी पूरा हो सके और प्राणी का स्वयं पर नियंत्रण भी बना रहे।

परिभाषाएँ-

डोनाल्ड हैब के अनुसार:- '' उत्तेजना अथवा जागरूकता शक्ति प्रदान करती है लेकिन दिशा निर्देश प्रदान नहीं करती। यह एक इन्जन के समान है लेकिन उसका मार्ग परिवर्तित करने वाला साधन नहीं।''

जोन पी. डिसैको और विलियम क्राराफोर्ड के अनुसार:- ''उत्तेजना किसी व्यक्ति के जोश की सामान्य स्थिति का वर्णन करती है।''

उत्तेजना के विभिन्न स्तर:-

उत्तेजना को व्यक्ति की सक्रियता के लिए आवश्यक घटक माना जाता है। इसके तीन स्तर होते हैं- उच्च, मध्यम तथा निम्न। प्राणी को क्रियाशील बनाए रखने के लिए जागरूकता का मध्यम स्तर पर्याप्त होता है। प्रायः यह देखने में आता है कि प्राणी प्रत्येक सरल उद्दीपक को तो प्राप्त करना चाहता है लेकिन कठोर उद्दीपक से दूर भागना चाहता है। इसलिए प्रयास किया जाता है कि व्यक्ति का उत्तेजना स्तर मध्यम अवश्य बना रहे।

उदाहरण:- इन तीनों स्तरों को इस प्रकार समझा जा सकता है- मान लिजिए, एक व्यक्ति सो रहा है, दूसरा व्यक्ति सतर्क है तथा तीसरा व्यक्ति उतावला तथा चिन्तित है तो हम कहेंगे कि ये तीनों व्यक्ति क्रमशः निम्न, मध्यम तथा उच्च उत्तेजना स्तर पर हैं।

10.3.2 उत्तेजना: स्रोत –

व्यक्ति को उत्तेजना दो स्रोतों से मिलती हैं-

1. आन्तरिक उत्तेजना स्रोत
2. बाह्य उत्तेजना स्रोत

1. आन्तरिक उत्तेजना स्रोत- सामान्य रूप से शारीरिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिए व्यक्ति सक्रिय होता है। व्यक्ति स्वभाव से ही सक्रिय होता है। आन्तरिक उत्तेजना स्रोत शारीरिक निम्न स्तर की आवश्यकताओं से लेकर मानसिक उच्च स्तर की आवश्यकताओं तक होता है। जिज्ञासा तथा उत्तेजना के मध्य धनात्मक सहसम्बन्ध है। इसी प्रकार मध्यम स्तर की चिन्ता तथा उत्तेजना के मध्यम भी धनात्मक सहसम्बन्ध पाया जाता है।

2. बाह्य उत्तेजना स्रोत:- सामान्यतः वातावरण से व्यक्ति को उत्तेजना मिलती है। वातावरण के तत्व उद्दीपक का कार्य करते हैं। वातावरण की नवीनता भी व्यक्ति को अभिप्रेरित करती है। नीरसता को दूर करने के लिए परिवर्तन तथा वातावरण की नवीनता आवश्यकता होती है।

उत्सुकता तथा उत्तेजना दोनों ही भावना के स्तर को उठाने में सहायक होते हैं। उत्तेजना में भावुकता की मात्रा अधिक होती है। उत्तेजना का छात्र की निष्पत्तियों से धनात्मक सहसम्बन्ध होता है।

मानव को अपने जीवन के आरम्भ के वर्षों में बहुत बड़ी मात्रा में अपने कल्याण के लिए वातावरणीय उत्तेजना की आवश्यकता होती है। निर्धन वातावरण से उत्तेजना स्तर कम हो जाता है क्योंकि पहले जीवित रहने की आवश्यकता की सन्तुष्टि होनी चाहिए। वे व्यक्ति जिन्हें उत्तेजना प्राप्त नहीं होती वे क्रिया करने के सब जोश को खो देते हैं।

उदाहरणार्थ - वे व्यक्ति जो लम्बे समय तक बेकार रहते हैं, वे अपने जीवन की ओर से उदासीन हो जाते हैं और उनका दृष्टिकोण संकीर्ण हो जाता है।

10.4 समस्थिति

10.4.1 समस्थिति: अर्थ एवं परिभाषा -

उत्तेजना के बाद अब समस्थिति के स्वरूप के संबंध में चर्चा की जायेगी। विद्यार्थियों, जब किसी व्यक्ति में उत्तेजना अत्यधिक बढ़ जाती है तो वह अपने आपको संतुलित नहीं रख पाता है। उसके चिन्तन, चरित्र एवं व्यवहार में गड़बड़ियाँ उत्पन्न होने लगती है। वस्तुतः उसका व्यक्तित्व संयमित एवं संतुलित नहीं रह पाता है और ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर येन-केन प्रकारेण वह उस संतुलन को प्राप्त करने की कोशिश करता है।

स्वयं को संतुलित रखने एवं स्थिरता बनाये रखने की प्राणियों में जो प्रवृत्ति पायी जाती है, उसे ''समस्थिति'' कहते है अर्थात् प्राणी के शरीर, मन, प्राण, इन्द्रियों में एक ऐसा सामंजस्य एवं संतुलन, जिससे उसके समस्त कार्य सुचारू रूप से सम्पन्न हो सके।

उत्तेजना का मध्यम स्तर समस्थिति से सम्बद्ध है। विभिन्न विद्वानों ने समस्थिति को अलग-अलग ढंग से परिभाषित किया है। उनमें से कतिपय महत्वपूर्ण परिभाषाएँ निम्नानुसार हैं-

चैपलिन ने समस्थितिकी की परिभाषा इस प्रकार दी है-

1) प्राणी की एक पूर्ण के रूप में ऐसी प्रवृत्ति है जिससे वह स्थिरता बनाये रखता है और यदि उसकी स्थिरता भंग होती है तो वह सन्तुलन प्राप्त करने का प्रयास करता है। उदाहरणार्थ- यदि एक चूहे की एड्रीनल ग्रन्थि काट दी जाय तो वह सोडियम की कमी को अधिक नमक खाकर पूरा करेगा।

2) शरीर के अंगों तथा रक्त की स्थिरता बनाये रखने की प्रवृत्ति। उदाहरणार्थ- रक्त सापेक्ष रूप से कुछ पदार्थों का स्थिर स्तर बनाये रखता है, जैसे- नमक, शक्कर, इलेक्ट्रोलाइट्स आदि। यदि ऐसा नहीं हो पाता तो व्यक्ति बीमार हो जाता है और ऐसा रहने पर उसकी मृत्यु तक हो जाती है।

10.4.2 समस्थिति के प्रकार -

मनोवैज्ञानिकों ने समस्थिति के अनेक प्रकार बताये है। इनमें से कोफर तथा एपल ने समस्थिति का जो वर्गीकरण किया है उसका विवेचन निम्नानुसार -

1) दैहिक समस्थिति
2) मनोवैज्ञानिक समस्थिति
3) सामाजिक समस्थिति

1) दैहिक समस्थिति- इसके अन्तर्गत परिवहन, लसिका तथा सिम्फैटिक तन्त्रों से बनी हुई स्थिरता आती है। अर्थात् रक्त में पानी, नमक, शक्कर की मात्रा, रक्त प्रोटीन, रक्त में कैल्शियम आदि के साथ-साथ शरीर की तापक्रम स्थिरता, ऑक्सीजन की आपूर्ति आदि भी आते हैं। इसका कैनन ने अपनी प्रयोगशाला में अध्ययन

किया। इस प्रकार की स्थिरता क्षतिपूर्ति क्रिया के द्वारा होती है जिसमें शरीर के अतिरिक्त आन्तरिक अंग, स्नायुमण्डल, अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ तथा शरीर में अन्य वर्तमान रासायनिक तत्व होते हैं।

इसी प्रकार समायोजन प्रक्रियाएँ, जैसे- चोट लगने पर खून का थक्का बनना आदि क्रियाएँ भी समस्थिति बनाये रखने में सहायक होती हैं। इसी प्रकार कैनन ने इस ओर भी ध्यान दिलाया कि भूख, प्यास, नमक लेने की चाह भी शारीरिक समस्थिति बनाए रखने में सहायक होती हैं।

2) मनोवैज्ञानिक समस्थिति- फ्लैचर (1936) प्रथम मनोवैज्ञानिक था जिसने सबसे पहले मनोवैज्ञानिक समस्थिति के सिद्धान्त को प्रदर्शित किया। उसने आदतों, रूचियों, सामाजिक प्रेरकों, व्यक्तित्व के लक्षण, नशाखोरी की लत आदि को मनोवैज्ञानिक समस्थिति के अन्तर्गत रखा। यद्यपि इस सिद्धान्त को मानने में कुछ समस्याएँ उत्पन्न हुई परन्तु विविध क्षेत्रों में ऐसे प्रमाण उपलब्ध हुए जिनसे व्यवहार में सन्तुलन प्रक्रियाएँ दिखलायी पड़ती हैं।

इस सिद्धान्त की पुष्टि के लिए निम्न चार क्षेत्रों से प्रमाण उपलब्ध हैं-

- मनोवैज्ञानिक प्रदत्त:- इसके अन्तर्गत आकृति या आकार स्थैर्य आते हैं। इसी प्रकार प्रत्यक्षीकरण का संगठन, अच्छी आकृति आदि भी सन्तुलनात्मक प्रवृत्तियाँ हैं।
- कार्य तथा कार्यकुशलता के अध्ययन:- इस क्षेत्र में अनेकों अध्ययनों से पता चला है कि ध्यान, भ्रम और तनाव की अवस्था में भी पर्याप्त रूप से कार्य स्तर स्थिर रहता है।
- आकांक्षा के स्तर सम्बन्धी अध्ययन:- लेविन और उनके साथियों द्वारा यह प्रदर्शित कर दिया गया है कि अनेक परिस्थितियों में आकांक्षा का स्तर स्थिर बना रहता है। इस प्रकार अधूरी समस्याएँ मिलने पर वे पूरी कर ली जाती हैं।
- औपचारिक प्रदत्त:- फ्रायड (1920), फेनीशल (1945) तथा न्यूटन (1955) आदि के अध्ययनों से पता चला है कि बाध्यता और प्रतिरक्षा की मनोरचना से भी किसी न किसी प्रकार का मानसिक सन्तुलन बना रहता है।

10.4.3 समस्थिति का प्रेरणा से संबंध -

मनोवैज्ञानिक समस्थिति के अन्तर्गत हम यह देख चुके हैं कि आदतें, उत्प्रेरक, व्यक्तित्व के विकसित शीलगुण एक बार विकसित होने पर निरन्तर चलते रहते हैं। इस बारे में स्टेगनर फ्लेवन से सहमत हैं और मैक्लीन्ड ने इसकी व्याख्या का आधार पुनर्बलन माना है।

इस प्रकार के तथ्यों से प्रभावित होकर निम्न चार मनोवैज्ञानिकों ने समस्थिति के आधार पर प्रेरणा के चार सिद्धान्त दिये हैं-

1) जी.एल. फ्रीमैन (1948) का धनात्मक उत्तेजनाओं के आधार पर दिया गया प्रेरणा का सिद्धान्त।

2) नेल्सन के निर्णय को प्रभावित करने वाले सामान्य और सामाजिक तत्वों पर आधारित एडॉप्टेशन लेवेल मॉडल

3) वीनिमस साइबरनेटिक्स मॉडल जो संचार अनुसन्धानों तथा फ्रीडबैक के सिद्धान्तों पर आधारित है।

4) लेविन्स फील्ड थ्योरी जो मूल रूप से उक्त सिद्धान्तों की शब्दावली में तो नहीं है परन्तु संतुलन के विचार के अनुरूप है।

10.5 अन्तर्नोद सिद्धान्त

10.5.1 अन्तर्नोद सिद्धान्त क्या है?

इस सिद्धान्त के अनुसार अन्तर्नोद वह तनाव की अवस्था है जो प्राणी को तनाव दूर करने के लिए उद्दीप्त करती है। इसमें भूख, प्यासख् काम, नींद तथा आराम सम्मिलित हैं। यद्यपि इस विचारधारा का सूत्रपात वुडवर्थ (1918) ने किया था परन्तु सी. हल (1943) ने प्रेरणा तथा अधिगम के क्षेत्र में इस विचारधारा का महत्वपूर्ण उपयोग किया। हल का कथन है कि अन्तर्नोद शारीरिक कमी के कारण जन्म लेता है और यह शारीरिक न्यूनता शरीर में संतुलन को बिगाड़ती है। किसी तीव्र पीड़ादायी उद्दीपक तथा विद्युत् आघात से भी ऐसी परिस्थिति जन्म लेती है। उद्दीपक न्यूनता से भी शारीरिक संतुलन बिगड़ता है परन्तु मस्तिष्क के केन्द्र इसे पूर्ण आवश्यक अवस्था यथा 99.6 डिग्री पर शरीर का ताप बनाये रखने में मदद करते रहते हैं (वीसिन्गर तथा सहयोगी, 1993)।

बाल्डीरेव (1993) तथा स्टैलर (1993) का कथन है कि शरीर में उचित मात्रा में ऑक्सीजन, कार्बन डाई ऑक्साइड, लवण, शर्करा तथा अन्य पदार्थों का स्तर भी बनाए रखना इसी सिद्धान्त के अन्तर्गत है। उक्त वर्णित अवस्थाओं में जीने की आवश्यकताओं की पूर्ति होती है, इसी पूर्ति से अन्तर्नोद की तीव्रता में कमी आती है।

10.5.2 सिद्धान्त का मूल्यांकन -

विद्यार्थियों कुछ मनोवैज्ञानिकों के कतिपय आधारों पर अन्तर्नोद सिद्धान्त का खण्डन किया है। अब आप सोच रहे होंगे कि आखिर इस सिद्धान्त में ऐसी क्या खामियाँ या त्रुटियाँ रही, जिसके कारण इसकी आलोचना हुयी। तो आइये चर्चा करते हैं, उन बिन्दुओं की जिस आधार पर इस सिद्धान्त की आलोचना हुयी। ये बिन्दु निम्नलिखित हैं-

1. कुछ मनोवैज्ञानिकों ने प्रणोद सिद्धान्त की आलोचना इस आधार पर की है कि यह सिद्धान्त जैविक अभिप्रेरकों जैसे- भूख, प्यास, काम आदि की व्याख्या वैज्ञानिक ढंग से करता है परन्तु अर्जित अभिप्रेरकों की व्याख्या ठीक ढंग से नहीं हो पाती

2. इस सिद्धान्त की दूसरी आलोचना यह है कि मात्र प्रणोद तथा उसकी कमी होने से भी अभिप्रेरक की पूर्ण व्याख्या नहीं हो पाती है। सचमुच में प्रणोद अपने आप में अभिप्रेरित व्यवहार पैदा तब तक उत्पन्न नहीं

करता है जब तक संभव नहीं है। व्यक्ति के सामने उस प्रणोद को कम करने के लिए उपयुक्त प्रोत्साहन विद्यमान न हो।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि यद्यपि अनेक आधारों पर अन्तर्नोद सिद्धान्त की आलोचना की गई है, तथापि इसके महत्व को नकारा नहीं जा सकता।

10.6 अर्जित निस्सहायता

10.6.1 अर्जित निस्सहायता से क्या आशय है?

प्रिय पाठकों, प्रत्येक प्राणी अपनी जिन्दगी में कभी-कभी ना कभी ऐसी अनेक परिस्थितियों, घटनाओं एवं समस्याओं का सामना करता है। जिससे निपटना आसान नहीं होता है। उस समस्या के समाधान में वह स्वयं को असमर्थ महसूस करता है। यह किसी एक व्यक्ति का उदाहरण नहीं है, वरन् जिन व्यक्तियों में आत्मबल की कमी होती है, प्रायः उन सभी के साथ अक्सर ऐसा होता रहता है और यदि असफल होने का अनुभव बार-बार होता है तो व्यक्ति स्वयं को असमर्थ या निस्सहाय रखना सीख लेता है।

अर्जित निस्सहायता पद का प्रतिपादन मार्टिन सेलिगमैन (1975) ने अपने अर्जित निस्सहायता के सिद्धान्त में किया। इस सिद्धान्त का सार तत्व यह है कि तनाव से व्यक्ति में निस्सहायता का भाव उत्पन्न हो जाता है। जब व्यक्ति किसी तनावग्रस्त उद्दीपक या घटना का सामना करता है तो उसके साथ निबटने के लिए एक विशेष व्यवहार करता है। परन्तु जब इस व्यवहार में उसे सफलता नहीं मिलती है और ऐसा कई बार हो चुका होता है तो वह अपने आप को निस्सहाय अनुभव करता है। इसका मतलब यह हुआ कि तनाव उत्पन्न करने वाली परिस्थिति पर नियंत्रण न करने का अनुभव बार-बार होने से व्यक्ति स्वयं को निस्सहाय रखना सीख लेता है। इस तथ्य की सम्पुष्टि हिरोटो एवं सेलिगमैन (1975) ने अपने प्रयोग के आधार पर किया है।

10.6.2 अर्जित निस्सहायता के प्रभाव या परिणाम -

अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि इस निस्सहायता के प्राणी के व्यक्तित्व पर क्या प्रभाव पड़ता है ? पाठकों, इतना तो आप भी जान ही गये होंगे कि असहाय या असमर्थ या आत्महीन होने का भाव किसी भी प्रकार का सकारात्मक या अच्छा परिणाम तो उत्पन्न नहीं ही करता है। अर्जित निस्सहायता अनेक प्रकार की खामियाँ की जननी है, जिसका वर्णन निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है-

अर्जित निस्सहायता से तीन तरह की कमियाँ उत्पन्न होती हैं-

1) अभिप्रेरणात्मक कमी
2) संज्ञानात्मक कमी
3) सांवेगिक कमी

1) अभिपेरणात्मक कमी - निस्सहाय व्यक्ति कोई ऐसा प्रयास नहीं करता है, जिससे उसके परिणाम में परिवर्तन हो सके। यह अभिप्रेरणात्मक कमी का उदाहरण है।
2) संज्ञानात्मक कमी - निस्सहाय व्यक्ति उन नयी अनुक्रियाओं को नहीं सीख पाता है, जिससे वह तनावपूर्ण उद्दीपकों से स्वयं को छुटकारा दिला सके। यह संज्ञानात्मक कमी का उदाहरण है।
3) सांवेगिक कमी - है। अर्जित निस्सहायता व्यक्ति में हल्का या तीव्र विषाद भी

उत्पन्न कर सकती है। यह सांवेगिक कमी का उदाहरण है। स्पष्टतः इस सिद्धान्त के अनुसार तनाव के नकारात्मक प्रभाव की व्याख्या व्यक्ति में उसमें उत्पन्न निस्सहायता के माध्यम से की गयी है।

10.7 सारांश

उत्तेजना-प्राणी की उत्पेजित होने की सामान्य अवस्था।

उत्तेजना के स्तर- तीन स्तर

1. उच्च स्तर
2. मध्यम स्तर
3. निम्न स्तर

उत्तेजना के स्रोत -दो स्रोत

1. आन्तरिक उत्तेजना स्रोत - व्यक्ति में स्वभाव से सक्रिय होने का गुण विद्यमान होना।
2. बाह्य उत्तेजना स्रोत - वातावरण के तत्वों से व्यक्ति का उत्तेजित होना।

समस्थिति- प्राणी की पूर्ण के रूप में ऐसी प्रवृत्ति जिससे वह स्थिरता बनाये रखता है तथा स्थिरता भंग होने पर उसे प्राप्त करने का प्रयास करता है।

समस्थिति के प्रकार - कोफर तथा एपल के अनुसार समस्थिति के निम्न तीन प्रकार हैं-

1. दैहिक समस्थिति
2. मनोवैज्ञानिक समस्थिति
3. सामाजिक समस्थिति

- समस्थिति एवं प्रेरणा को मनोवैज्ञानिकों ने एक-दूसरे से संबंधित माना है।

अन्तर्नोद- तनाव की वह अवस्था जो प्राणी को तनाव दूर करने के लिये उद्दीप्त करे। अन्तर्नोद सिद्धान्त का सूत्रपात वुडवर्थ ने 1918 में किया था, लेकिन सी. हल ने अधिगम एवं प्रेरणा के क्षेत्र में इस विचारधारा का मुख्य रूप से प्रयोग किया। अन्तर्नोद सिद्धान्त के माध्यम से जैविक अभिप्रेरकों जैसे भूख, प्यास, नींद, काम आदि की वैज्ञानिक व्याख्या की गई।

अर्जित निस्सहायता- इस पद का सर्वप्रथम प्रतिपादन मार्टिन सेलिगमैन द्वारा 1975 में किया गया।

अर्जित निस्सहायता का अर्थ - तनावग्रस्त परिस्थिति पर नियंत्रण न करने का अनुभव बार-बार होने से व्यक्ति का स्वयं को निस्सहाय रखाना सीख लेना।

अर्जित निस्सहायता से उत्पन्न होने वाली कमियाँ- तीन प्रकार की कमियाँ-

1. अभिप्रेरणात्मक कमी
2. संज्ञानात्मक कमी
3. सांवेगिक कमी

10.8 शब्दावली

- **उत्तेजना (Arousal):** प्राणी की सामान्य जागृति और अनुक्रियात्मकता
- **निष्क्रिय (Inactive):** क्रिया रहित अर्थात् ओर कार्य ना करना
- **सक्रिय (Active):** क्रिया युक्त अर्थात कार्य करना
- **अभिप्रेरणा (Motivation)**: प्रेरणा
- **उद्दीपक (Stimulus):** ऐसे तत्व जो प्राणी को क्रियाशील या सक्रिय करने का कार्य करते हैं
- **समस्थिति (Homeostasis):** संतुलन एवं स्थिरता
- **दैहिक (Physical):** शारीरिक
- **अर्जित (Acquired):** जन्म के बाद प्राप्त होने वाली या सीधी जाने वाली
- **निस्सहायता (Helplessness):** सहायता रहित या असमर्थ होने का भाव
- **विषाद (depression):** अवसाद
- **संज्ञानात्मक (Cognitive):** जिसका संबंध मानसिक प्रक्रियाओं से हो। जैसे,- सोचना, तर्क करना, बुद्धि का प्रयोग करना। विश्लेषण करना व्याख्या करना इत्यादि।
- **सांवेगिक (Emotional):** जिसका संबंध हमारी भावनाओं से हो। भावनायें संख्यारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रकार का हो सकता हैं। जैसे- प्रेम, दया, सहयोग, हर्ष इत्यादि सकारात्मक भावनायें है किन्तु दुःख, चिन्ता, उदासी, निराशा, तनाव, अवसाद, भय, ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, लोभ, मोह इत्यादि नकारात्मक भाव हैं। जिसका संबंध हमारी प्रेरणाओं से हो।

10.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

नीचे कुछ कथन दिये गये है, जो कथन सही हैं उनके आगे सही का चिन्ह तथा जो गलत है, उनके आगे गलत का निशान लगायें-

1) उत्तेजना का तात्पर्य व्यक्ति की बढ़ी हुयी सक्रियता से है। ( )

2) सामान्य स्तर पर उत्तेजना हमें अपने कार्यो को सुचारू रूप से करने की शक्ति प्रदान करती हैं। ( )
3) उत्तेजना के माध्यम स्तर का संबंध समस्थिति से है।( )
4) उत्तेजना के अत्यधिक बढ़ जाने पर व्यक्ति तनाव महसूस नहीं करता है।( )
5) उत्तेजना का निम्न स्तर व्यक्ति को सक्रिय कर देता है।( )
6) हैब के अनुसार उत्तेजना शक्ति प्रदान करती है, लेकिन दिशा निर्देश नहीं प्रदान करती। ( )
7) उत्तेजना हमें वातावरण एवं स्वभाव दोनों से ही प्राप्त होती है।( )
8) उत्तेजना के तीन स्तर होते हैं।( )
9) वाह्य उत्तेजना स्रोत का अर्थ है व्यक्ति का स्वभाव से ही सक्रिय होना।( )
10) प्राणी की पूर्ण के रूप में ऐसी प्रवृत्ति, जिससे वह स्थिरता बनाये रखता है, समस्थिति कहलाती है।( )
11) लोफर एवे एपल ने समस्थिति के छः प्रकार बताये हैं।( )
12) धनात्मक उत्तेजनाओं के आधार पर प्रेरणा के सिद्धान्त का प्रतिपादन फ्रीमैन द्वारा किया गया।( )
13) मनोवैज्ञानिक समस्थिति के सिद्धान्त का सर्वप्रथम प्रतिपादन फ्लैचे (1936) द्वारा किया गया।( )
14) 1. कोफर तथा एपल ने समास्थिति को कितने प्रकार का माना है?

i) 4 ii) 5 iii) 3 iv) 2

15) अर्जित निस्सहायता के सिद्धान्त के प्रतिपादक हैं-

i) मार्टिन सेलिगमैन ii) कैनन iii) मैसलो iv) कार्ल रोजर्स

16) अन्तर्नोद सिद्धान्त बताता है कि-

i) अन्तर्नोद वह तनाव की अवस्था है जो व्यक्ति को तनाव कम करने के लिए प्रेरित करता है।
ii) अन्तर्नोद वह तनाव की अवस्था है, जो व्यक्ति में तनाव के स्तर को बढ़ाता है
iii) अन्तर्नोद का तनाव से कोई सम्बन्ध नहीं है
iv) उपरोक्त में से कोई नहीं।

17) अर्जित निस्सहायता

i) अभिप्रेरणात्मक कमी का उदाहरण है
ii) संज्ञानात्मक कमी का उदाहरण है।
iii) सांवेगिक कमी का उदाहरण है
iv) उपरोक्त सभी

18) व्यक्ति की उत्तेजना के स्रोत हैं-

i)आन्तरिक ii)सामाजिक iii) भौतिक iv) उपरोक्त सभी

उत्तर: 1) सही 2) सही 3) सही 4) गलत 5) गलत 6) सही 7) सही

8) सही 9) गलत 10) सही 11) गलत 12) सही 13) सही

14) iii 15) i 16) i 17) iv 18) iv

10.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- सिंह, अरूण कुमार। (2006) सामान्य मनोविज्ञान। उच्चतर मोतीलाल बनारसीदास बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली।
- सुलेमान, मोहम्मत। (2006) उच्चतर सामान्य मनाविज्ञान। मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली।
- आलम, आसिम एवं श्रीवास्तव, रामजी। (2004) आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान। मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली।
- रकमान, अर्जीमुई। (2004) सामान्य मनोविज्ञान, विषय और व्याख्या। मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली।
- सिंह, अरूण कुमार। (2006) सरल सामान्य मनोविज्ञान मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली।
- सिंह, अरूण कुमार (2006) आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान। मोतीलाल बनारसीदास बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली।

10.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. उत्तेजना का अर्थ स्पष्ट करते हुए इसके स्रोतों का वर्णन करें।
2. समास्थिति का स्वरूप स्पष्ट करते हुए कोफर तथा एपल द्वारा वर्णित प्रकारों का वर्णन करें।
3. अन्तर्नोद सिद्धान्त की व्याख्या प्रस्तुत करें।
4. अर्जित निस्सहायता से आप क्या समझते है? इससे उत्पन्न कमियों का वर्णन कीजिये।

इकाई-11 कृत्रिम बुद्धि और कम्प्यूटेशनल दृष्टिकोण: बुद्धिमान मशीनों के डिजाइन का नीचे और ऊपरी की ओर दृष्टिकोण, कृत्रिम तंत्रिका नेटवर्क के लक्षण, ज्ञान का मशीनी प्रतिनिधित्व, मशीनी तर्क: मशीन के तर्कसंगत तर्क और निर्णयन।(Artificial intelligence and computational approaches: Bottom up and top down approaches to the design of intelligent machines, Characteristics of artificial neural networks, Machine representation of knowledge, Machine reasoning: Logical reasoning and decision making by machines)

इकाई संरचना

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 कृत्रिम बुद्धि की परिभाषा

11.4 बुद्धिमान मशीनों के डिज़ाइन का नीचे और ऊपर की ओर दृष्टिकोण

11.4.1 बॉटम -अप दृष्टिकोण

11.4.2 टॉप -डाउन दृष्टिकोण

11.5 कृत्रिम तंत्रिका नेटवर्क

11.5.1 कृत्रिम तंत्रिका नेटवर्क क्या है?

11.5.2 निरिक्षित कृत्रिम तंत्रिका नेटवर्क

11.5.3 अनिरिक्षित कृत्रिम तंत्रिका नेटवर्क

11.5.4 कृत्रिम तंत्रिका नेटवर्क की विशेषताएं

11.6 ज्ञान का मशीनी प्रतिनिधित्व

11.7 मशीनी तर्क

11.7.1 तर्क संगत तर्क

11.7.2 तर्क के प्रकार

11.8 मशीन निर्णयन

11.9 सारांश

11.10 तकनीकी शब्द

11.11 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

11.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

11.13 निबंधात्मक प्रश्न

11.14 स्वमूल्यांकनहेतु प्रश्नों के उत्तर

11.1 प्रस्तावना (Introduction)

कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई) मानव बुद्धि के अनुकरण को मशीनों में संदर्भित करता है जो मनुष्यों की तरह सोचने और उनके कार्यों की नकल करने के लिए प्रोग्राम किए जाते हैं। यह शब्द किसी भी मशीन पर भी लागू किया जा सकता है जो मानव मन से जुड़े लक्षणों जैसे कि सीखने और समस्या को सुलझाने में प्रदर्शित करता है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता की आदर्श विशेषता इसके कार्यों को तर्कसंगत बनाकर विशिष्ट लक्ष्य प्राप्त करना है।

जब अधिकांश लोग कृत्रिम बुद्धिमत्ता शब्द सुनते हैं, तो पहली चीज जो वे आमतौर पर सोचते हैं वह है रोबोट। ऐसा इसलिए है क्योंकि बड़े बजट की फिल्में और उपन्यास मानव जैसी मशीनों के बारे में कहानियां बुनते हैं जो पृथ्वी पर कहर बरपाती हैं। लेकिन सच्चाई के आगे कुछ नहीं हो सकता।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता इस सिद्धांत पर आधारित है कि मानव बुद्धिमत्ता को इस तरह से परिभाषित किया जा सकता है कि एक मशीन इसे आसानी से नकल कर सकती है और कार्यों को निष्पादित कर सकती है, सरल और जटिल सभी कार्यो को। कृत्रिम बुद्धि के लक्ष्यों में सीखने, तर्क और धारणा शामिल हैं।

प्रौद्योगिकी प्रगति के रूप में, कृत्रिम बुद्धि को परिभाषित करने वाले पिछले मानक पुराने हो गए हैं। उदाहरण के लिए, बुनियादी कार्यों की गणना करने वाली या इष्टतम (Optimal) चरित्र पहचान के माध्यम से पाठ को

पहचानने वाली मशीनें अब कृत्रिम बुद्धिमत्ता पर विचार नहीं करती हैं, क्योंकि यह फ़ंक्शन अब एक अंतर्निहित (Inherent) कंप्यूटर फ़ंक्शन के रूप में लिया जाता है।

ए आई (Artificial Intelligence) लगातार कई अलग-अलग उद्योगों को लाभ पहुंचाने के लिए विकसित हो रहा है। गणित, कंप्यूटर विज्ञान, भाषा विज्ञान, मनोविज्ञान, और एक क्रॉस-डिसिप्लिनरी दृष्टिकोण का उपयोग करके मशीनें तैयार की जाती हैं। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस की संरचना में एल्गोरिदम (Algorithms) अक्सर बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जहां सरल एल्गोरिदम का उपयोग सरल अनुप्रयोगों में किया जाता है, जबकि अधिक जटिल वाले मजबूत आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस को फ्रेम करने में मदद करते हैं।

कृत्रिम बुद्धि के प्रयोग अंतहीन है | प्रौद्योगिकी को कई अलग-अलग क्षेत्रों और उद्योगों में लागू किया जा सकता है। दवाइयों और रोगियों में अलग-अलग उपचार के लिए और ऑपरेटिंग कमरे में शल्य (Surgical) चिकित्सा प्रक्रियाओं के लिए एआई का परीक्षण और स्वास्थ्य सेवा उद्योग में उपयोग किया जा रहा है।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता वाली मशीनों के अन्य उदाहरणों में ऐसे कंप्यूटर शामिल हैं जो शतरंज और सेल्फ ड्राइविंग कार चलाते हैं। इनमें से प्रत्येक मशीन को किसी भी कार्रवाई के परिणामों (Consequences) को तौलना चाहिए, क्योंकि प्रत्येक क्रिया अंतिम परिणाम को प्रभावित करेगी। शतरंज में, अंतिम परिणाम खेल जीतना है। सेल्फ-ड्राइविंग कारों के लिए, कंप्यूटर सिस्टम को सभी बाहरी डेटा के लिए खाता (अकाउंट) होना चाहिए और इसे इस तरह से कार्य करने के लिए गणना करना चाहिए जो टकराव (Collision) को रोकता है।

आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस का वित्तीय (फाइनेंसियल) उद्योग में अनुप्रयोग भी होते हैं, जहां इसका उपयोग बैंकिंग और वित्त में गतिविधि का पता लगाने और ध्वज (फ्लैग) लगाने के लिए किया जाता है, जैसे कि असामान्य डेबिट कार्ड का उपयोग और बड़े खाते में जमा-ये सभी बैंक के धोखाधड़ी को पकड़ने में विभाग की मदद करते हैं। AI का उपयोग स्ट्रीमलाइन में मदद करने और व्यापार को आसान बनाने के लिए भी किया जा रहा है। यह आपूर्ति, मांग और प्रतिभूतियों (Securities) के मूल्य निर्धारण को आसान बनाकर किया जाता है।

आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस का वर्गीकरण-: कृत्रिम बुद्धिमत्ता को दो अलग-अलग श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है: कमजोर और मजबूत।

कमजोर कृत्रिम बुद्धिमत्ता किसी विशेष कार्य को करने के लिए डिज़ाइन की गई प्रणाली का प्रतीक है। कमजोर AI सिस्टम में ऊपर से शतरंज का उदाहरण और अमेज़ॅन के एलेक्सा और एप्पल के सिरी जैसे व्यक्तिगत सहायकों के वीडियो गेम शामिल हैं। आप सहायक से एक प्रश्न पूछते हैं, यह आपके लिए इसका उत्तर देता है।

मजबूत कृत्रिम बुद्धिमत्ता सिस्टम वे सिस्टम होते हैं जो मानव के समान माने जाने वाले कार्यों को करते हैं। ये अधिक जटिल प्रणालियां हैं। वे उन परिस्थितियों को संभालने के लिए प्रोग्राम किए जाते हैं जिनमें उन्हें किसी व्यक्ति के हस्तक्षेप के बिना समस्या को हल करने की आवश्यकता हो सकती है। इस प्रकार की प्रणालियां सेल्फ-ड्राइविंग कारों या अस्पताल के ऑपरेटिंग कमरे जैसे अनुप्रयोगों में पाई जा सकती हैं।

कृत्रिम बुद्धि के क्षेत्र की उत्पत्ति 1940 के दशक में कंप्यूटर युग की शुरुवात के साथ ही हो गई थी, और आधिकारिक तौर पर इसका नाम एक कंप्यूटर वैज्ञानिक जॉन मैकार्थी द्वारा 1956 में दिया गया था।

कृत्रिम बुद्धि क्या है ? –

यह कंप्यूटर विज्ञान की वह शाखा है, जो कंप्यूटर या मशीनों को मनुष्य की तरह बुद्धिमान बनाने का प्रयास करता है |यह विशेष रूप से बुद्धिमान मशीन तथा कंप्यूटर प्रोग्राम बनाने का विज्ञान या अभियांत्रिकी है |यह मानव बुद्धि को समझने के लिए कंप्यूटर का उपयोग करने के सामान कार्य से सम्बंधित है, लेकिन कृत्रिम बुद्धि जैविक रूप से अवलोकनीय होने वाली विधि तक ही सीमित नहीं है | कृत्रिम बुद्धि इस बात का अध्ययन करती है कि कंप्यूटर उन परिस्थितियों में कैसे काम करता है जिन परिस्थितियों में मनुष्य बेहतर काम करता है| व्यापार के दृष्टिकोण से कृत्रिम बुद्धि बहुत शातिशाली उपकरणों का एक सेट है इन उपकरणों को व्यापार की समस्याओं को हल करने के तरीकों के रूप में उपयोग किया जाता है | प्रोग्रामिंग दृष्टिकोण से, कृत्रिम बुद्धि में प्रतीकात्मक प्रोग्रामिंग, समस्या का हल और खोज का अध्ययन शामिल है |

i. कृत्रिम बुद्धि की शुरुवात 1950 के दशक में हुई थी| कृत्रिम बुद्धि का अर्थ है, बनावटी (कृत्रिम) तरीके से विकसित की गई बौद्धिक क्षमता |
ii. इसके जरिये कंप्यूटर सिस्टम या रोबोटिक सिस्टम तैयार किया जाता है, जिसे उन्ही तर्कों के आधार पर चलाने का प्रयास किया जाता है |जिसके आधार पर मानव मस्तिष्क काम करता है |
iii. कृत्रिम बुद्धि कंप्यूटर द्वारा नियंत्रित रोबोट या फिर मनुष्य की तरह इंटेलीजेंट तरीके से सोचने वाला सॉफ्टवेयर बनाने का एक तरीका है |
iv. यह इसके बारे में अध्ययन करता है कि मानव मस्तिष्क कैसे सोचता है और समस्या को हल करते समय कैसे सीखता है, कैसे निर्णय लेता है और कैसे काम करता है |

मशीने इंसान की तरह सोच सकती है, और कई ऐसे काम है जिसमे मशीन इंसान की तरह सोचे और तेजी से काम करे | उदहारण के तौर पर अगर कोई कार स्पीड लिमिट से ज्यादा तेज़ चलाई गई है, तो उसका चालान सीधा उसके घर पर आयेगा क्योंकि कैमरे के द्वारा नंबर प्लेट की जो फोटो ली गयी है उसे लेख (Text) में कंप्यूटर के द्वारा बदला जायेगा जिससे कार के मालिक का पता लगा सकते है | अगर यही काम इंसान करे तो वह इतनी तेज गाड़ी की नंबर प्लेट नहीं पढ़ पायेगा, इसलिए ही कई जगह पर कृत्रिम बुद्धि की आवश्यकता होती है |

इस इकाई में हम, मशीन बुद्धि पर चर्चा करेंगे। इसके उद्देश्य को जान पाएंगे। बुद्धिमान मशीनों के डिज़ाइन का नीचे और ऊपर की ओर दृष्टिकोण को जान पाएंगे तथा कृत्रिम तंत्रिका नेटवर्क, ज्ञान का मशीनी प्रतिनिधित्व और मशीनी तर्क के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे। मशीनी बुद्धि लोकप्रिय रूप से अर्टिफिशियल या कृत्रिम बुद्धि के रूप में जाना जाता है और आमतौर पर इसे इसके संक्षिप्त नाम 'AI' नाम से जाना जाता है।

11.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के माध्यम से आप निम्न बातों में सक्षम हो सकेंगे।

- कृत्रिम बुद्धिमत्ता को जान पाएंगे।
- कम्प्यूटेशनल दृष्टिकोण को जानेंगे।
- कृत्रिम तंत्रिका नेटवर्क के बारे में बात करेंगे।
- ज्ञान के मशीनी प्रतिनिधित्व को जानेंगे।
- मशीनी तर्क तथा मशीन निर्णयन को जान पाएंगे।

11.3 कृत्रिम बुद्धि की परिभाषा

कृत्रिम बुद्धि में हम सर्वप्रथम तीन सरल परिभाषाओं को प्रस्तुत करेंगे जिसके द्वारा हम यह जान पाएंगे की कृत्रिम बुद्धि किसे कहते है।

- कृत्रिम बुद्धि कंप्यूटर को स्मार्ट बनाने का अध्ययन है।
- कृत्रिम बुद्धि मानव बुद्धि के कंप्यूटर मॉडल बनाने का अध्ययन है। और अंत में
- कृत्रिम बुद्धि मशीन निर्माण से सम्बंधित अध्ययन है जो मानव व्यवहार का अनुकरण करता है।

उपरोक्त परिभाषाओं में से पहली परिभाषा व्यवहार - उन्मुख कृत्रिम बुद्धि दृष्टिकोण पर आधारित है। इस दृष्टिकोण के अनुसार कृत्रिम बुद्धि प्रोग्रामिंग कंप्यूटर से समझदारी से व्यवहार करने से सम्बंधित है। अगली परिभाषा मनोवैज्ञानिकों के दृष्टिकोण को दर्शाती है, जहाँ इसका उद्देश्य मानव मन तंत्र को समझने के लिए एक उपकरण के रूप में कंप्यूटर का उपयोग करना है। और अंतिम परिभाषा जो कृत्रिम बुद्धि में शामिल है, उसे हम रोबोट दृष्टिकोण कह सकते है। कृत्रिम बुद्धि के डोमेन के तहत न केवल कंप्यूटर प्रोग्राम का लेखन बल्कि मशीन के इलेक्ट्रॉनिक, ऑप्टिकल घटक और अन्य घटक सहित एक बुद्धिमान प्रणाली या मशीन का निर्माण करना है।

कृत्रिम बुद्धि और उसके विषय वस्तु के बारे में अभी भी बेहतर और ठोस राय रखने के लिए तथा कृत्रिम बुद्धि के विकास के लिए हम अग्रणी लेखकों और अग्रणी योगदानकर्ताओं द्वारा सुझाई गई परिभाषाओं पर विचार करते है।

अन्द्रेअस केप्लन और माइकल हेंलें ने कृत्रिम बुद्धि को "किसी प्रणाली के बाह्य डेटा की सही ढंग से व्याख्या करने, ऐसे डेटा को सीखने और सुविधाजनक रूपांतरण के माध्यम से विशिष्ट लक्ष्यों और कार्यो को पूरा करने में उन सीखों का उपयोग करने की क्षमता" के रूप में परिभाषित किया है।

"जॉन मैकार्थी" कृत्रिम बुद्धि के पिता के अनुसार, यह "बुद्धिमान मशीनों, विशेष रूप से बुद्धिमान कंप्यूटर प्रोग्राम बनाने का विज्ञान और अभियांत्रिकी" है। अर्थात यह मशीनों द्वारा प्रदर्शित की गई बुद्धिमत्ता है।

कृत्रिम बुद्धि दोस्त है या दुश्मन ?

कृत्रिम बुद्धि दोस्त है या दुश्मन, यह कहना आसान नहीं होगा मुझे आज भी वह दिन याद आता है जब मैंने पहली बार एक सहायक रोबोट एलेक्सा के बारे में जाना था | उसे मैंने अपने एक परिचित के घर पर देखा था और मै बहुत आश्चर्यचकित थी यह देखकर कि उनके घर की हर वस्तु जैसे पंखा, नल , बिजली, काफी मेकर, संगीत, समाचार, रोशनी इत्यादि सभी एलेक्सा ने अपने आदेश पर नियंत्रित किया था | मेरे लिए यह सब उलझन से भरा था और मेरे परिचित इस पर गर्व महसूस कर रहे थे | लेकिन बात यह है कि क्या हम कृत्रिम बुद्धि के लिए तैयार है? आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस एक दोस्त है या दुश्मन ? मुझे यह किसी पल सुविधाजनक प्रतीत होता था तो किसी पल परेशानी का कारण |

जैसा कि कृत्रिम बुद्धि हमारे समाज में तेजी से अन्तर्निहित हो गया है, यह बदल जायेगा कि हम कैसे काम करते है और रहते है | यदि हम चारों ओर देखे तो, कृत्रिम बुद्धि, मशीन लर्निंग और रोबोटिक्स तकनीकें चुपचाप लेकिन तेजी से हमारे जीवन का अहम् हिस्सा बनती जा रही है | इनमें से कुछ तकनीक पहले से ही उपयोग में है | ई – मेल फ़िल्टर अब और स्मार्ट उत्तरों के साथ आता है; मार्ग नियोजन और मूल्य निर्धारण में मैप्स और राइड शेयरिंग ऐप कृत्रिम बुद्धि का उपयोग करते है; ऑनलाइन खुदरा विक्रेता अपनी प्राथमिकताओं और खरीदारी की आदतों को समझने के लिए कृत्रिम बुद्धि का उपयोग करते है ताकि वे खरीदारी के अनुभव को निजीकृत कर सकें | संगीत स्ट्रीमिंग साइट्स कृत्रिम बुद्धि क्यूरेट की गई व्यक्तिगत प्लेलिस्ट प्रदान करती है |

24 घंटे ग्राहकों के लिए मोटर नेविगेशन हेल्पडेस्क, किसी भी उद्देश्य के लिए टिकटिंग बैकएंड एल्गोरिदम पर आधारित होती है | अंतिम मील वितरण को छोड़कर सम्पूर्ण ई -वाणिज्य उद्योग कृत्रिम बुद्दि प्लेटफार्म पर पूरी तरह से निर्भर है | इस बात पर हमें कोई शक नहीं है कि कृत्रिम बुद्धि समाज को बदल देगा लेकिन इसके अनुचित उपयोग के खिलाफ कड़ी सुरक्षा की बड़ी आवश्यकता है | टेक गुरु सेबेस्टियन ने आराम करने की आशंका जताते हुए कहा, " कृत्रिम बुद्धि लोगों को बदलने के लिए नहीं बनाया गया है, बल्कि लोगों को बढ़ाने के लिए बनाया गया है | जैसे मोबाइल फोन ने हमारे लिए बहुत कुछ अच्छा किया है |" ज्यादातर लोग, कृत्रिम बुद्धि और मशीनों को नौकरी के लिए नुकसान की दृष्टि से कहेंगे कि कृत्रिम बुद्धि दुश्मन है, यह चिंता करने वाली बात है क्योंकि नौकरियां ख़त्म हो जायेंगी और मशीने दुनिया भर में अपनायी जायेंगी |

निश्चित रूप से कृत्रिम बुद्धि हमें कुशल बनायेगा, लेकिन नौकरी छूटने की आशंकाएं वास्तविक है | यह शायद मासिक नौकरियों की जगह लेगा लेकिन तकनीकी क्षेत्र के लिए कई और अधिक उत्पादन करेगा | मोबाइल और कंप्यूटर ने विश्व को नई दिशा प्रदान की है | कृत्रिम बुद्धि उत्पादकता और दक्षता के लाभ के अलावा, निर्णय लेने के लिए पर्याप्त स्मार्ट मशीनों का नैतिक आयाम भी लाता है | मशीन लर्निंग एल्गोरिदम हर इंसान पर व्यक्तित्व प्रोफाइल बना रहे है | कृत्रिम बुद्धि एल्गोरिदम आपके व्यवहार को जान सकते है, और इससे पहले की आप इसे जाने वो आपको आपसे बेहतर जान जाते है | विघटनकारी प्रोद्योगिकी में यह एक प्रमुख खिलाड़ी है | भारत जैसे विकासशील देश में, ज्यादातर लोग कृत्रिम बुद्धि और मशीनों के लिए नौकरी के नुकसान से डरते है | यह कहना जल्दी होगा कि कृत्रिम बुद्धि दुश्मन है | हां यह चिंता का विषय अवश्य है कि इससे नौकरियों में कमी आयेगी | कृत्रिम बुद्धि पैटर्न उठ रहा है – यह कार चला रहा है, कैंसर का पता लगा रहा है तथा उत्पादों को बेच रहा है | यह कार्य में आये नये लोगों को बेहतर बनाने में मदद कर रहा है | संगीत की धुन को फिर से तैयार कर रहा है | कृत्रिम बुद्धि संचालित ड्रोन सर्वव्यापी है |

निश्चित रूप से यह बहुत बड़ी बहस का विषय है, जहाँ एक तरफ कृत्रिम बुद्धि को प्रगति के लिए बहुत आवश्यक माना जा रहा है, वहीं दूसरी और गलत हाथों में होने पर यह विघटनकारी कहर भी बरपा सकता है | किसी भी मामले में यह गेम चेंजर साबित हो सकता है |

मनोविज्ञान में कम्प्यूटेशनल दृष्टिकोण -: मनोविज्ञान विषय में कम्प्यूटेशनल दृष्टिकोण का योगदान कृत्रिम बुद्धिमत्ता और मनोविज्ञान के बीच का अनुशासन है | शोधकर्ताओं के अनुसार यह मानव संज्ञानात्मक प्रक्रिया के कंप्यूटर माडल का निर्माण है और यह मानव मन और कंप्यूटर कार्यक्रमों के बीच समानता पर आधारित है | कम्प्यूटेशनल माडल ज्यादातर सिद्धान्तों पर आधारित होते है, ये ज्यादातर इस बात पर केन्द्रित है कि मनोवैज्ञानिक तंत्र प्रक्रियाओं और ज्ञान संरचनाओं द्वारा और वास्तव में किन तरीकों से मानव बुद्धि प्रदर्शित होती है |

11.4 बुद्धिमान मशीनों के डिज़ाइन का नीचे और ऊपर की ओर दृष्टिकोण (Top Down and Bottom Up Approach)

टॉप डाउन और बॉटम अप दोनों ही सूचना प्रसंस्करण और ज्ञानादेश की रणनीतियां है, जिनका उपयोग प्रक्रिया सामग्री (software), मानवतावादी, वैज्ञानिक सिद्धांतो, प्रबंधन और संगठन सहित विभिन्न क्षेत्रों में किया जाता है। व्यवहार में उन्हें सोचने, सिखाने या नेतृत्व करने की शैली के रूप में देखा जा सकता है।

11.4.1 बॉटम अप दृष्टिकोण -: बॉटम अप प्रक्रिया उन धारणाओं के लिए एक स्पष्टीकरण है जो एक ग्रहण करने वाली उत्तेजना के साथ शुरू होती है और तब तक काम करती है जब तक कि हमारे मस्तिष्क में ऑब्जेक्ट का प्रतिनिधित्व नहीं बनता है | यह प्रक्रिया बताती है कि हमारा अवधारणात्मक अनुभव पूरी तरह से संवेदी

उत्तेजनाओं पर आधारित है जिसे हम केवल उन आंकड़ो का उपयोग करके एक साथ जोड़ते है जो हमारी इन्द्रियों (senses) से उपलब्ध है | बॉटम अप प्रक्रिया बस विपरीत दिशा में आगे बढ़ने वाली प्रक्रिया है | सबसे पहले शरीर में प्रतिक्रिया आती है (आँखें वस्तु को देखती है, नाक सुगंध या दुर्गन्ध का एहसास कराती है आदि) यह भावना (प्रतिकर्षण, निराशा) और मस्तिष्क की अनुभूति और कार्यवायी के लिए निर्देश है | दुनिया को समझने के लिए, हमें पर्यावरण से उर्जा लेनी चाहिए और इसे तंत्रिका संकेतो में परिवर्तित करना चाहिए, इस प्रक्रिया को संवेदना कहते है | यह प्रक्रिया के अगले चरण में, जिसे प्रत्यक्षीकरण (धारणा) के रूप में जाना जाता है, हमारा दिमाग इन संवेदी संकेतों की व्याख्या करता है | बॉटम -अप प्रसंस्करण का सिद्धांत मनोवैज्ञानिक "ई .जे . गिब्सन" द्वारा प्रस्तुत किया गया था | इन्होंने प्रत्यक्षीकरण की समझ के लिए एक सीधा तरीका अपनाया था | सीखने और सन्दर्भ पर निर्भर होने के बजाय, गिब्सन ने महसूस किया कि प्रत्यक्षीकरण "जो आप देखते है वह आपको मिलता है" प्रक्रिया है | उन्होंने तर्क दिया कि संवेदना और धारणा एक ही चीज़ है |

गिब्सन के सिद्धांत से पता चलता है कि प्रसंस्करण को केवल पर्यावरणीय उत्तेजनाओं के सन्दर्भ में समझा जा सकता है, यह कुछ ऐसा है जिसे धारणा के पारिस्थितिक सिद्धांत के रूप में जाना जाता है | बॉटम -अप प्रक्रिया निम्न तरीके से कार्य करता है -:

- हम अपने आस -पास की दुनिया के बारे में संवेदी जानकारी का अनुभव करते है, जैसे कि हमारे पर्यावरण में प्रकाश का स्तर
- इन संकेतों को रेटिना में लाया जाता है | परागमन इन संकेतों को विद्युत आवेगों में बदल देता है तब वह संचारित हो सकते है |
- विद्युत आवेग दृश्य मार्ग के साथ मस्तिष्क तक जाते है, जहाँ वे दृश्य प्रतंस्था में प्रवेश करते है और हमारे दृश्य अनुभव को बनाने के लिए संसाधित होते है |

यह दृष्टिकोण प्रत्यक्षीकरण को समझने के प्रति न्यूनतावाद का एक उदाहरण है | संवेदी जानकारी, दृश्य प्रक्रियाओं और अपेक्षाओं को अधिक समग्रता से देखने के बजाय हम दुनिया को देखने के तरीकों में योगदान करते है | बॉटम -अप प्रसंस्करण इस प्रक्रिया को इसके सबसे बुनियादी तत्वों में तोड़ देता है |

मनोविज्ञान में बॉटम -अप प्रसंस्करण -: जब गिब्सन बॉटम -अप प्रसंस्करण के सिद्धांत को विकसित कर रहा था, उसने "अफ्फोडेंसस" शब्द का उपयोग किया | हम जो कुछ भी देखते है उसमें वस्तु के साथ बातचीत करने के लिए कई अफ्फोडेंसस या विभिन्न अवसर होते है |इन अफ्फोडेंसस में शामिल है -:

- सापेक्ष चमक या आकार
- बनावट
- ऊंचाई

- हाईलाइट की हुई वस्तु

गिब्सन ने तर्क दिया कि बॉटम -अप प्रसंस्करण के विचार के लिये अफ्फोर्डेंसस का विचार महत्वपूर्ण था | उन्होंने कहा कि जब हम किसी वस्तु को देख रहे थे, तो हमने उसकी विशेष अफ्फोर्डेंसस को देखा |

बॉटम -अप प्रक्रिया का उदाहरण -: इंटरप्रिटिंग रोड साइंस – यह उन तरीकों में से एक है जो बॉटम -अप प्रसंस्करण के सिद्धांत का समर्थन करने के लिये सड़क मार्किंग में अफ्फोर्डेंसस करता है | रोड मार्किंग गति आवश्यकताओं और दुनिया की दिशा को संप्रेषित करने के लिए कई अलग -अलग अफ्फोर्डेंसस का उपयोग करते है | जब आप किसी देश की सड़क पर गाड़ी चला रहे होते है, तो आप टॉप -डाउन प्रक्रिया का इस्तेमाल नहीं करते है – आप सड़क के किनारे और सड़क पर संकेतों को महसूस कर रहे होते है कि आप कहाँ जा रहे है और कितनी तेजी से जा रहे है | तब आप बॉटम – अप प्रक्रिया का प्रयोग कर रहे होते है |

बॉटम -अप प्रोसेसिंग समझने के लिए, एक कठिन अवधारणा की तरह महसूस किया जा सकता है, खासकर यदि आप यह पाते है कि आपके पिछले अनुभव और आपके द्वारा सीखी गई बातें आपके आस -पास की दुनिया को समझने के लिए महत्वपूर्ण है | यही कारण है कि इतने सारे मनोवैज्ञानिकों ने टॉप -डाउन प्रोसेसिंग के विचार के साथ अपनी सोच को संरेखित किया | लेकिन ऐसी स्थिति को देखते हुए जिसमें टॉप -डाउन प्रसंस्करण का उपयोग करने की क्षमता गायब है तब आप बॉटम -अप प्रसंस्करण को बेहतर समझ सकते है |

11.4.2 टॉप -डाउन दृष्टिकोण – जब हमारा सामान्य ज्ञान हमारी विशिष्ट धारणाओं को निर्देशित करता है तब हम उसे टॉप -डाउन दृष्टिकोण की संज्ञा देते है | जब हम टॉप -डाउन प्रक्रिया का उपयोग करते है, तो जानकारी को समझने की हमारी क्षमता उस सन्दर्भ से प्रभावित होती है जिसमे वह दिखाई देता है |जिस चीज़ का हम प्रत्यक्षीकरण करते है टॉप -डाउन प्रक्रिया उसके सन्दर्भ या सामान्य ज्ञान का उपयोग करने की प्रक्रिया है | 1970 में, मनोवैज्ञानिक "रिचर्ड ग्रेगरी" ने टॉप – डाउन प्रक्रिया की अवधारणा को पेश किया | उन्होंने कहा कि "धारणा" रचनात्मक है | जब हम कुछ महसूस करते है, तो हमें धारणा को सही ढंग से व्याख्या करने के लिए सन्दर्भ और हमारे उच्च -स्तरीय ज्ञान पर भरोसा करना चाहिए |

ग्रेगरी के अनुसार, धारणा (प्रत्यक्षीकरण) परिकल्पना प्रत्यक्षीकरण परीक्षण की एक प्रक्रिया है | उन्होंने कहा कि लगभग 90 % दृश्य जानकारी उस समय खो जाती है जब वह आँखों से मस्तिष्क तक पहुँचती है इसलिये जब हम कुछ नया देखते है, तो इसे समझने के लिए हम पूरी तरह अपनी इन्द्रियों पर निर्भर नहीं रह सकते है | हम अपने मौजूदा ज्ञान का उपयोग करते है और नये दृश्य जानकारी के अर्थ के बारे में परिकल्पना करने के लिए हम पिछले अनुभवों के बारे में याद करते है | हमारे पर्यावरण के साथ हमारी बातचीत में टॉप -डाउन दृष्टिकोण एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है | हमारी पांचो इन्द्रियां लगातार जानकारी ले रही है | किसी भी समय हम विभिन्न स्थलों, ध्वनियों, स्वादों, गंधों का अनुभव करते है, और जब हम उन्हें छूते है तो चीजों को महसूस करते है | यदि हम हर समय अपनी इन्द्रियों पर ध्यान देते है तो हम कभी भी कुछ और नहीं करते है | टॉप - डाउन प्रसंस्करण हमें सन्दर्भ और हमारे पूर्व मौजूदा ज्ञान पर निर्भर करके प्रक्रिया को सुव्यवस्थित करने में सक्षम बनाता है जो हम

अनुभव करते है | यदि हमारे दिमाग में टॉप -डाउन प्रसंस्करण काम नहीं करता तो हमारी इन्द्रियां हमें व्यग्र कर देंगी |

मनोविज्ञान में टॉप -डाउन प्रसंस्करण -: टॉप -डाउन प्रक्रिया तब होती है जब हम अधिक विस्तृत जानकारी की ओर अपना काम करने से पहले एक बड़ी वस्तु, अवधारणा या विचार के साथ शुरू करते हुए अपनी धारणाएं बनाते है | दूसरे शब्दों में, टॉप -डाउन प्रसंस्करण तब होता है जब हम सामान्य से विशिष्ट – बड़ी तस्वीर से लेकर छोटे विवरण तक काम करते है | टॉप -डाउन प्रोसेसिंग में, आपके अमूर्त प्रभाव उन सूचनाओं को प्रभावित कर सकते है, जिन्हें आप अपनी पांच इन्द्रियों के माध्यम से इकठ्ठा करते है | हम इतनी अधिक जानकारी से घिरे है कि हर एक विवरण के लिए उपस्थित होना और प्रक्रिया करना असंभव होगा | टॉप -डाउन प्रोसेसिंग दुनिया के बारे में हमारी समझ विकसित करने में मदद करती है | पहली नजर में आपके द्वारा एकत्रित किये गये व्यापक, सामान्य इम्प्रेशन, आपके पर्यावरण के बारे में अधिक जानकारी लेने के साथ अधिक ध्यान देने योग्य विवरणों को प्रभावित करने में मदद कर सकते है | यदि आप इस बात पर विचार करे कि किसी भी पल में आपको कितनी जानकारी मिल सकती है, तो आप यह जानेंगे कि आप दर्शनीय स्थलों, ध्वनियों, महक, स्वाद, बनावट और शारीरिक संवेदनाओं के ढेर से घिरे हुए है | यदि आप इन संवेदनाओं में से प्रत्येक पर समान रूप से ध्यान केन्द्रित करते है, तो आप व्यग्र हो जायेंगे | टॉप -डाउन से जानकारी संसाधित करना हमें उन सूचनाओं की समझ बनाने की अनुमति देता है जो पहले से ही इन्द्रियों द्वारा लाई गई है, प्रारंभिक छापों से नीचे स्तर की इन्द्रियों तक नीचे की ओर काम कर रही है |

टॉप -डाउन प्रोसेसिंग को वैचारिक रूप से संचालित प्रसंस्करण के रूप में भी जाना जाता है क्योंकि आपकी धारणाएं उम्मीदों, मौजूदा विश्वासों और समझ से प्रभावित होती है | कुछ मामलों में, आप इन प्रभावों के बारे में जानते है, लेकिन अन्य मामलों में यह प्रक्रिया सचेत जागरूकता के बिना होती है |

टॉप -डाउन प्रक्रिया का उदाहरण – कल्पना कीजिये कि आप एक अपरिचित सड़क पर गाड़ी चला रहें है और आपको एक सुविधा स्टोर के लिए संकेत दिखाई दे रहा है | साइन में कई अक्षर गायब है, लेकिन आप अभी भी इसे पढ़ पा रहे है |क्यों ? क्योंकि आप टॉप -डाउन प्रोसेसिंग का उपयोग कर रहे है और संकेत के बारे में शिक्षित अनुमान लगाने के लिए अपने मौजूदा ज्ञान पर भरोसा करते है |

कई चीज़े सन्दर्भ और सहित टॉप -डाउन प्रसंस्करण को प्रभावित कर सकती है | सन्दर्भ या परिस्थियाँ, जिसमें किसी घटना या वस्तु को माना जाता है उस प्रभाव को प्रभावित कर सकती है जो हम उस विशेष परिस्थिति में पाते है उदाहरण के लिए, यदि आपको अस्पष्ट चित्रों की एक श्रंखला दिखाई गई है, तो आप भूख लगने पर उन्हें भोजन से सम्बंधित महसूस करने के लिए अधिक प्रेरित हो सकते है |

11.5 कृत्रिम तंत्रिका नेटवर्क (Artificial Neural Network)

आपने मशीन लर्निंग, कृत्रिम बुद्धि और आर्टिफिशियल न्यूरल नेटवर्क के बारे में सुना होगा। ये सभी पुराने प्रश्न का उत्तर देने के अलग -अलग तरीके है कि क्या हम बुद्धिमत्ता का एक नया रूप विकसित कर सकते है जो कि प्राकृतिक कार्यो को हल कर सकता है। कंप्यूटर में बेहतर प्रोसेसिंग पॉवर और मेमोरी होती है और कम समय में गंभीर जटिल संख्यात्मक समस्या को आसानी से पूरा कर सकते है । लेकिन जब वास्तविक दुनिया के बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य जैसे दृष्टि, भाषण, पैटर्न मान्यता और प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण के साथ जुड़ जाता है, तो यह इसकी अपर्याप्तता दिखाता है।

ऐसा इसलिए है क्योंकि, कंप्यूटर को कृत्रिम बुद्धि के साथ या कृत्रिम बुद्धि के बिना एक एल्गोरिथम दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है। यानी समस्या को एक एल्गोरिथम के रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए और जब एक वास्तविक दुनिया की समस्या को एल्गोरिथम के रूप में तैयार नहीं किया जा सकता है तो कंप्यूटर हमारे दिमाग के समान कार्य नहीं कर सकते है जैसे – सीखना और अनुकूलन

मानव मस्तिष्क आकर्षक है। मानव मस्तिष्क समस्या का पता लगाता है, उसका विश्लेषण करता है और अंत में स्थिति के अनुकूल हो जाता है इस आधार पर सबसे तेज कंप्यूटर भी कुछ चीजों में मानव मस्तिष्क का मुकाबला नहीं कर सकता है। इस जैविक पहलू को ध्यान में रखते हुए, वैज्ञानिक कई कंप्यूटर मॉडल विकसित कर रहे है जो जैविक तंत्रिका नेटवर्क से प्रेरित है। जो प्राकृतिक कार्यों की समस्याओं को हल करने के लिए एक मार्ग प्रदान कर सकते है। इस दृष्टिकोण को कृत्रिम तंत्रिका नेटवर्क या ANN के रूप में जाना जाता है।

11.5.1 कृत्रिम तंत्रिका नेटवर्क क्या है?

सीधे शब्दों में कहें, कृत्रिम तंत्रिका नेटवर्क (ANN) मानव मस्तिष्क की तंत्रिका संरचनाओं का सॉफ्टवेयर कार्यान्वयन है। ANN एक कम्प्यूटेशनल सिस्टम है, जो मानव मस्तिष्क की संरचना, प्रसंस्करण क्षमता और सीखने की क्षमता से प्रभावित है। जीव विज्ञान की जटिल गहराई में न जाते हुए आइये हम अपने मस्तिष्क की संरचना पर एक नजर डाले। मानव मस्तिष्क में अरबों न्यूरोंस होते है जो कार्बनिक स्विच के रूप में कार्य करते है . इन सभी न्यूरोंस को एक विशाल और जटिल संरचना बनाने के लिए आपस में जोड़ा जाता है जिसे न्यूरल नेटवर्क कहा जाता है। एक एकल न्यूरान का आउटपुट हजारों परस्पर जुड़े हुए न्यूराँस के इनपुट पर निर्भर है।

मानव मस्तिष्क की "लर्निंग" केवल कुछ तंत्रिका कनेक्शनों की सक्रियता के दोहराए जाने से होती है और यह दोहराव कनेक्शन को मजबूत करता है। तो एक निर्दिष्ट इनपुट के लिए , तंत्रिका कनेक्शन सुनिश्चित करते है कि आउटपुट हमेशा वांछित हो। प्रतिपुष्टि (feedback) एक सरल प्रतिक्रिया सीखने की प्रक्रिया में मदद करती है, क्योंकि यह तंत्रिका कनेक्शन को मजबूत करती है । मस्तिष्क का यह व्यवहार कृत्रिम तंत्रिका नेटवर्क के लिए महत्वपूर्ण है क्योंकि वे केवल मस्तिष्क की इस क्रिया को दोहराने की कोशिश करते है। इसे दो तरीकों से हासिल किया जा सकता है:

- निरीक्षित कृत्रिम तंत्रिका नेटवर्क
- अनिरीक्षित कृत्रिम तंत्रिका नेटवर्क

11.5.2 निरीक्षित कृत्रिम तंत्रिका नेटवर्क -: निरीक्षित कृत्रिम तंत्रिका नेटवर्क में, प्रशिक्षण के लिए नेटवर्क से डेटा का मिलान के लिए इनपुट और आउटपुट नमूने प्रदान किये जाते है। इस दृष्टिकोण का उद्देश्य निर्दिष्ट इनपुट के लिए वांछित आउटपुट प्राप्त करना है। एक निरीक्षित कृत्रिम तंत्रिका नेटवर्क का सबसे अच्छा उदहारण हमारे ई- मेल के स्पैम फ़िल्टर है| प्रशिक्षण स्तर पर, कृत्रिम तंत्रिका नेटवर्क का इनपुट ई- मेल में शब्दों का एक समूह होगा और आउटपुट ई- मेल को स्पैम या स्पैम नहीं है के रूप में चिन्हित करना है|

11.5.3 अनिरीक्षित कृत्रिम तंत्रिका नेटवर्क -: अनिरीक्षित कृत्रिम तंत्रिका नेटवर्क निरीक्षित कृत्रिम तंत्रिका नेटवर्क से अधिक जटिल प्रक्रिया है क्योंकि यह कृत्रिम तंत्रिका नेटवर्क को इनपुट के रूप में प्रदान की गई डेटा संरचना को समझने का प्रयास करता है |

11.5.4 कृत्रिम तंत्रिका नेटवर्क की विशेषताएं -: किसी भी कृत्रिम तंत्रिका नेटवर्क (ANN) की कुछ बुनियादी विशेषताएं होती है| इनका उल्लेख नीचे किया गया है |

- एक कृत्रिम तंत्रिका नेटवर्क में प्रसंस्करण तत्वों की तरह बड़ी संख्या में "न्यूरान" होते है |
- इन सभी प्रसंस्करण तत्वों के बीच में बड़ी संख्या में भारित (Weighted) कनेक्शन होते है |
- तत्वों के बीच कनेक्शन डेटा का एक वितरित प्रतिनिधित्व प्रदान करते है |
- ज्ञान प्राप्त करने के लिए एक लर्निंग प्रोसेस लागू किया जाता है |

11.6 ज्ञान का मशीनी प्रतिनिधित्व (Machine Knowledge Representation)

ज्ञान- प्रतिनिधित्व (Knowledge Representation) कृत्रिम बुद्धिमत्ता का एक क्षेत्र है| जो कंप्यूटर अभ्यावेदन (Memorial) को डिज़ाइन करने पर केन्द्रित है, जो दुनिया की उन सूचनाओं को कैप्चर करता है जिनका उपयोग जटिल समस्याओं को हल करने के लिए किया जा सकता है | ज्ञान प्रतिनिधित्व का औचित्य यह है कि पारंपरिक प्रक्रियात्मक (Procedural) कोड जटिल समस्याओं को हल करने के लिए सबसे अच्छी औपचारिकता (Primness) नहीं है |

ज्ञान प्रतिनिधित्व जटिल (difficult) सॉफ्टवेयर को प्रक्रियात्मक कोड की तुलना में परिभाषित करने और बनाए रखने में आसान बनाता है और इसका उपयोग विशेषज्ञ प्रणालियों में किया जा सकता है | उदाहरण के लिए, कोड के बजाय व्यावसायिक नियमों के सन्दर्भ में विशेषज्ञों से बात करना उपयोगकर्ताओं और डेवेलपर्स के बीच अर्थपूर्ण अंतर को कम करता है और जटिल प्रणालियों के विकास को अधिक व्यवहारिक बनाता है| ज्ञान प्रतिनिधित्व स्वचालित तर्क के साथ होता है क्योंकि ज्ञान का स्पष्ट रूप से प्रतिनिधित्व करने के मुख्य उद्देश्यों में

से एक उस ज्ञान के बारे में तर्क करने, नए ज्ञान का दावा करने, आदि के बारे में सक्षम होना है | वस्तुतः सभी ज्ञान प्रतिनिधित्व भाषाओं में प्रणाली के भाग के रूप में एक तर्क या अनुमान होता है |

शब्द " मशीन ज्ञान प्रतिनिधित्व" का उपयोग आमतौर पर आधुनिक कंप्यूटरों द्वारा प्रसंस्करण (Processing) के लिए अभ्यावेदन का उल्लेख करने के लिए किया जाता है, और विशेष रूप से स्पष्ट वस्तुओं और उनके बारे में दावे या दावों से संबंधित अभ्यावेदन के लिए किया जाता है। इस तरह के स्पष्ट रूप में ज्ञान का प्रतिनिधित्व करना कंप्यूटर को पहले से संग्रहीत ज्ञान से निष्कर्ष निकालने में सक्षम बनाता है। 1970 और 1980 के दशक की शुरुआत में कई मशीनी ज्ञान प्रतिनिधित्व के तरीकों की कोशिश की गई, जैसे कि अनुमानी प्रश्न-उत्तर, तंत्रिका नेटवर्क, प्रमेय साबित करने और अलग-अलग सफलता के साथ विशेषज्ञ प्रणाली। चिकित्सा निदान (जैसे, Mycin) एक प्रमुख अनुप्रयोग क्षेत्र था।

1980 के दशक में औपचारिक कंप्यूटर ज्ञान प्रतिनिधित्व भाषाओं और प्रणालियों का उदय हुआ। प्रमुख परियोजनाओं ने सामान्य ज्ञान के व्यापक निकायों को सांकेतिक करने का प्रयास किया; उदाहरण के लिए "Cyc" प्रोजेक्ट एक बड़े विश्वकोश के माध्यम से चलाया गया, जो कि सूचना को स्वयं एन्कोडिंग नहीं करता है, लेकिन भौतिकी; समय की धारणाएं, कार्य-कारण, प्रेरणा; वस्तुओं और वस्तुओं के वर्ग की एनसाइक्लोपीडिया को समझने के लिए एक पाठक को जानकारी की आवश्यकता होगी | Cyc प्रोजेक्ट को Cycorp, Inc; द्वारा व्यवस्थित किया जाता है। इसका बहुत डेटा अब स्वतंत्र रूप से उपलब्ध हैं। ऐसे काम के जरिए ज्ञान प्रतिनिधित्व की कठिनाई को बेहतर तरीके से सराहा गया। कम्प्यूटेशनल भाषा विज्ञान में, इस बीच, भाषा की जानकारी के बहुत बड़े डेटाबेस का निर्माण किया जा रहा था, और ये, कंप्यूटर की गति और क्षमता में काफी वृद्धि के साथ, मशीनी ज्ञान प्रतिनिधित्व को और अधिक संभव बना दिया। कई प्रोग्रामिंग भाषाओं को विकसित किया गया है जो मशीनी ज्ञान प्रतिनिधित्व के लिए उन्मुख हैं।

प्रोलॉग 1972 में विकसित हुआ, लेकिन बहुत बाद में लोकप्रिय हुआ, जो प्रस्ताव और बुनियादी तर्क का प्रतिनिधित्व करता है, और ज्ञात परिसर से निष्कर्ष निकाल सकता है। केएल-वन (1980) अधिक विशेष रूप से ज्ञान प्रतिनिधित्व के उद्देश्य से ही है।

ज्ञान प्रतिनिधित्व की तकनीक- अर्थ नेटवर्क ज्ञान का प्रतिनिधित्व करने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। प्रत्येक नोड एक अवधारणा का प्रतिनिधित्व करता है और अवधारणाओं के बीच संबंधों को परिभाषित करने के लिए आर्क का उपयोग किया जाता है। 1960 के दशक से, ज्ञान फ्रेम या सिर्फ फ्रेम का उपयोग किया गया है।एक फ्रेम में स्लॉट्स होते हैं जिनमें मान होते हैं; उदाहरण के लिए, घर के लिए फ्रेम में एक रंग स्लॉट, फर्श स्लॉट की संख्या आदि हो सकती है।

फ्रेमवर्क संरचनाएं योजनाबद्ध ज्ञान और स्टीरियोटाइपिक संज्ञानात्मक पैटर्न के प्रतिनिधित्व के लिए अच्छी तरह से अनुकूल हैं। इस तरह के योजनाबद्ध पैटर्न के तत्वों को असमान रूप से भारित किया जाता है, जो स्कीमा के अधिक विशिष्ट तत्वों को अधिक भार देता है| एक पैटर्न कुछ अपेक्षाओं से सक्रिय होता है|

फ्रेम का प्रतिनिधित्व अर्थ नेटवर्क की तुलना में अधिक ऑब्जेक्ट-केंद्र हैं: एक अवधारणा के सभी तथ्य और गुण एक ही स्थान पर स्थित हैं - डेटाबेस में महंगी खोज प्रक्रियाओं की कोई आवश्यकता नहीं है। संज्ञानात्मक विज्ञान और मनोविज्ञान में ज्ञान प्रतिनिधित्व एक महत्वपूर्ण अवधारणा है। इस सैद्धांतिक शब्द को समझने के लिए "ज्ञान" और "प्रतिनिधित्व" के बीच अंतर करना होगा। एक प्रणाली के बुद्धिमान व्यवहार, प्राकृतिक या कृत्रिम, आमतौर पर सिस्टम के ज्ञान का संदर्भ देकर समझाया जाता है। दूसरे शब्दों में: बुद्धिमान व्यवहार करने की क्षमता मौजूद ज्ञान के अस्तित्व से जुड़ी है। बुद्धि और ज्ञान से संबंधित होने से, सिस्टम का व्यवहार कम या ज्यादा पुनर्निर्माण योग्य और अनुमानित हो जाता है। घोषणात्मक ज्ञान को तथ्यात्मक ज्ञान के रूप में परिभाषित किया जाता है, जबकि प्रक्रियात्मक ज्ञान को एक जटिल प्रक्रिया, कार्य या गतिविधि करने के लिए विशिष्ट कार्यों और प्रक्रियाओं के ज्ञान के रूप में परिभाषित किया जाता है।

इस विषय पर 1993 के एक प्रमुख पत्र में, MIT के रोंडेल डेविस ने ज्ञान प्रतिनिधित्व ढांचे का विश्लेषण करने के लिए पांच अलग -अलग भूमिकाओं को रेखांकित किया |

- एक ज्ञान प्रतिनिधित्व (KR) सबसे मौलिक रूप से एक सेरोगेट है, जो खुद के लिये एक विकल्प है जिसका उपयोग एक इकाई को अभिनय के बजाय सोच द्वारा परिणाम निर्धारित करने में सक्षम किया जाता है, अर्थात, इसमें कार्यवायी करने के बजाय दुनिया के बारे में तर्क- वितर्क किया जाता है|
- यह आन्कोलोजिकल प्रतिबद्धताओ का एक सेट है, अर्थात इस सवाल का जवाब : मुझे दुनिया के बारे में क्या विचार रखना चाहिए ?
- यह तीन भागों के सन्दर्भ में व्यक्त बुद्धिमान तर्क का एक सेद्धान्तिक सिद्धांत है : (i) बुद्धिमान तर्क के प्रतिनिधित्व की मौलिक अवधारणा; (ii) अभ्यावेदन प्रतिबंधों का निष्कर्ष सेट; तथा (iii) इन्फोर्मेंट्स के सेट की यह सिफारिश करता है |
- यह व्यवहारिक रूप से कुशल संगणक के लिए एक माध्यम है, अर्थात कम्प्यूटेशनल वातावरण जिसमें सोच पूरी होती है यह व्यवहारिक दक्षता में एक योगदान मार्गदर्शन द्वारा एक प्रतिनिधित्व सूचना प्रदान करने के लिये प्रदान किया जाता है ताकि अनुशंसित निष्कर्षो को बनाने में सुविधा हो |
- यह मानव अभिव्यक्ति का एक माध्यम है, अर्थात एक ऐसी भाषा जिसमें हम दुनिया के बारे में बातें कहते है|

ज्ञान का प्रतिनिधित्व और तर्क सेमेंटिक वेब के लिए एक महत्वपूर्ण सक्षम तकनीक है|

11.7 मशीनी तर्क (Machine Logic)

सूचना प्रोद्योगिकी में तर्क प्रणाली एक सॉफ्टवेयर प्रणाली है जो डिडक्शन और इंडक्शन जैसी तार्किक तकनीकों का उपयोग करके उपलब्ध ज्ञान से निष्कर्ष उत्पन्न करती है| कृत्रिम बुद्धिमत्ता और ज्ञान आधारित प्रणालियों के

कार्यान्वयन में रीजनिंग सिस्टम एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है| रोजमर्रा के उपयोग की परिभाषा के अनुसार, सभी कंप्यूटर सिस्टम में तर्क प्रणाली है और वे सभी किसी न किसी प्रकार के तर्क या निर्णय को स्वचालित करते है| हालाँकि सूचना प्रोद्योगिकी क्षेत्र में विशिष्ठ उपयोग, वाक्यांश आमतोर पर उन प्रणालियों के लिए आरक्षित होता है जो अधिक जटिल प्रकार के तर्क करते है | उदहारण के लिए, उन प्रणालियों के लिए नहीं जो उचित प्रकार के तर्क करते है जैसे की बिक्री कर या ग्राहक छूट की गणना करना लेकिन चिकित्सा निदान या गणितीय प्रमेय के बारे में तार्किक निष्कर्ष बनाना | तर्क सिस्टम दो मोड में आते है : इंटरैक्टिव और बैच प्रोसेसिंग |

उपयोगकर्ता के साथ इंटरएक्टिव सिस्टम इंटरफ़ेस स्पष्ट सवाल पूछने के लिए या उपयोगकर्ता को तर्क प्रक्रिया को निर्देशित करने की अनुमति देता है| बैच सिस्टम एक ही बार में सभी उपलब्ध जानकारी लेते है और उपयोगकर्ता प्रतिक्रिया या मार्गदर्शन के बिना संभव सबसे अच्छा उत्तर उत्पन्न करते है| रीजनिंग सिस्टम में अनुप्रयोग का एक विस्तृत क्षेत्र होता है, जिसमें शेड्यूलिंग, बिज़नेस रूल प्रोसेसिंग, प्रोब्लिंग सोल्विंग, काम्प्लेक्स इवेंट प्रोसेसिंग, इंट्रूजन डिटेक्शन, प्रोडक्टिव एनालिटिक्स, रोबोटिक्स, कंप्यूटर विजन और नेचुरल लैंग्वेज प्रोसेसिंग शामिल है।

11.7.1 तर्क संगत तर्क (Logical Reasoning)

तर्क तार्किक निष्कर्ष निकालने और उपलब्ध ज्ञान, तथ्यों और विश्वासों से भविष्यवाणिया करने की मानसिक प्रक्रिया है | या हम कह सकते है कि "तर्क मौजूदा डेटा से तथ्यों का अनुमान लगाने का एक तरीका है|" तर्क संगत निष्कर्ष निकालने के लिए तर्क संगत रूप से सोचने की एक सामान्य प्रक्रिया है | कृत्रिम बुद्धि में, तर्क आवश्यक है ताकि मशीन भी तर्क संगत रूप से मानव मस्तिष्क के रूप में सोच सके, और मानव की तरह निष्पादन कर सके |

11.7.2 तर्क के प्रकार

कृत्रिम बुद्धिमत्ता में तर्क को निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है –

i. निगमनात्मक तर्क
ii. आगमनात्मक तर्क
iii. प्रवाह्कीय तर्क
iv. सामान्य ज्ञान तर्क
v. मोनोटोनिक तर्क
vi. गैर मोनोटोनिक तर्क

निगमनात्मक तर्क -: निगमनात्मक तर्क तार्किक रूप से सम्बंधित ज्ञात जानकारी को निकलता है | यह मान्य तर्क का रूप है, जिसका अर्थ है कि परिसर के सत्य होने पर तर्क का निष्कर्ष सही होना चाहिए | निगमनात्मक तर्क कृत्रिम बुद्धि में एक प्रकार का प्रोपोजल लाजिक है और इसके लिए विभिन्न नियमों और तथ्यों की आवश्यकता होती है | इसे कभी -कभी टॉप- डाउन तर्क और प्रेरक तर्क के रूप में विरोधाभासी कहा जाता है |

निगनात्मक तर्क में, परिसर की सच्चाई निष्कर्ष की सच्चाई की गारंटी देती है | निगनात्मक तर्क ज्यादातर सामान्य परिसर से शुरू होकर विशिष्ट निष्कर्ष तक पहुचती है, जिसे नीचे दिए गये उदाहरण के रूप में समझाया जा सकता है |

उदाहरण -: परिसर -1 : सभी मानव सब्जी खाते है |

परिसर -2 : सुरेश मानव है |

निष्कर्ष -: सुरेश सब्जी खाता है |

निगमनात्मक तर्क की सामान्य प्रक्रिया नीचे दी गई है |

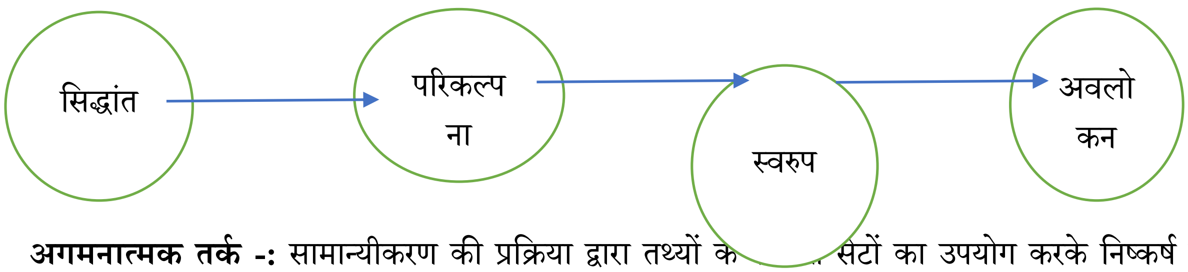

अगमनात्मक तर्क -: सामान्यीकरण की प्रक्रिया द्वारा तथ्यों के [illegible] सेटों का उपयोग करके निष्कर्ष पर पहुचने के लिए अगमनात्मक तर्क एक तर्क है | यह एक विशिष्ट तथ्यों या आंकड़ो की श्रंखला से शुरू होता है और एक सामान्य कथन या निष्कर्ष तक पहुँचता है | अगमनात्मक तर्क एक प्रकार का प्रस्ताव तर्क है, जिसे कारण प्रभाव तर्क या बॉटम अप तर्क के रूप में भी जाना जाता है |

अगमनात्मक तर्क में, हम एक जेनेरिक नियम उत्पन्न करने के लिए ऐतिहासिक डेटा या विभिन्न परिसरों का उपयोग करते है, जिसके लिए परिसर निष्कर्ष का समर्थन करते है | अगमनात्मक तर्क में, परिसर निष्कर्ष के लिए संभावित समर्थन प्रदान करता है इसलिए परिसर की सच्चाई निष्कर्ष की सच्चाई की गारंटी नहीं देती है |

उदाहरण -: परिसर -: चिड़ियाघर में हमने जितने कबूतर देखे है, वे सभी सफ़ेद है |

निष्कर्ष -: इसलिए, हम सभी कबूतरों के सफ़ेद होने की उम्मीद कर सकते है |

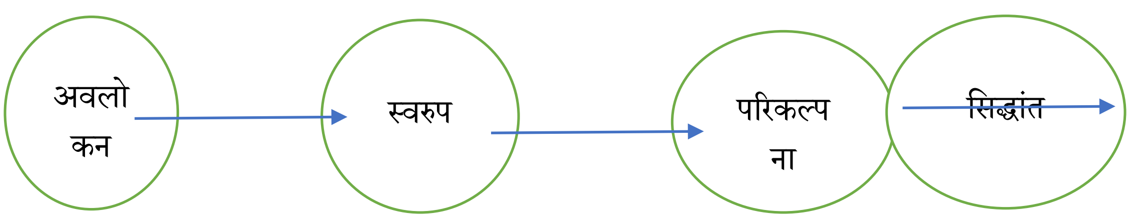

प्रवाह्कीय तर्क -: प्रवाह्कीय तर्क तार्किक तर्क का एक रूप है, जो एकल या एकाधिक टिप्पणियों से शुरू होता है और फिर अवलोकन के लिए सबसे अधिक संभावित स्पष्टीकरण या निष्कर्ष ढूंढता है | प्रवाह्कीय

सम्बन्धी तर्क निगमनात्मक तर्क का एक विस्तार है, लेकिन प्रवाह्कीय तर्क में, परिसर निष्कर्ष की गारंटी नहीं देता है |

उदाहरण -: इम्प्लांटेशन -: अगर बारिश हो रही है तो क्रिकेट का मैदान गीला है |

एक्सिओम -: क्रिकेट का मैदान गीला है |

निष्कर्ष -: बारिश हो रही है |

सामान्य ज्ञान तर्क -: सामान्य ज्ञान तर्क, तर्क का एक अनौपचारिक रूप है, जिसे अनुभवों के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है | सामान्य ज्ञान तर्क हर दिन होने वाली घटनाओं के बारे में अनुमान लगाने का मानवीय क्षमता का अनुकरण करता है | यह सटीक तर्क के बजाय अच्छे निर्णय पर निर्भर करता है और यह हेयुरिसटिक नॉलेज और हेयुरिसटिक नियमों पर काम करता है |

उदाहरण -: एक व्यक्ति एक समय में एक ही जगह पर हो सकता है |

अगर मै आग में हाथ डालू, तो वह जल जायेगा |

उपर्युक्त दो कथन सामान्य ज्ञान तर्क के उदहारण है जिन्हें मानव मन आसानी से समझ और ग्रहण कर सकता है |

मोनोटोनिक तर्क -: मोनोटोनिक तर्क में, एक बार निष्कर्ष निकाला जाता है तो, भले ही हम अपने ज्ञान के आधार में से मौजूदा जानकारी में कुछ अन्य जानकारी में कुछ अन्य जानकारी जोड़ दे तो मोनोटोनिक तर्क में, ज्ञान को जोड़ने से पूर्वता के सेट में कोई कमी नहीं होती है | मोनोटोनिक समस्यओं को हल करने के लिए, हम केवल उपलब्ध तथ्यो से मान्य निष्कर्ष निकाल सकते है, और यह नए तथ्यों से प्रभावित नहीं होगा | मोनोटोनिक तर्क वास्तविक समय प्रणालियों के लिए उपयोगी नहीं है, जैसा कि वास्तविक समय में, तथ्य बदल जाते है इसलिए हम मोनोटोनिक तर्क का उपयोग नहीं कर सकते है |

मोनोटोनिक तर्क का उपयोग पारंपरिक तर्क प्रणालियों में किया जाता है, और एक तर्क आधारित प्रणाली मोनोटोनिक है | किसी भी प्रमेय को साबित करना नीरस तर्क का एक उदाहरण है |

उदाहरण -: पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है | यह एक सत्य तथ्य है और इसे तब भी बदला नहीं जा सकता है जब हम ज्ञान के आधार में एक और वाक्य जोड़ते है, जैसे " चंद्रमा पृथ्वी के चारों ओर घूमता है |" या " पृथ्वी गोल नहीं है" आदि |

गैर मोनोटोनिक (नीरस) तर्क -: यदि हम अपने ज्ञान आधार में कुछ और जानकारी जोड़ते है तो गैर – मोनोटोनिक तर्क में, कुछ निष्कर्ष अवैध हो सकते है | तर्क को गैर -मोनोटोनिक कहा जायेगा यदि हमारे ज्ञान आधार में अधिक ज्ञान को जोड़कर कुछ निष्कर्षों को अमान्य किया जा सकता है | गैर – मोनोटोनिक तर्क अधूरे

और अनिश्चित मॉडल से सम्बंधित है | " दैनिक जीवन में विभिन्न चीजों के लिए मानवीय धारणाएं," गैर – मोनोटोनिक तर्क का एक सामान्य उदाहरण है |

उदाहरण -: मान ले कि ज्ञान के आधार में निम्नलिखित ज्ञान शामिल है |

- पक्षी उड़ सकते है |
- पेंगुइन उड़ नहीं सकते
- पिटी एक पक्षी है |

तो उपरोक्त वाक्यों से, हम यह निष्कर्ष निकाल सकते है कि पिटी उड़ नहीं सकती है | हालाँकि, यदि हम ज्ञान के आधार में एक और वाक्य जोड़ते है "पिटी एक पेंगुइन है", जो निष्कर्ष निकालता है " पिटी उड़ नहीं सकती", इसलिए यह उपरोक्त निष्कर्ष को अमान्य करता है |

11.8 मशीन निर्णयन

शक्तिशाली कंप्यूटर, उन्नत मशीन- लर्निंग अल्गोरिदम और बड़े डेटा के विस्फोटक विकास ने हमे उन सभी डेटा से अंतर्दृष्टि निकालने और उन्हें मूल्यवान भविष्यवाणियों में बदलने में सक्षम किया है | "कृत्रिम बुद्धि मशीनों का पीछा है जो लक्ष्यों की खोज के प्रति निर्णय लेने के लिए उद्देश्यपूर्ण कार्य करने में सक्षम है|" यह हॉवर्ड यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर डेविड पार्क्स ने " ए रिस्पोंसिबिलिटी टू जज इज ए केयर ऑफ़ डिसीजन मशीन्स" में लिखा है | " मशीनों को निर्णय लेने के लिए पूर्व सूचना से कुछ अधिक की आवश्यकता होती है साथ ही मशीनों को निर्णय से भविष्य में होने वाली संभावनाओं की जानकारी भी होनी आवश्यक है |" उन्होंने लिखा कि " निर्णय लेने के लिए कई बिन्दुओं को एक साथ लाना और समेटना आवश्यक है | निर्णय लेने के लिए एक मार्ग को आगे बढाने और समझाने में नेतृत्व की आवश्यकता होती है तथा निर्णय लेने के लिए संवाद की आवश्यकता होती है |"

मानव - चयनित उद्देश्यों को पूरा करने के लिए, मनुष्यों को कृत्रिम बुद्धिमत्ता प्रणाली को क्या और कैसे निर्णय सौपना है, यह चुनना चाहिए | क्या किसी व्यक्ति के बजाय किसी मशीन को निर्णय लेने देना ठीक है ? हममें से अधिकाँश लोग गूगल मानचित्र को नए स्थान पर सर्वोत्तम मार्ग चुनने की अनुमति देते है | हममें से कई लोगों की इच्छा होती है की हम सेल्फ ड्राइविंग कारों में सफ़र करें लेकिन क्या आप अपनी कार को आपके लिए आपकी मंजिल चुनने देने के लिए तैयार है ? आप अपने पसंदीदा निर्णय अपनी कार पर तो नहीं छोड़ सकते ना !

ब्रिटिश शोधकर्ताओं की एक टीम ने एक ऐसी विधि विकसित की है जो कंप्यूटर को इस तरह निर्णय लेने में सक्षम बनती है जो मनुष्य के समान है | विशेष रूप से यह विधि जटिल प्रक्रिया की नक़ल करती है कि कैसे मनुष्य एक विशिष्ट समस्या के लिए कई स्वीकार्य निर्णयों को प्रस्तुत करने के लिए कंप्यूटर को सक्षम करके निर्णय लेते है | मशीनों का मानव निर्णय लेना सही नहीं है और एक ही इनपुट दिए जाने पर भी विभिन्न निर्णय

लिए जा सकते है| इसे परिवर्तनशीलता कहा जाता है और यह दो स्तरों पर मौजूद है उन व्यक्तियों के समूह के बीच जो इस क्षेत्र में विशेषज्ञ है और यह निर्णय केवल एक व्यक्ति द्वारा लिया गया है | छवि पहचान और विश्लेषण, कृत्रिम बुद्धि और मशीन द्वारा निर्णय लेने का एक अनिवार्य हिस्सा है | यह स्वास्थ्य सेवा में नैदानिक उद्देश्यों के लिए उपयोग किया जा सकता है जिससे मानव जीवन सुरक्षित होता है| हाल के वर्षो में कैंसर मृत्यु के कारणों में से एक प्रमुख कारण रहा है | रेडियोलोजिस्ट कैंसर की पहचान के लिए सी .टी. स्कैन का प्रयोग करते है और यह एक समय लेने वाली प्रक्रिया है | चीन, जिसे हर साल 1.4 बिलियन सी .टी .स्कैन से अधिक की समीक्षा करने के लिए रेडियोलाजिस्ट की कमी है, इस अंतर को भरने के लिए कृत्रिम बुद्धि की तरफ देख रहा है | संतुलित तरीके से स्कैन करने के लिए डाक्टरों के गलत अनुपात के साथ अधिक काम करने वालों को थकान का सामना करना पड़ सकता है, जो त्रुटियों का कारण बन सकता है |

इन्फरविजन ने एक कृत्रिम बुद्धि विकसित किया गया है और सी .टी .स्कैन की समीक्षा करने और फेफड़ो के कैंसर के किसी भी शुरुवाती लक्षण का पता लगाने के लिये उपयुक्त एल्गोरिदम के साथ प्रशिक्षित किया गया है | यह रेडियोलाजिस्ट के लिए काम को आसान बनता है क्योंकि वे केवल कृत्रिम बुद्धि से डेटा का उपयोग कर सकते है और कैंसर के लिये अधिक सटीक, प्रभावी ढंग से और कुशलतापूर्वक निदान कर सकते है

11.9 सारांश (conclusion)

कृत्रिम बुद्धिमत्ता हमारे व्यवसाय के संचालन में क्रांति ला रहा है | डेटा आधारित निर्णय लेने से लेकर स्वायत्त संचालन तक इसमें सब निहित है | डेटा आधारित निर्णय लेने के साथ इस सम्बन्ध में कृत्रिम बुद्धि का व्यापक प्रभाव है | कृत्रिम बुद्धि डेटा की विशाल मात्रा का विश्लेषण कर रहा है और मनुष्यों को एक बड़ी तस्वीर प्रदान करने के लिए महत्वपूर्ण अंतर्दृष्टि प्रदान कर रहा है जिसकी मदद से वे सूचित निर्णय ले सकते है | कृत्रिम बुद्धि निर्विवाद रूप से व्यवसायों और उपभोक्ताओं के लिए निर्णय लेने का भविष्य है | परिस्थितियों के अनुसार हमें जो चाहिए उसे चुनने में एक आमूल -चूल परिवर्तन किया गया है | कृत्रिम बुद्धि हमारे जीवन को सरल बनाने का प्रयास करता है और काफी हद तक उस में सफल भी हुआ है | चिकित्सा के क्षेत्र में भी कृत्रिम बुद्धिमत्ता दिनों दिन नये आयाम रच रहा है |

11.10 तकनीकी शब्द (Difficult Words)

कृत्रिम – आर्टिफिशियल

एल्गोरिदम – कलन विधि

अंतर्दृष्टि - किसी बात को देखने-परखने की आतंरिक शक्ति

मोनोटोनिक – नीरस

दृष्टिकोण – किसी विषय में निश्चित किया गया मत

11.11 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिये -

1. कृत्रिम बुद्धि का अर्थ ———————— तरीके से विकसित की गई बौद्धिक क्षमता है |
2. कृत्रिम बुद्धि ———————— विज्ञान की एक शाखा है |
3. कृत्रिम बुद्धि की शुरुवात ———————— के दशक में हो गई थी |
4. ———————— को कृत्रिम बुद्धि के पिता के रूप में जाना जाता है |
5. कोड का ———————— उपयोग बॉटम -अप दृष्टिकोण के मुख्य लाभों में से एक है |
6. संवेदी इनपुट को ———————— माना जाता है |
7. कृत्रिम तंत्रिका नेटवर्क में प्रसंस्करण तत्वों की तरह बड़ी संख्या में ———————— होते है |
8. तर्क मौजूदा डेटा से ———————— का अनुमान लगाने का एक तरीका है |
9. तर्क के———————— प्रकार होते है |
10. प्रवाह्कीय तर्क ———————— टिप्पणियों से शुरू होता है |

11.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

https://www.consumer-voice.org/coo-desk/artificial-intelligence/?gclid=EAIaIQobChMIrvbLmoqY6wIVgnwrCh2sNAQdEAAYAyAAEgLEm_D_BwE

https://en.wikipedia.org/wiki/Artificial_intelligence

https://en.wikipedia.org/wiki/Top-down_and_bottom-up_design#Philosophy_and_ethics

11.13 निबंधात्मक प्रश्न

1 – कृत्रिम बुद्धि से आप क्या समझते है ? आपकी दृष्टि में कृत्रिम बुद्धि दोस्त है या दुश्मन समझाइये |

2 - कृत्रिम बुद्धि के कम्प्यूटेशनल दृष्टिकोण (टॉप डाउन – बॉटम अप) का वर्णन कीजिये |

3 – कृत्रिम तंत्रिका नेटवर्क का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये |

4 – मशीनी तर्क क्या है ? इसके प्रकारों को उदाहरण सहित समझिये |

5 – मशीनी निर्णयन से आप क्या समझते है ? आपकी दृष्टि में यह कहाँ तक उचित है |

11.14 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर –

1. बनावटी, 2. कंप्यूटर, 3. 1950, 4. जॉन मैकार्थी, 5. पुनः, 6. बॉटम अप, 7. न्यूरॉन, 8. तथ्यों, 9. छह, 10. एकल